1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-9, अंक-1, अगस्त-सितम्बर 2025, ₹ 100/-

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

पाठकों का विश्वास
सांस्कृतिक यात्रा के 29 वें वर्ष का
प्रवेशांक 136 वाँ अंक...

लोक, जनजाति एवं शास्त्रीय नृत्यों पर केन्द्रित विशेषांक

अतिथि संपादक : डॉ. लता सिंह मुंशी

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

आपका अपना

कला समय प्रकाशन

● सुरूचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ● ● नयनाभिराम पेपरबैक में...

- 'कला समय' प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पांडुलिपियाँ आंमत्रित करते हैं। चयनित पांडुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तो के अनुसार किया जायेगा।
- जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक अनुदित, संपादित रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है। वे कम्प्यूटर पर साफ-साफ अक्षरों में कागज की एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ 'कला समय' प्रकाशन, भोपाल से संपर्क करें।

विशेष सुविधा

- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद, चर्चा आदि में समन्वय करना।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुविधा में समन्वय करना।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, फ्लिपकार्ट, कला समय ऑनलाईन आदि) पर भी विक्रय के लिये प्रदर्शन में समन्वय करना।

आप स्वयं पधारे या संपर्क करें....

0755-2562294, 9425678058

kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6
महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+09=29) पूर्णांक-136,

वर्ष-9, अंक-1, अगस्त-सितम्बर 2025, मूल्य : ₹100/-

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

pnb
MERCHANT: KALA SAMAY
SCAN & PAY

कला समय: सहयोग राशि भुगतान हेतु क्यूआर कोड का उपयोग करे।

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

❈ पत्रिका नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान ❈

संरक्षक
विजयदत्त श्रीधर
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. कपिल तिवारी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. श्यामसुंदर दुबे
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय
महेश श्रीवास्तव
❈
कानूनी सलाहकार
उमेश कुमार गुप्ता
(प्रिंसिपल जिला न्यायाधीश रिटा.)
❈
परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल
डॉ. महेशचन्द्र शांडिल्य
❈
सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास
❈
वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

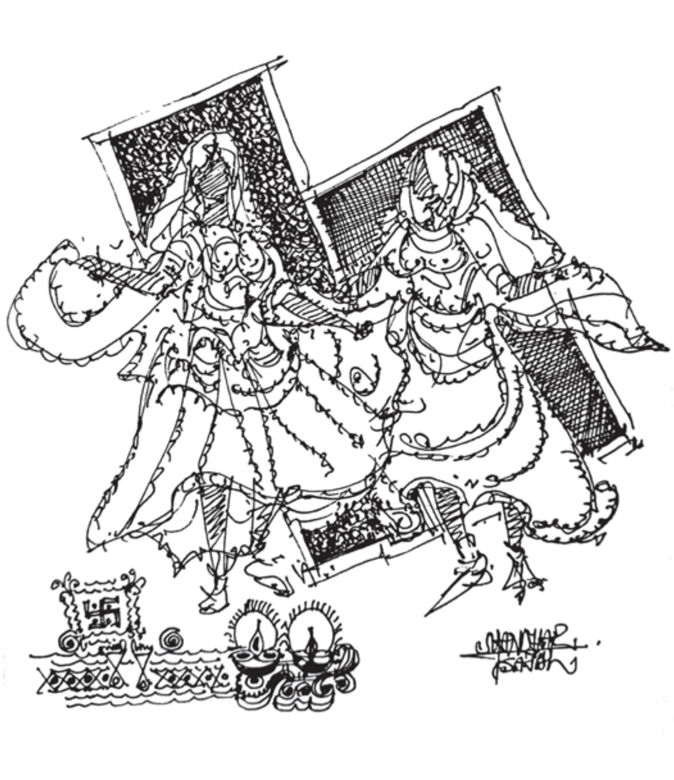

रेखाचित्र : मनोहर काजल

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
❈
सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा
❈
सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग
देवेन्द्र प्रकाश तिवारी
❈
उप संपादक
राहुल श्रीवास
सुन्दरलाल प्रजापति
❈
नरिन्दर कौर
प्रबंध संपादक
❈
संपादक मंडल
डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
साहित्य
❈
अरुण तिवारी
समसामयिक
❈
हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति

सदस्यता सहयोग राशि:

(रजिस्टर्ड डाक शुल्क 300/- प्रति वर्ष अतिरिक्त) साधारण डाक

वार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)	साधारण डाक
द्वैवार्षिक	:	1200 (व्यक्तिगत)	1400 (संस्थागत)	साधारण डाक
चार वर्ष	:	2300 (व्यक्तिगत)	2700 (संस्थागत)	साधारण डाक
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)	साधारण डाक

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों, अतिथि संपादकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हो। पत्रिका से संबंधित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे। सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक, अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - **भँवरलाल श्रीवास**

लोक, जनजाति एवं शास्त्रीय नृत्यों पर केन्द्रित विशेषांक के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

डॉ. मोहन यादव
(मुख्यमंत्री म.प्र. शासन)

डॉ. कपिल तिवारी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)

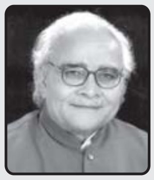
डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

डॉ. देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग'

डॉ. पूरन सहगल

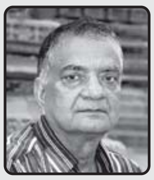
डॉ. देवदत्त शर्मा

लक्ष्मीनारायण पयोधि

वसन्त निरगुणे

डॉ. राजरानी शर्मा

डॉ. श्यामसुंदर दुबे

डॉ रमा दास

डॉ. शोभा सिंह

डॉ. प्रिया सूफी

डॉ. आलोक श्रीवास

प्रो. सुधा अग्रवाल

डॉ. नर्मदा प्रसाद सिसोदिया

विनोद नागर

इस प्रतिष्ठा विशेषांक की अतिथि संपादक

डॉ. लता सिंह मुंशी

देश की प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भरतनाट्यम् नृत्यांगणा, गुरु, प्राध्यापिका, मध्य प्रदेश शासन का सर्वोच्च शिखर सम्मान सहित कई सम्मानों से विभूषित भरतनाट्यम् विशेषज्ञा

मोबा. 9425019634

इस बार

- **अतिथि संपादक की कलम से...**
  नृत्य कला 5
- **संपादकीय**
  यदि कहीं स्वर्ग है तो वह नृत्यों में मिल सकता है सृष्टि की उत्पत्ति... 6
- **पुनर्पाठ : संस्कृति**
  सदैव चलने वाली सृष्टि की स्थिर धुरी हैं शिव / डॉ. कपिल तिवारी 9
- **समय की धरोहर....**
  सबसे पुराना अभिनय प्रधान जनजातीय नृत्त गवरी / डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 10
- **संगीत- चिंतन**
  भारत के शास्त्रीय नृत्य / डॉ. देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग' 13
- **आलेख**
  तांडव लास और अंग को गनें री/ डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी 17
  जनजातीय समुदायों की छैल-छबीली मनोरम नृत्य छवियाँ/डॉ. पूरन सहगल 25
  कथक नृत्य के घराने/ डॉ. आलोक श्रीवास कथक नर्तक 36
  नृत्य, आदिनृत्य और लोक नृत्य/ वसंत निरगुणे 43
  सरगुजा अंचल के जनजातीय नृत्य ''करमा'' का .../ डॉ. श्यामसुंदर दुबे 46
  जीवन का स्पंदन है नृत्य / डॉ. देवदत्त शर्मा 49
  नृत्य के चरणशीर्ष घुँघरू / डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग 52
  कथक परंपरा का बदलता परिदृश्य / डॉ रमा दास 57
  पंजाब का संगीत और लोकनृत्य/डॉ. प्रिया सूफी 59
  भगोरिया और नृत्य की हिलोरिया /डॉ. शोभा सिंह 62
  गरबा - बेहतर उपज की खुशी की परंपरा / डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 64
- **अद्वैत-विमर्श**
  आचार्य शंकर की अचिन्तय लीला / डॉ. नर्मदा प्रसाद सिसोदिया 66
- **नृत्य : संस्कृति**
  पूर्वोत्तर राज्यों के लोक एवं जनजातीय संस्कृति के नृत्य 68
- **पुरुष-नृत्य**
  भारतीय शास्त्रीय नृत्य रूपों में पुरुष - देह 72
- **शास्त्रीय नृत्य: वीथिका**
  एक समृद्ध और विविध कला है भारतीय शास्त्रीय नृत्य 74
- **पुस्तक: समीक्षा**
  शक्तिपात का प्रसाद है सौन्दर्यलहरी का अनुदित ..../ डॉ. राजरानी शर्मा 83
  हाशिये पर होना बुरा नहीं, कचोटता है असमय का अँधेरा / विनोद नागर 86
- **मातृभाषा अनुष्ठान**
  सहभागिता की अपील, भारत को चाहिए भाषा-स्वराज.../ विजयदत्त श्रीधर 88
- **आयोजन**
  काल गणना और वैदिक पद्धति हमारी वैज्ञानिक और सांस्कृतिक... 90
  मध्यप्रदेश के कण-कण में है सौंदर्य / डॉ. मोहन यादव 93
- **कविता**
  लक्ष्मीनारायण पयोधि की शहनाई वाद्य पर कविता / लक्ष्मीनारायण पयोधि 95
- **पुण्य-स्मरण**
  वीरेश मधुकर - महान कलाकार, देशभक्त, स्वतंत्रता.../ प्रो. सुधा अग्रवाल 96
- **कला समय : नवांकुर...**
  मैं सपने नहीं लक्ष्य देखती हूँ/ सत्य नारायण शर्मा 97
- **समवेत** 98

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888
मुख्य आवरण - सौजन्य डॉ. लता सिंह मुंशी
छायाचित्र -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार, समाचार पत्र
सहयोग- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखाचित्र :** मनोहर काजल
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

अतिथि संपादक की कलम से...

नृत्य कला

“गीत का अनुसरण वाद्य करते हैं एवं वाद्यों का अनुसरण नृत्य करता है। लेकिन जब मंच पर नृत्य प्रदर्शन होता है तब नृत्य सर्वप्रमुख हो जाता है। मुख्य मंच पर नृत्य होता है संगत के रूप में गीत और वाद्य होते हैं जो नर्तक नृत्यांगना का अनुसरण करते हैं। अर्थात् – सर्वानुगतम् नृत्यं”

नृत्य विषय के संबंध में हमारा देश सागर के समान है। प्राचीनतम साहित्य वेदों पुराणों में नृत्य की चर्चा पायी जाती है आदिकाल से ही रामायण काल महाभारत काल में भी नृत्य कला की चर्चा पायी जाती है पाढ़िणी ने नटसूत्र की चर्चा अपने समय के साहित्य में किया है। महर्षि पतंजलि ने भी सफल अभिनय की व्याख्या अपने ग्रंथों में की है। बहुत अधिक स्थायी धरातल भारत के 'नाट्य शास्त्र' से ही प्राप्त होता है जो लगभग ई. पू .प्रथम या द्वितीय शताब्दी भरत का माना जाता है। यहाँ से एक सहस्र वर्षों तक अर्थात् 10 वीं शताब्दी तक अनेकों विद्वानों ने नाट्य कला की वृद्धि करने में अपना-अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जिनमे धनंजय का दशरूपक और अभिनव गुप्त का भरत नाट्य शास्त्र की 'अभिनव भारती' टीका उल्लेखनीय हैं।

कला समाज का दर्पण है किसी भी स्थान की कला को देखकर हम वहाँ के समाज से उसका सीधा संबंध स्थापित कर सकते हैं। नृत्य कला से समाज की लोक संस्कृति, साहित्य, व धर्म का समन्वयात्मक रूप देख व समझ सकते हैं। संस्कृति इनकी आधार शिला है और अध्यात्म प्रेरणा स्रोत। किसी वस्तु को देख कर, सुनकर या अन्य प्रकार से जानकर मन में उठने वाले विचार ही तो भाव हैं इन्हीं भावों को अपनी कल्पनाशीलता से सुंदरता के साथ सजा संवार कर व्यक्त करना ही तो कला है। चित्रकार अपने चित्रों द्वारा मूर्तिकार अपनी मूर्तियों द्वारा संगीतकार अपनी गायन या वादन द्वारा एवं नर्तक, नृत्यांगनाएँ अपने नृत्य द्वारा अपनी भावनाओं को प्रकट करते हैं।

कला के दो प्रकार हैं –

उपयोगी कला और ललित कला। सुनारी, सुपारी, माला, अल्पना आदि उपयोगी कलाएँ हैं। स्थापत्य कला, मूर्ति कला, चित्रकला एव संगीतकला ये ललितकलाएँ हैं। भारतवर्ष में कलाओं को सदैव श्रद्धा व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा है। हमारे यहाँ कलाएँ मात्र मनोरंजन का साधन नहीं हैं वरन् इसे ईश्वर उपासना की वस्तु समझा जाता है।

विश्रांतिर्यस्य संभोगे सा कला ना कलामता।
गीयते परमानन्दे भयाव्या सा परा कला।।

अर्थात् जिसका उद्देश्य मात्र भोग या मनोरंजन हो वह कला नहीं है वरन् जो परमानन्द में लीन कर दे वही सच्ची कला है । भारत में शास्त्रीय नृत्यों की बात करें तो प्रमुख रूप से 8 प्रमुख नृत्य शैलियाँ हैं – कथक, भरतनाट्यम, ओडिसी, मोहिनीअट्टम, कथकलि, कुचिपुड़ी, मणिपुरी, सत्रिय शास्त्रों में कहा गया है –

गीतानुगतम् वाद्यम, वाद्यानुगतम नृत्यं

गीत का अनुसरण वाद्य करते हैं एव वाद्यों का अनुसरण नृत्य करता है। लेकिन जब मंच पर नृत्य प्रदर्शन होता है तब नृत्य सर्वप्रमुख हो जाता है। मुख्य मंच पर नृत्य होता है संगत के रूप में गीत और वाद्य होते हैं जो नर्तक-नृत्यांगना का अनुसरण करते हैं। अर्थात् -**सर्वानुगतम् नृत्यं**

'कला समय' के इस अंक नृत्य विशेषांक में हम इन्हीं शास्त्रीय नृत्यों की चर्चा कर रहे हैं। आशा करती हूँ कि आप सभी सहृदय विद्वान पाठकों को नृत्य कला से जुड़ने समझने में आनंद आयेगा।

. मैं भँवरलाल श्रीवास जी की अत्यंत आभारी हूँ। कि उन्होंने एक नृत्य कलाकार को इस महत्वपूर्ण नृत्य विशेषांक का दायित्व मुझे अतिथि संपादक के रूप में सौपा है, साथ ही मैं उन सभी लेखकों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, जिनके रचनात्मक सहयोग से यह विशोषांक संग्रहणीय बन सका। कृपया अपनी प्रतिक्रिया से हमें अवश्य अवगत करायें प्रतिक्षा रहेगी।

लता मुंशी

डॉ. लता सिंह मुंशी

देश की प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भरतनाट्यम् नृत्यांगणा, गुरु ,

प्राध्यापिका, मध्य प्रदेश शासन का सर्वोच्च शिखर सम्मान सहित कई सम्मानों से विभूषित भरतनाट्यम् विशेषज्ञा

मोबा. 9425019634

संपादकीय

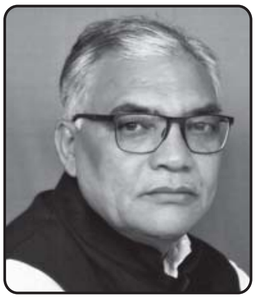

यदि कहीं स्वर्ग है तो वह नृत्यों में मिल सकता है सृष्टि की उत्पत्ति का नृत्य: 'नृत्यमयं जगत्'।

'' खुसरो बाजी प्रेम की खेलूं पिय के संग।
जीत गई तो पिया मोरे, हारी तो पिय के संग।।''
एको हि देवो भवति त्रिधा वा, अनन्तरूपाण्यदधात् स एव।।

'शिव' समस्त नर्तकों के अधिष्ठाता हैं, इसीलिए उन्हें 'नटराज' कहा जाता है, एक ही देव ने तीन रूप धारण किए और फिर उनके अनन्त रूप हो गए। हमारी नृत्य-परम्परा जो शिव के तांडव, पार्वती के लास्य व कृष्ण की रासलीला से चली आ रहीं है, उसमें नृत्य के आदि प्रर्वतक के रूप में भगवान शंकर की सम्पूर्ण जगत में प्रतिष्ठा है। वे समस्त नर्तकों के अधिष्ठाता हैं। सर्म्पूण पशुओं के देव हैं इसलिए उन्हें 'पशुपति' कहा जाता है। सर्म्पूण सृष्टि शिव की नृत्य-भूमि है इसलिए उन्हें 'नत्यमूर्ति' कहते हैं। शिव का नृत्य सृष्टि, स्थिति और लय का प्रतीक है। उसी में अनुग्रह (मुक्ति) और तिरोभाव भी सम्मिलित हैं। शिव अनादि और अनन्त हैं, इसलिए समस्त देवता और समस्त सृष्टि उनमें समाहित है। शिव ही ब्रह्मा के रूप में सृष्टिकर्ता हैं, विष्णु के रूप में पालनकर्ता हैं और महेश के रूप में संहारकर्ता हैं। शिव की जटाओं में स्थित गंगा चित् शक्ति है, जो स्वर्ग से पृथ्वी लोक तक अवाध गति में प्रवहमान है और जीवन के आन्तरिक प्रवाह का प्रतीक है। शिव के डमरू से 14 सूत्रों का उद्‌भव हुआ है, जिसमें समस्त साहित्य की सृष्टि हुई है। अग्नि ज्ञान का प्रतीक है, कमल के जिस पुष्प पर शिव खड़े हैं वे हैं- काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहंकार, माया तथा राग-द्वैष शिव का उठा हुआ पैर जीवात्मा की मुक्ति का प्रतीक है। उनके चारों ओर अग्नि की ज्वालाएँ अनेकत्व से एकत्व की ओर गतिशील हैं। उनके चतुर्दिक विराजमान वृत्त, पवित्र ओंकार की अभिव्यक्ति करता है, सीधे और बाएँ कान के छल्ले पुरूष और नारी के प्रतीक हैं जो नर-नारी के एकत्व को प्रदर्शित करते हैं शिखर का अर्द्धचन्द्र धर्म और ज्ञान का प्रतीक है। हाथों और गर्दन में लिपटे सर्प, पाप के क्षय का प्रतीक है। शिव की नृत्यमय आकृति जीव को कर्म के बन्धनों से मुक्त करके माया का आवरण हटाते हुए मनुष्य को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की ओर प्रेरित करते हुए आनन्द की ओर ले जाती है। जब सृष्टि प्रकाश और अंधकार के बीच झूल रही थी। माता पार्वती ने शूलपाणि (शिव) से इस अवसर पर नृत्य करने का अनुरोध किया तब सरस्वती ने वीणा वादन किया इन्द्र ने वंशी वादन किया ब्रह्मा ने ताल दी, रमा भगवती ने गायन किया तथा विष्णु ने मृदंग बजाया। अन्य सभी देव चारों ओर एकत्र होकर ईश्वर की स्तुति में निमग्न हो गए। इस प्रकार भगवान शिव ने नृत्य किया वह सृष्टि की उत्पत्ति का नृत्य था। जब तक शिव ताण्डव करते हैं और सृष्टि के आदि नर्तक कहलाते हैं, तब तक पार्वती शक्ति के रूप में ईश्वरीय प्रकृति को जीवन्त बनाए रखती है, इसीलिए उन्हें 'त्रिपुर सुन्दरी' अर्थात तीनों लोकों में सर्वाधिक सुन्दरी कहा जाता है। भगवान शिव ने उन्हें नृत्य की शिक्षा दी शिव और पार्वती सभी नर्तकों के प्रेरणा स्त्रोत हैं तथा पुरूष (पूर्णनर) और प्रकृति (पूर्णनारी) के प्रतीक हैं। जिस प्रकार ताण्डव भगवान शंकर की तामसिक प्रवृत्तियों का प्रतीक है उसी प्रकार रास भगवान कृष्ण की श्रृंगार प्रधान भावनाओं का द्योतक है। रस, भाव और व्यंजन से युक्त नर्तक को नृत्य कहा जाता है और अभिनय तथा भाव से रहित नर्तन को 'नृत' कहते हैं। विभिन्न मुद्राओं चेष्टाओं और गतियों के द्वारा भाव की अभिव्यक्ति अधिक महत्व रखती है और जब इनको स्वर शब्द और ताल का आश्रय मिल जाता है तो

'शिव' समस्त नर्तकों के अधिष्ठाता हैं, इसीलिए उन्हें 'नटराज' कहा जाता है, एक ही देव ने तीन रूप धारण किए और फिर उनके अनन्त रूप हो गए। हमारी नृत्य-परम्परा जो शिव के तांडव, पार्वती के लास्य व कृष्ण की रासलीला से चली आ रहीं है, उसमें नृत्य के आदि प्रर्वतक के रूप में भगवान शंकर की सम्पूर्ण जगत में प्रतिष्ठा है। वे समस्त नर्तकों के अधिष्ठाता हैं।...

नृत्यकला के रूप में भिन्न-भिन्न रसों की अभिव्यक्तियाँ होने लगती है, जिसे रसानुभूति की अवस्था कहते हैं। यह लौकिक सुख और दुःख से परे की स्थिति होती है। नृत्य कला का मुख्य प्रयोजन यही है। इसमें शरीर के सभी अंगों-हाथ, पैर, सिर, आँख, ग्रीवा, मुख और चेष्टा द्वारा विभिन्न प्रकार के अभिनय हैं, जिनसे विभिन्न भावों और रसों की सृष्टि होती है भारत में नृत्य को एक धार्मिक अनुष्ठान के रूप में सम्मानित किया गया है और कहा गया है कि जो प्रसन्न चित्त से श्रद्धा-भक्ति से सम्पन्न होकर नृत्य करते हैं, वे जन्म-जन्मान्तर के पाप से मुक्त हो जाते हैं। नृत्य वास्तव में मानव का शरीर-क्रिया-विज्ञान है, जो विविध दशाओं को प्रदर्शित करता हुआ रस की उत्पत्ति में सहायक होता है। इसमें जीवन का वह उल्लास निहित है, जो आत्मा का स्पन्दन है। नृत्य के दो विभाग किए गए हैं तांडव (पुरूषोचित) और लास्य(स्त्रियोचित)। इसलिए पुरूष और स्त्री दोनों ही नृत्य कर सकते हैं। समाज की स्थिति और आन्तरिक मनोभावों को प्रकट करने में नृत्य कला पूरी तरह सक्षम है।

नृत्य को नाट्य का शरीर कहा गया है और गीत को नाट्य की शय्या शास्त्रीय नृत्य की उत्पत्ति लोक नृत्य से ही हुई है शास्त्रीय नृत्य अपने स्थान पर है तो लोक नृत्य घर-घर में प्रचलित है जिन्हें यथोचित अवसरों पर प्रस्तुत किया जाता है सच कहा जाए तो नृत्य कला राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने में अत्यन्त सहायक है। धार्मिक अनुष्ठान हो, सामाजिक उत्सव हो या लौकिक साधना सभी स्तरों पर नृत्य का अपना महत्व है। पशु-पक्षियों तक में देखा गया है कि वे हर्षोल्लास को प्रकट करने के लिए नृत्य का सहारा लेते हैं। भाषा की उत्पत्ति के पूर्व मुद्रा-प्रदर्शन ही मनुष्य की भाषा थी उसकी आँखें, गर्दन, नाक, उँगलियाँ, हाथ पैर इत्यादि अवयव भावनाओं को स्पष्ट करते थे। आँख की चितवन, कपोल की ललाई, गर्दन का धुमाव और उपांगों की विविध चेष्टाएँ सहज ही व्यक्त कर देती है। अभिनय की प्रस्तुति में हम आज भी इन्हें लेते हैं और चेष्टाओं से ही कथानक को समझते हैं। बिहारी का एक दोहा है-

''कहत नटत रीझत खिजत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भुवन में करत हैं, नैनन ही सों बात।।''

नायक-नायिकाओं के परस्पर मूक वार्त्तालाप या भावाभि-व्यक्ति का इससे अच्छा उदाहरण पूरे साहित्य में नहीं है। मनुष्य दिन-भर काम काज में व्यस्त रहता है और शाम तक पूरी तरह थक जाता है, फिर भी रातभर नाचने के लिए तैयार हो जाता है वह नाचना श्रमयुक्त होते हुए भी उसे सुख-शान्ति और उल्लास के क्षण प्रदान करता है यही नृत्य की महिमा या उसका महत्व है। नृत्य व्यक्ति की भावनाओं के साथ उसकी राष्ट्रीयता को भी प्रतिविम्बित करता है साथ ही उससे मनुष्य के रीति-रिवाज, रहन-सहन और सामाजिक संस्कृति का ज्ञान भी मिलता है। प्रकृति ने मनुष्य को नाचने की प्रेरणा दी पशु-पक्षियों की विभिन्न चालें और उड़ानें लहरों की अठखेलियाँ और खुली हवाओं में झूमते पेड़-पत्तों ने मनुष्य को झूमने और तिरकनें पर मजबूर कर दिया। इसी से मानव-समाज में लोक नृत्यों का जन्म हुआ। आगे चलकर लोक नृत्यों के विभाग हुए और उन्हें अपनी परम्पराओं अनुसार विकसित होने का मौका मिला। विवाह तथा शिशु-जन्म से सम्बन्धित नृत्य संस्कार नृत्य कहलाएं इतिहास से सम्बन्धित 'नृत्य' कथा-नृत्य या नाट्य नृत्य कहलाए। विभिन्न ऋतुओं से संबंधित 'नृत्य' ऋतु-नृत्य कहलाए त्योहारों से संबंधित 'नृत्य' पर्व-नृत्य कहलाए सांस्कृतिक मेलों से संबंधित नृत्य आध्यात्मिक 'नृत्य' की श्रेणी में गिने जाने लगे। लोक नृत्यों का कोई शास्त्र नहीं होता उनका नियमन परम्परा करती है और मानव-हृदय का उल्लास ही उनका सौन्दर्य होता है। आदिकाल के नृत्य जनजातियों में, मध्यकाल के नृत्य ग्रामवासियों में और वर्तमान काल के नृत्य नगरवासियों में प्रचलित हैं जो लोक-नृत्य के इतिहास का एक क्रम प्रस्तुत करते हैं। लोक-नृत्य कभी बनाए नहीं जाते स्वयं बनते हैं। भारत-माँ लोक-नृत्य रूपी आभूषणों से अलंकृत और समद्ध होकर सम्य्क दर्शन के लिए विश्वनेत्रों का आह्वान करती है।

भारत के अलग-अलग प्रान्तों में शास्त्रीय आधार पर जिन तत्वों को ग्रहण किया गया, उनमें शास्त्रीयता के साथ-साथ लोक तत्वों के मिश्रण से कुछ नई शैलियों का जन्म हुआ और उसी के आधार पर लोक में सर्वाधिक प्रचलित नृत्य-विधाएँ भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के नाम से जानी जाने लगी जिनमें भरतनाट्यम, कथकलि, मणिपुरी, कथक, कुचिपुड़ी, ओडिसी और मोहिनीअट्टम, सत्रीय नृत्य, छऊ नृत्य, गौड़िय नृत्य, थंग ता नृत्य प्रमुख है। शास्त्रीय नृत्य से अभिप्राय है शास्त्रीय अर्थात जो शास्त्र के अनुसार हो या अनुकूल हो अथवा शास्त्र पर आधारित या उससे समर्थित हो। इस प्रकार वे नृत्य जो किसी शास्त्र के अनुसार है, शास्त्रीय नृत्य है। कुछ प्रांतों के नृत्यों को शास्त्रीय नृत्यों के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई जैसे उड़ीसा का ओडिसी नृत्य, मणिपुर का मणिपुरी नृत्य, उत्तर प्रदेश का कथक नृत्य, केरल का कथकलि नृत्य, तमिलनाडु का भरतनाट्यम नृत्य, कुचिपुड़ी नृत्य आँध्र प्रदेश से संबंधित नृत्य है मोहिनी अट्टम नृत्य भी कथकलि भरतनाट्यम आदि नृत्यों के समान एक भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैली में स्थान बना चुका है। यह केरल से संबंध रखता है। सत्रीय नृत्य आसाम से संबंधित है छऊ नृत्य मुखौटा नृत्य के रूप में परिचित है। झारखण्ड, उड़ीसा, बंगाल से संबंधित नृत्य है। गौड़ीय नृत्य यह नृत्य शैली बंगाल से संबंधित नृत्य है। थंग ता नृत्य यह नृत्य मणिपुर से संबंधित है। इस प्रकार भारत में शास्त्रीय नृत्यों की एक अनूठी परम्परा है, हम उन महान कलाकारों का नर्तकों का स्मरण करना चाहेंगे जिनके कारण लोक, जनजातीय और शास्त्रीय नृत्य अमर हो गए जिनके कारण नृत्यों के घराने बने और उन नृत्य शैलीयों को अमरता प्रदान की। ऐसे

सर्वश्री अच्छन महाराज (कथक नृत्यकार), अनित रत्नम् (भरतनाट्यम-नृत्यांगना) अमला नन्दी विश्व प्रसिद्ध नृत्यकार-उदयशंकर की जीवन-संगिनी, अमूबी सिंह गुरु (मणिपुरी नृत्य), ई कृष्ण अय्यर (भरतनाट्यम), विश्वविख्यात नर्तक उदयशंकर (उदयशंकर शैली नृत्य), उमा शर्मा (कथक), उर्मिला सत्यनारायणन (भरतनाट्यम), एम.आर. कल्याणपुरकर (कथक नृत्य), एम.के. सरोजा (भरतनाट्यम), कनक रेले (कथकलि), कन्हैया नक्काल (भाँड गायक, नर्तक), कमला (भरतनाट्यम), कल्याण सुन्दरम (भरतनाट्यम), कालका प्रसाद (कथक), कुप्पैया पिल्लै (भरतनाट्यम), कुमुदिनी लाखिया (कथक)(जयपुर घराना), कृष्णन कुट्टी (कथकलि नर्तक), के.पी. किट्टप्पा पिल्लै (भरतनाट्यम), केलुचरण महापात्र (ओडिसी नृत्य-गुरु), कोमला वर्दन (भरतनाट्यम),गुल बर्धन (बैले नृत्य), गोपी कृष्ण (कथक), गोपीनाथ (कथकलि), गौरीशंकर (कथक-गुरु जयपुर घराना), चिरंजीलाल (कथक), चिन्ता वैंकट रामैया (यक्षगान कुचिपुड़ी), चौबे महाराज (कथक), जयलाल (कथक), झंडे खाँ (कथक), झवेरी बहिनें नयना, दर्शना रंजना, सुर्वर्णा (मणिपुरी), टी.के. महालिंगम पिल्लै (भरतनाट्यम), ठाकुर प्रसाद (कथक) दमयन्ती जोशी (कथक), दुर्गालाल (कथक), नटराज वशी (लोक-नृत्य), बाली नृत्य, नारायण प्रसाद (नृत्याचार्य), पद्मा सुब्रह्मव्यम (भरतनाट्यम), पार्वती कुमार (नृत्य-गुरु),(भरनाट्यम), पुरु दाधीच (कथक), पूवैया-बहिनें (कथक), प्रेरणा श्रीमाली (कथक), बाल सरस्वती (भरतनाट्यम), बिन्दादीन (कथक), बिपिन सिंह (मणिपुरी - नृत्य गुरु), बिरजू महाराज (कथक-गुरु), मल्लिका साराभाई (भरतनाट्यम), माया चटर्जी (कथक-लखनऊ घराना), मायाधर राउत (ओडिसी), मीनाक्षी सुन्दरम् दिल्लै (नृत्य गुरु), मुन्नालाल शुक्ल(कथक), मृणालिनी साराभाई (भरतनाट्यम-गुरु), मैडम मेनका (कथक), मोहन प्रसाद शिवधर (कथक), यामिनी कृष्णमूर्ति (भरतनाट्यम), रागिनी देवी (भरतनाट्यम), राधवन नायर (कथकलि), राजा चक्रधर सिंह (कथक-रायगढ़ घराना), राजेन्द्र गंगानी (कथक), रानी कर्णा (कथक), रामगोपाल (भरतनाट्यम), रूकमणी देवी अरुण्डेल (भरतनाट्यम), रोशन कुमारी कथक, रोहिणी भाटे (कथक), लच्छू महाराज (कथक सम्राट गुरु) गुरु वसुन्धरा डोरई स्वामी (भरतनाट्यम), वाजिद अली शाह (अख्तरपिया) नृत्यरास गुरु वैजयन्ती माला (भरतनाट्यम), वेपट्टि चिन्न सत्यम (नृत्य-गुरु, कुचिपुड़ि), शंकरन नम्बूद्री (कथकलि), शंकर होम्बल (भरतनाट्यम-गुरु), शम्भू महाराज (कथक-आचार्य), शान्ता (कथकलि), शान्ताराव (कथकलि), शान्तिवर्धन (मणिपुरी नृत्य-गुरु), शोभना (शोवना), नारायण (कथक), शोभा कौसार (कथक), संयुक्ता पाणिग्रही (उड़ीसी), सचिन शंकर (बैले), सरोजा वैद्यनाथन (भरतनाट्यम), साधना बोस (कुशल नर्तकी), सितारा देवी (कथक), सुखदेव महाराज (नृत्य गुरु, कथक), सुचेता चापेकर (भरतनाट्यम), सुधारानी रघुपती (भरतनाट्यम), सुनयना (भरतनाट्यम), सोनल मानसिंह (नृत्य-गुरु), हेमा मालिनी (भरतनाट्यम), उक्त महत्वपूर्ण जानकारी पुस्तक भारत के संगीतकार लेखक डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग काका हाथरसी के बेटे ने यह पुस्तक मुझे सौजन्य प्रति दी थी। जिसका उल्लेख आज अगर इस नृत्य विशेषांक में नहीं करते तो अपराध बोध होता। वे महान कलाकार अपने-अपने फन के विषय विशेषज्ञ के साथ गायन, वादन और नृत्यों जिसमें विभिन्न नृत्य शामिल है ऐसे पारखी, गुणी कला गुरुओं के साथ ही आज की युवा पीढ़ियों में ऐसे कई नाम है जो यहाँ पर जिक्र करना शायद संभव नहीं हो सकेगा मैं विशेष रूप से यहाँ पर डॉ. लतासिंह मुंशी जी का जिक्र करना चाहूँगा जो स्वयं भरतनाटम् की वरिष्ठ कलाकार, गुरु तथा इस प्रतिष्ठा नृत्य विशेषांक की आप अतिथि सम्पादक भी हैं। हम उनके इस सहयोग के लिए कृतज्ञ हैं। आभारी हैं। कि उन्होंने अपने बहुत ही वयस्त समय से समय निकाल कर 'कला समय' को दिया हमें यह बताते हुए हर्ष कि कला समय का यह नृत्य विशेषांक 'कला समय' का निरन्तर प्रकाशन के 29 वें वर्ष का प्रवेशांक है। यह सुधी लेखक और पाठकों तथा आप सभी संपादक मण्डल के सलाहकार, मार्गदर्शक एवं संरक्षकों का आर्शिवाद 'कला समय' को निरन्तर मिल रहा है। इस 29 वर्षों में 'कला समय' अब 'कला समय' संस्था के रूप में भी पिछले 13 वर्षों से कला और कलाकारों को समर्पित है तथा साहित्य के क्षेत्र में कला समय प्रकाशन के रूप में अभी तक तेरह पुस्तकों का प्रकाशन किया है यह लेखकों के प्रति हमारा सेवा भाव तथा सहयोग और विश्वास है। इस तरह 'कला समय' पत्रिका, कला समय संस्था और कला समय प्रकाशन के रूप में पाठक लेखक और कलाकारों हेतु सम्मानजनक मंच दिलाने में सक्रिय है। 'कला समय' के इन तीनों प्रकल्पों में आप सभी का स्वागत है। आशा है इस रचनात्मक सांस्कृतिक अनुष्ठान में आप सब का इसी तरह मार्गदर्शन और सहयोग के हम अभिलाषी हैं। हम उन सभी लेखकों, साभार सामग्री दाताओं के हृदय से आभारी हैं कि यह जनहित में कला समय का छोटा सा आप सभी के सहयोग से प्रयास है।

आगामी अंक वाद्यों पर केन्द्रित (भाग-दो) की अतिथि सम्पादक सुनीरा कासलीवाल व्यास हैं। कृपया उस विशेषांक में भी आपका रचनात्मक सहयोग अपेक्षित है।

79 वें स्वतन्त्रता दिवस की शुभकामनाएं।

।।शुभमवस्तु।।

- भँवरलाल श्रीवास

पुनर्पाठ : संस्कृति

सदैव चलने वाली सृष्टि की स्थिर धुरी हैं शिव

डॉ. कपिल तिवारी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)

जो जन्मा है, वह अजन्मे की आराधना में है। जो स्वयं अनंत है, वह अनादि की प्रार्थना में है। जो सृष्टि के पहले भी है, महाप्रलय के बाद भी होंगे। जो महाकाल भी हैं. वे नित्य क्षण भी हैं। ये सारा जगत शक्ति के विलास की लीला है। शक्ति उनके हृदय में शांत भाव से विश्राम करती है। सृष्टि की धुरी शिव ही हैं।

अज्ञात कारणों से शक्ति को स्वातंत्र्य बोध होता है तब सृष्टि की इच्छा के निमित्त शिव के हृदय के बाहर आती है शक्ति। इस जगत की मूल शक्ति या ऊर्जा में एक निष्कल और एक कलापूर्ण है। इस अर्थ में शक्ति और शक्तिमान को समझने का प्रयास करना चाहिए।

यह बह्म जब त्रित्व में विभाजित होता, तब वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश है। यह काल जब त्रित्व में विभाजित होता है, तब भूत, भविष्य, वर्तमान है। यह दिक् जब त्रित्व में विभाजित होता, तब वह लंबाई, चौड़ाई, गहराई है। उसके पहले महाकाश, चिदाकाश है। यह सत्व जब त्रित्व में विभाजित होता, तब वह सत, रज, तम होता है। परा और अपरा प्रकृति के संगठन यही निमित्त हैं। परा प्रकृति तत्वातीत और गुणातीत है। अपरा प्रकृति गुणपूर्ण और तत्वपूर्ण है। उसे दृश्यमान भौतिक सत्ता के लिए तीन गुणों का आश्रय और पंचतत्वों की समष्टि चाहिए। उसे ऐसा काल चाहिए, जो गतिमान हो। जिसमें भूत, भविष्य, वर्तमान प्रतिक्षण यात्रा करते हों।

संसार एक चक्र का नाम है, जो निरंतर चलता है। इसे चलाने के लिए एक स्थिर धुरी की जरूरत है, जो नहीं चलती। स्थिर धुरी के बिना कोई चक्र चल नहीं सकता। इस अर्थ में शिव सृष्टि की स्थिर धुरी हैं। वे अनंत जीवन, अनंत मृत्यु को समष्टि भी हैं। उन्होंने सृष्टि के लिए सारा अमृत उदारतापूर्वक सभी को लेने दिया। सृष्टि के कल्याण के लिए सारा विष स्वेच्छा से स्वयं ग्रहण किया। वे प्रत्येक मृत्यु के पार हैं। इसलिए हलाहल विष भी उनके कंठ से नीचे नहीं जा सका। वे भुजंगों को माला की तरह गले में धारण करते हैं। उनकी जटाओं से पवित्र गंगा निसृत होती है। द्वितीया का सुंदर चंद्रमा जटाओं की शोभा बनकर स्वयं चंद्रमौलि होता है। वे त्रिनेत्रधारी हैं। अपने तीसरे नेत्र से अपने ही पाप कर्म से बोझिल हो गई सृष्टि को क्षण भर में नष्ट करने की शक्ति रखते हैं। वे समष्टि के आदि नाद का डमरू हाथ में लिए हैं। काल, नियति और मृत्यु का त्रिशूल एक हाथ में है, जिसके प्रहार से किसी के बचने की कोई संभावना नहीं है। वे अनंत युगों तक समाधि में जा सकते हैं। लेकिन प्रतिक्षण उनकी ही आद्यशक्ति की रची सृष्टि पर उनकी कृपा बरसती रहती है। वे संहार के कठोर कार्य के देवता भी हैं ताकि नवसृष्टि का नवाचार जीवन को निरंतर रखे। नित्य प्रलय के बिना निरंतर जीवन संभव नहीं। वे इतनी विशाल अस्तित्व सत्ता होकर भी सहज प्रसन्न हो जाने वाले भोलेनाथ ही हैं। उनके वरदानों की कृपा से ऋषि, मुनि, देवता, तपस्वी तो क्या असुर दैत्य भी अछूते नहीं। जो स्वयं को नष्ट करने के लिए भस्मासुर को वरदान देने में भी संकोच नहीं करते। उनकी सरलता की महिमा गाने के लिए कोई शतक ही रचना होगा।

रामेश्वरम् में राम भी उन्हें आराधते हैं और जिसका नाश करने वे निकले, वह रावण भी उन्हीं का भक्त। शिव जानते हैं कि सारे अभिशाप और सारे वरदान मेरे ही हैं। लोग समझते हैं कि शिव वरदानी हैं। मगर यह शिव ही जानते हैं कि हमारी तपश्चर्या का वरदान हमें कितना मिलना चाहिए। यह भी जानते हुए कि हम उसका करेंगे क्या? भस्मासुर को वरदान देते हुए उन्हें ज्ञात है कि विष्णु के मोहिनी रूप से ही उसकी मृत्यु तय है। वे महाकाल हैं। उन्हें उसी क्षण ज्ञात है कि तुम ये करोगे। मुझे ही मारने दौड़ोगे।

वे अपनी आद्यशक्ति के एकनिष्ठ अटूट प्रेमी है, जिन्होंने कठोर तपश्चर्या से उन्हें प्राप्त किया था। इस देश की करोड़ों स्त्रियां अपने मन में एक सुंदर वर की प्राप्ति के लिए श्रावण मास का पुण्य व्रत रखती हैं। शिव का स्मरण करने की दिशाएं अनेक हैं। समष्टि बहुत दिशाओं में खुलती है। लेकिन हर दिशा में हम उन्हें पूर्ण ही पाते हैं। उनकी एक उपमा, एक स्वरूप अर्द्धनारीश्वर का भी है। यह जगत ऊर्जा और चेतना की शक्तियों से मिलकर बना है। इस मास की महिमा पार्वती के कठोर तप से जुड़ी है। उससे हो तो प्रसन्न हुए थे शिव। इसी, अर्थ में वे अद्वैत व अद्वय की महान मूर्ति हैं।

लेखक : म.प्र. आदिवासी एवं लोक कला आकादमी के पूर्व निदेशक हैं।
साभार : दैनिक भास्कर भोपाल (म.प्र.)

फैक्ट : 12 शताब्दी के अंत तक अधिकतर संन्यासियों को शैव कहा जाता था। शैव भारत का प्राचीनतम संप्रदाय माना जाता है।

समय की धरोहर ....

सबसे पुराना अभिनय प्रधान जनजातीय नृत्त गवरी

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

दक्षिण राजस्थान में अरावली की पहाड़ियों के जनजातीय गणों के गांवों में भादौ की भोर गवरी जैसे सम्पूर्ण नृत्त को प्रकट करती आती है। बेटियों की ख़ुशी, खुशहाली और कृषि व गोधन के निरोग-निरापद रहकर समृद्धि देने की कामना से पिता के गांव और घर वाले सवा महीने तक राई जैसे नारी पात्र के रूप में जीते हैं। लज्जा गौरी सा बनाव!

तांडव जिसमें रौद्र भाव है और लास्य जिसमें स्नेह का उभार है, इस आयोजन में जब तब देखा जा सकता है। विश्व में अपने अनूठे व्रत का नृत्त है गवरी।

काष्ठ के मुखौटों और आयुध के रूप में लाठी व खांडा का प्रयोग, चौराहों-चंवरों-चत्वारों पर खुले में नर्तन, मृत्त वाद्य मृदंग (मांदल) के लयबद्ध वादन के साथ घेरे में गम्मत सहित रम्मत और गेय अगेय संवादों के साथ अभिनय- ऐसी अनेक विशेषताएं इसे बहुत पुराना बताती हैं।

गांव गांव राई रमण :

मेवाड़ अंचल जिसमें उदयपुर, चित्तौड़गढ़, प्रतापगढ़, भीलवाड़ा, राजसमंद जिले आते हैं, में लगभग हर गांव में गवरी नर्तन होता है। गीत है :

गांव-गांव राई। देखे दादा-बाई।।
झमक्यो नै जानक्यो, मोटको नै नानक्यो।
देखे जाई-जाई। गांव-गांव राई।
राधा नै रुकमण, सैण व्हौ कै दुसमण,
आई व्हौ के जाई, गांव-गांव राई।।
छग्गूजी नै भग्गूजी, जग्गूजी नै रघ्घुजी,
आंगणां में थाळी अर मांदळ वजाई,
गांव-गांव राई...।।

प्राचीनतम नृत्त विरासत :

अरावली यदि संसार की प्राचीनतम पर्वतमाला है तो यहां बसा भील समुदाय अपेक्षाकृत पुराना जनजाति समाज है। उनका गवरी नृत्य भी सर्वाधिक प्राचीन नृत्त है। नृत्त इसलिए कि उसमें नाच, गान और वादन तीनों ही रूप हैं और तीनों ही पुराने। गवरी अरावली से लेकर विंध्याचल, सतपुड़ा और सह्याद्रि के बीच सांस्कृतिक सेतु है। गवरी को मैं पुराना इसलिए कहता हूं :

- इसके वाद्य मिट्टी की मांदल (मरदल) और थाली (मृदा और कांस्य युग के प्रतिनिधि हैं तो लकड़ी की तलवारें और लट्ठ पाषाण काल के उत्तरवर्ती आयुध हैं। इसमें आयुधों का विकासक्रम भी रोचक है। चोट के खेल में भाले, तलवार और बंदूक का एक साथ प्रयोग तीन युग का बोधक है।
- इसके प्रमुख पात्र हैं : बूडिया (भुड़िया, भूड़लिया, वयोवृद्ध या कलजयी), लज्जा और धज्जा राई (इच्छा और क्रिया रूप शक्तियां) ये प्रकृति और पुरुष की सबसे पुरातन प्रतीक हैं।
- जनजातीय आखेट के खेल इसमें सबसे अधिक है। सेही का शिकार सबसे पुराना है। भंवरे का ख्याल रचनात्मक रूप में वैसा ही है जैसा कि मध्य भारत के शैलाश्रयों में शहद संग्रह करते जनजातियों के उपाय चित्रित किए गए हैं। (गांधर्ववेद)
- भियांवड़ का खेल महिषासुरमर्दिनी आख्यान का सबसे प्राचीन रूप है जिसमें महिषासुर का वध देवी नहीं, बूडिया करता है। मां के आगे हठी की हट नहीं चलती।
- मत्स्याखेट का खेल है : कालू कीर और माछला जिसमें तालाब बांधने और शिकार का संवाद तथा रोचक झड़प दिखाई जाती है। (राग, रंग, शृंगार)
- भील - मीणा संघर्ष अतीत के सामाजिक वर्चस्व के समर की सजीव स्मृति लिए है। इसमें भील मुखिया अपना सामुदायिक महत्व स्थापित करता है।
- बंजारे की बालद का खेल बड़े अतीत का साक्षी है और शोषण के साथ ही स्त्री मानसिकता का गवाह है। बालदिया के संवाद और कर वसूली की मुखालफत नई बात नहीं। (भारतीय लोक नाट्य)

- इसमें यवनिका या परदे की परंपरा का पहला प्रमाण है। इसके मंचन के वे ही उद्देश्य हैं, जो नाट्य शास्त्र और संस्कृत के प्राचीन नाटकों में नांदी वचनों में आते हैं।

सच कहूं तो गवरी इतने पुराने युगों को सहेजे हुए हैं कि मुझे हर नाट्य कथानक बाद का लगता है। जनजातियों ने नृत्य को आत्मिक विरासत के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रखा है और अपने साथी समाजों को कृतार्थ किया है। (भारतीय लोक माध्यम)

गिरवा की सबसे पुरानी गवरी :

संस्कृतिवेत्ताओं और संरक्षकों का मत है कि गिरवा जैसी पहाड़ियों की तलहटी में बसे उदयपुर के पूर्वी छोर पर आहाड़ जैसी सभ्यता रही है। यह जनजातीय संस्कृति का केंद्र ज्ञात होती है। इसका अपना विभाजन है : आहाड़ा और पहाड़ा। दोनों इलाकों में गवरी का व्रत लिया जाता है। यहां की गवरी बड़ी पुरानी है लेकिन शहरीकरण के दौर में लोगों ने कोई 25 बरस तक गवरी नहीं रमी। आखिर, कोरोना के बाद, 2022 में जाति वर्धन, जल वर्षण और जरा व्याधि विनाशक गौरजा माता का आशीष और जनजाति युवाओं का उत्साह इस नृत्य व्रत का हेतु बना और लगभग 200 भील गमेती घरों के पुरुष सदस्यों ने अपने को कलाकार बनाकर गवरी मंडल में उतारा। यह ऐतिहासिक घटना मैंने आंखों देखी और तब बड़ा उत्साह था। मांदल बाजे (मर्दल या मृदंग) पर दिंग बीदिंग और कांसे की थाली पर थल – थल, जल – जल बजा दिया। गवरी वाले हर घर की गृहिणी ने गवरियों की प्रसन्नता के लिए गौरजा के नाम की आराधना शुरू की। सब कलाकारों के हाथों में व्रत के वलय, भुजाओं पर भगवा पटका, कानों में गौरजा दीक्षा के कुंडल, गले में गवरिया गहना और पांवों में घुंघरू की घमक थी। घर – घर गवरिया और गैल – गली गवरी की चमक और छमक बनी। इस पूरे क्षेत्र में हर घर में उल्लास था। ऐसा बरसों बाद देखने में आया क्योंकि जहां भी गवरी का नाच हो रहा है, पूरी बस्ती की बहन – बेटियां, बाबा – बापजी और बेटे पोते गवरी के हर ख्याल पर नज़र रखते हैं। संवाद से ज्यादा ध्यान अभिनय पर होता है। वैसे संवाद के रूप में स्वर प्रधान गायकी और अरथावनी वार्ताएं होती हैं। उनके पूरी होते ही बाजे पर थाप लगती है और थाली की लय पर पांव उठते हैं। दर्शक भी थिरक उठते हैं।

गवरी दर्शन : पुण्यमय :

यह कितना बड़ा विश्वास है कि गवरी दर्शन रंजन ही नहीं, पीड़ा भंजन का भी बड़ा अवसर होता है। गवरी के मांजी पात्र : भूड़िया (बूडिया, सर्वाधिक वय वाला, अमर, महादेव), दोनों राया (लज्जा और धज्जा), पाटवी भोपा (देवी का घोडला, पुजारी) और कुटकडिया (हंसोड़ा) घर आते हैं और आशीष बरसाते हैं। गोधन निरोग होता है और दुधारू रहता है। मुखिया सुधारू, निरभिमानी, खेत दानी और इंद्रराजा पानी देते हैं। आचार्य भरत का नांदी वचन इससे अलग नहीं है, जैसा कि डॉ. महेंद्र भानावत कहते हैं कि यह नृत्य नाट्य शास्त्र की अपेक्षा अधिक नियोजित और न्यासित है। (भारतीय लोक नाट्य; भारतीय लोक माध्यम)

नृत्य की चालीस दिवसीय अवधि इन पात्रों के लिए किसी तपस्या से कम नहीं। सब के सब नंगे पांव, एकाशन वाले, हरियाली से दूर, मद्य, मान, घर आदि से दूर भूमि पर शयन करने वाले होते हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रही और ब्रह्मचारी – पतंजलि के यम जैसे नित्य व्रत ! मैं इसको इसी अर्थ में नृत्य – व्रत कहता हूं। यह संयम सिखाता है। लक्ष्य साधने की युक्तियां बताता है। इसमें रुद्र का तांडव है और गौरी का लास्य भी। शाक की ऋतु में पोषक होने से गौरी विष्णु की तत्त्वमयी शक्ति लज्जा है जैसा कि शारदा तिलक कहता है। मेवाड़ में इसे नृत्य रूप में सजीव रखा जबकि महाराष्ट्र, कर्नाटक इस मत की मूर्तियां बनीं और अन्य स्मृतियां नहीं बचीं। यह गवरी मंडल गिरवा क्षेत्र का सबसे पुराना नृत्य मंडल है क्योंकि आहाड़ (अहाड़ा) और पहाड़ा दोनों ही पुराने गांव रहे हैं। आहाड़ बस्ती को उसकी प्राचीनतम सभ्यता के लिए जाना जाता है, उस काल की स्मृतियां अभी भी इस समुदाय में सजीव है। मेवाड़ की सभ्यता और संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह कहीं समाप्त या विलीन नहीं होती; अपने केंद्र के आसपास या आजू- बाजू जीवंत रहती है। यह गवरी नृत्य भी उसका एक बड़ा उदाहरण हैं। जन्माष्टमी के अवसर पर मैंने यहां कान्ह गुजरी ख्याल का आनंद उठाया ! पूरी बस्ती इस सजीव प्रस्तुति को दिन भर से देखती रही : ऐसा ओपन थियेटर और कहां मिलेगा ! नृत्य के प्रति ऐसा आत्मिक समर्पण और उसको जीवंत रखने के लिए सात्विक संकल्प ! यह समुदाय अपनी ऐसी निष्ठा के लिए सम्मान का अधिकारी बना हुआ है !

जवनिका : परदे का पूर्व रूप :

एक बात बड़ी रोचक होगी। ख्याल, लीलाओं और नाटकों में पर्दा कब से आया? अकसर ऐसा पूछा जाता है और नाट्यशास्त्र में इसका उल्लेख नहीं मिलता तो इसको बाहर से आया कहकर ठंडी सांस ली जाती है। नाटक में पर्दे को यवनिका अथवा जवनी (जवनिका) कहा जाता है और नाटकों के पठन पाठन में यह पढ़ने की मिलता है : यवनिका गिरती है। नाम साम्य के कारण इसका संबंध यवन से भी जोड़ा जाता है लेकिन ऐसा नहीं लगता।

इस प्रसंग में मुझे गवरी याद आती है जो हर प्रदर्शनधर्मी कला के प्रत्येक पक्ष की पुख्ता जानकारी देने वाली है। यह एक गंभीर स्रोत मूलक प्रस्तुति वाली रचना है और हजारों सालों में असंख्य बदलाव के बावजूद भी मूल रूप में सुरक्षित है। मैंने भीमबैठका, समूर, चुड़ैल छज्जा के शैलाश्रयों के चित्रों में इसके खेल खोजे हैं। इसकी खुले में चौराहे वाली प्रस्तुति ही नहीं, पोशाक – परिधान, रंग – विधान, वाद्य, आयुध चयन और संवाद शैली सहित नर्तन और रम्मत ज्यों के त्यों हैं। (भारतीय लोकनाट्य) हर खेल में जनजातीय विचार और परंपरा होती है। सामूहिक आखेट, शहद संग्रहण, जनजातीय वैर और उसका शोधन, वृक्षों के साथ संबंध, राजा और प्रजा के रिश्ते, वन विहार के साथ लागू होने वाले नियम... सब खेलों में होते हैं। कहानियां सब रुचिकर। संवाद से ज्यादा महत्व प्रत्यक्ष प्रदर्शन का !

हर गवरिया के पीछे उसकी मां और पत्नी चालीस दिवसीय व्रतानुष्ठान करती हैं। दोपहर से संध्या तक मिट्टी के मांदल और कांसे की

थाली की लयकारी पर घुंघरू घमकते हैं और गावणी – अरथावणी के साथ खेल शुरू और समाप्त होता है। जब भी नया खेल आता है, परदे के पीछे आता है और फिर मंडल में नर्तन बिलोवन के रूप में होता है।

वनवासियों को धन्य कि उन्होंने जिन दिनों में फसलें लहलहा रही होती है, ताजा मक्के (हरे) का दाना तक नहीं चखते हैं। महिलाओं तक उनकी सफलता के लिए व्रतधारिणी रहती हैं। गांव गांव इस नृत्य के प्रदर्शन होते हैं। चौराहे, तिराहे और चौपाल रंगमंच बन जाते हैं। मैं सोचता हूं कि इसी कारण लोक नाटक के मंचन के तीन रूप हमारे यहां रहे हैं–

1. गेलू (पथीय या रास्ते में होने वाले),
2. घरेलू (घरों में होने वाले) और
3. छपरेलू (मंच बनाकर किए जाने वाले)।

इनमें से गवरी गेलू कोटि का है। जहां वागड की सीमा मेवाड से लगती है, वहां से लेकर मारवाड ओर जहां मालवा की सीमा मिलती है, उस मेवाड में इसका मंचन होता है।

इसका समापन गौरजा या पार्वती देवी की गजारूढ प्रतिमा के जल में विसर्जन के साथ होता है। पार्वती की प्रतिमा जिस दिन बनाई जाती है, वह 'गडावण' या बनाने का दिन होता है, जिस दिन विसर्जन होता है, वह 'वलावण' पर्व। इसके बाद मांदल खूंटी पर रख दी जाती है, कलाकारों के लिए परिजन, रिश्तेदार पोशाकें लाते हैं, यह पहिरावणी परंपरा है। समापन दिवस वृक्षों की रक्षा का संदेश देने वाला नाटक 'बडलिया हिंदवा' जरूर मंचित होता है।

ताज्जुब होगा कि यह नाट्य प्रसिद्ध सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के जीवन चरित्र पर आधारित है। गवरी में उसका नाम राजा जैल (जैसल) है। इस खेल में रानी मेंदला का किरदार है। प्रबंध चिंतामणि (1304 ई.) में ये नाम आए हैं। वहां जयसिंह को जैसल, रानी को मयणल्ला कहा गया है। जब यह संदर्भ मैंने देखा तो आश्चर्य में डूब गया! जनजातियों ने इस प्रजा पालक राजा का चरित्र आज तक सुरक्षित रखा है। गवरी का आरंभ इसी खेल से होता है।

इसमें भंवरे का जो खेल है, वह शहद संग्रहण के प्राचीन प्रसंग को समेटे हुए है। यह खेल विंध्याचल की पहाड़ियों के शैलाश्रयों में मिले आदिमानव के शहद जमा करने के प्रसंग के चित्र से बड़ा मेल खाता है। कभी तुलना की गई है।

इसके अतिरिक्त भींयावड नाटक होता है। भीयावड दरअसल महिषासुर मर्दिनी के आख्यान पर आधारित है। भीया से आशय महिष है, वही हठिया है, हठ करने वाला, दाणव है अर्थात दानव है। देवी उसका वध करती है और फिर नवरात्रि आ जाती है, देवी पुन: सृष्टि के सुनियमन के लिए कृषि की ओर उन्मुख होती है। जवांकुर बोये जाते हैं। यह नई फसल की तैयारी का संदेश देता है।

गवरी नृत्य के लिए मशहूर है कि इसके आयोजन से व्याधि, मरकी जाती है। बहन – बेटियां फलती – फूलती है, गांव गौरव बढ़ता है। राज काज प्रभावित नहीं होता, समय पर वर्षा होती है। आतंक दूर होता है। अकाल की छाया नहीं पड़ती, चौपाए स्वस्थ रहते हैं और खूब दूध देते हैं।

यह नांदी वचन का विश्वास है और प्रत्येक संस्कृत नाटक से जुड़ा है। कम ही जानते हैं कि यह नांदी वचन जनजातीय भाषा और संस्कृति से ग्रहण किया गया है। यह नाटक पूरी तरह कृषि और वृक्षों के साथ जुडा हुआ है।

सवा मास तक नारी स्वरूप का व्रत :

यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन शक्ति मत की अपनी मर्यादाएं और मान्यताएं हैं। भील जनजाति में जिस शाक्त मत की परंपरा विद्यमान है, वह चौंकाती है। वे गवरी जैसे नृत्य – नाट्य का व्रत लेते हैं तो सवा मास तक राई (गौरी : लज्जा और धज्जा) बने रहने के लिए स्त्री परिधान धारण ही नहीं करते बल्कि पांवों पर (उकडू) ही बैठते हैं।

मूर्तिकला में इस तरह बैठी मूर्तियां मथुरा आदि से मिली हैं। राई के किरदार में कोई व्यक्ति ठिए पर टिक कर नहीं बैठता। पालकी आसन लगाकर भी नहीं। अधर आसन! यह किसी साधना से कम नहीं। वे हरा न खाते हैं और न पहनते। स्त्रियोचित सभी गहने धारण करते हैं। चांदी ही श्रेष्ठ मानी जाती है। राई का वेश पीढ़ी दर पीढ़ी धारण करना होता है। पिता के बाद पुत्र और पुत्र के बाद पौत्र। कभी वंश न चले तो उसी खानदान के भाइपा में राई के कपड़े पहने जाते हैं। यह कठोर नियम है। बूड़िया और राई ही नहीं, माँझी भोपा और कुटकुटिया, मीणा, कालू कीर, बंजारा, हठिया, भियावड़, खड़लिया, गोमा, कालिका आदि सभी के किरदार खानदानी होते हैं। राई बने व्यक्ति गवरी के मंडल में अपने मुंह को ढंक देते हैं। सिर्फ आंखें खुली रहती हैं और इच्छा तथा क्रिया रूप में लास्य भाव प्रदर्शित करते हैं। तांडव के साथ लास्य का रूप यदि कहीं समझा जा सकता है तो गवरी मंडल ही अति प्राचीन है। वे पांव के अंगूठे और अंगुलियों के बल खड़े होकर और हाथ ऊपर उठाकर हर अन्याय का विरोध करते हैं और काठ का खंडा रखने वाले बूडिया को संहार के लिए अग्रसर करते हैं।

कितना बड़ा विश्वास है कि गवरी के मंडल में जो घई की जाती है, वह बावन भैरू और चौंसठ योगिनी की किलेबंदी का रूप होती हैं। जब डायन आती है तो दर्शकों की भीड़ में बैठे हर भोपा, कोटवाल को चौकी होती है। हठिया और भियावड के आगमन पर भी हर भोपा ऊर्जावान होकर अपना बल उसको अग्रेषित करते हैं। तब याद आता है कि ऋषि कैसे अपना बल हस्तांतरित करते थे! देवी और देव के अदृश्य रहने के भाव को पल्लू से ढके और मुखौटे से बंधे रूप में समझा जा सकता है। ये जनन, सृजन के गहन अनुबंध की चेतना लिए हैं! इनकी गावणी, अरथावनी कभी ध्यान से सुनी हैं! कोई नहीं कहेगा। कहेगा तो यही, खबर नहीं पड़ी, लेकिन मजा बहुत आया!

लेखक – वरिष्ठ साहित्यकार, भारतीय विद्याविद्
और संस्कृत के वैज्ञानिक ग्रंथों के खोजकर्ता हैं।
संपर्क : विश्राधरम्, 40 राजश्री कॉलोनी, विनायक नगर,
उदयपुर 313001 (राज.) मो. 9928072766

■

भारत के शास्त्रीय नृत्य

डॉ. देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग'

नृत्य अभिव्यक्ति का परिचायक है। मानव के साथ-साथ प्रकृत्ति, घरा, जल, थल, नभ, वायु, अनल, चर, अचर, जड़ और चेतन सभी अपनी-अपनी तरह से नृत्य करते दिखाई देते हैं। पृथ्वी का कण-कण प्रेम, हर्ष, शोक, विषाद, आनन्द और साहचर्य को निजी भाव भंगिमाओं से दर्शाता है। यही सच्चा नृत्य है जिसने मानवीय नृत्य कलाओं को जन्म दिया है। नृत्यकार अपनी भाव भंगिमाओं और गतिविधियों को लय और ताल के साथ समायोजित करके कथानक विशेष की अभिव्यक्ति करता है जो आनन्द, हर्ष, विषाद, प्रेम, श्रृंगार इत्यादि का संचार करता है, यही नृत्य का मूल भाव है।

नृत्य का उद्भव सृष्टि से ही माना जाता है। आदिम मानव जंगलों में रहता था। भाषा का जन्म नहीं हुआ था। शिकार इत्यादि से उदर पूर्ति करता था। उस समय आदिम मानव शिकार की खुशी में अपने समूह के साथ नृत्य करता था। शनै शनै सभ्यता का विकास हुआ, भाषा के विकास के साथ-साथ लोक संगीत का उदय हुआ और लोक संगीत से शास्त्रीय संगीत का जन्म हुआ। स्वर, लय, ताल, राग की विविध परिभाषायें गढ़ी गईं और शास्त्रीय संगीत और नृत्य अभिजात्य कला के रुप में समाज में स्थापित हुआ। आदिम नृत्यों से लोक नृत्य और लोक नृत्य प्रकारों से विविध शास्त्रीय नृत्यों का जन्म हुआ। विद्वज्जनों ने शास्त्रीय शैलियों का शास्त्र निर्मित किया और समाज में स्थापित किया। इसी क्रम में शास्त्रीय नृत्यों का प्रचार-प्रसार होता चला गया।

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार आदिदेव महादेव ही नृत्य के आद्याचार्य है। इसीलिये उन्हें नटराज भी कहा जाता है। माता पार्वती श्रृंगार परक लास्य नृत्य की जननी हैं। भगवान महादेव और पार्वती ही हैं जिन्होंने नृत्य में नवरसों का संचार किया और रसों ने भाव और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने का साधन नृत्य को बनाया।

वेद, पुराण, उपनिषदों, महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थों में नृत्य का विवरण विविध भाँति मिलता है। आचार्य भरत ने नाट्य शास्त्र में संगीत, नृत्य, नाट्य, स्वर, लय, ताल, वाद्य आदि सभी अवयवों का वर्णन विधिवत किया है। नृत्य, नृत्त, नाट्य की व्याख्या और सात्विक, आंगिक, वाचिक और आहार्य अभिनय आदि का भी विशद विवेचन किया है।

भारतीय नृत्यों का मंदिरों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। भारतीय शास्त्रीय नृत्य मंदिरों में ही पनपे यह कहना भी अतिश्योक्ति पूर्ण नहीं है। मंदिरों में देवदासियों भगवान के समक्ष समयानुसार विविध नृत्यों की प्रस्तुति किया करती थीं जिसका साक्षात उदाहरण आज भी दक्षिण भारत एवं उड़ीसा में देखा जा सकता है। कलांतर में मंदिरों से नृत्य राजे रजवाड़ों और रईसों के यहाँ पहुँचा और उसके स्वरुप में अनवरत परिवर्तन आने प्रारम्भ हो गये। देश, काल, परिस्थितियों, क्षेत्रवादी संस्कृति के परिणाम स्वरुप विविध नृत्यों का उद्भव हुआ और विद्वज्जनों ने क्षेत्रानुसार नामकरण करके शास्त्रीय स्वरुप प्रदान किया। आज शास्त्रीय नृत्यों के नौ प्रकार प्रचलित हैं जिनमें आठ सर्वमान्य है तथा नवां भी मान्यता प्राप्ति के पायेदान पर खड़ा है। ये शास्त्रीय नृत्य है भरतनाट्यम, कथक, कुचिपूड़ी, कथकली, मोहिनीअट्टम्, ओडीसी, मणीपुरी, सत्रिय और छाऊ।

नृत्य के विविध रुप, शोभित हैं जग अनूप,
सृष्टि संग प्रकट भये, जन जन अपनायो है।
नटराज नृत्य कर्‌यो, पार्वती रंग भर्‌यो,
नवरस और दशावतार, नृत्य में सुहायो है ।।
देवालय राजाश्रय, पलो बढ़ो विविध भाँति,
संस्कृति संग विविध अंग, गुनियन मन भायो है ।
कथक भरतनाट्यम, ओडिसी और मणीपुरी,
कुचिपूड़ी कथकली, मोहिनीअट्टम सजायो है ।।
सत्रिय नृत्य नवल रंग, नृत्य होत विविध ढंग,
रसिक छाऊ जानि लेओ, नयो नृत्य आयो है।
शंकर और पार्वती, राधा और कृष्ण दोऊ,
दुर्गा के अनेक रुप, 'ब्रजरंग' दिखायो है ।।

भरतनाट्यम -

भरतनाट्यम का उल्लेख भरतकृत नाट्य शास्त्र में मिलता है। इस नृत्य का जन्म दक्षिण भारत के मंदिरों में हुआ है। इसके नामकरण के सन्दर्भ में कहा जाता है कि

भ –भावम् (अभिव्यक्ति)

र– रागम (संगीत)

त – (तालम्)

नाट्यम – (नृत्य)

भरतनाट्यम नृत्य को देवदासियों भगवान के समक्ष प्रस्तुत किया करती थीं। इसमें मुद्रायें, पदसंचालन, भाव भंगिमायें, कथानक आदि होते हैं जिनमें भगवान की विविध लीलाओं का प्रदर्शन होता है। भरतनाट्यम का प्राचीन नाम सादिर अट्टम था। इसे दसी अट्टम और थेवरट्टम के नाम से भी जाना जाता था। भरतनाट्यम को वर्तमान स्वरुप प्रदान करने वाले तंजौर चौकड़ी के नाम से प्रसिद्ध चार भाई चिन्नैया, पोन्नैया, शिवानंदन और वाडिवेलु हैं जिन्होंने मराठा राजा सर्फोजी द्वितीय के प्रोत्साहन पर 19वीं शताब्दी में किया। इसे लोकप्रिय बनाने में रुक्मिणी देवी अरुन्डेल और बाला सरस्वती का नाम उल्लेखनीय है।

कथक –

कथक नृत्य उत्तर भारत का लोकप्रिय नृत्य है। कथक शब्द की उत्पत्ति 'कथा' से हुई है। इसका जन्म कथानक को लेकर गीत, नृत्य और नाट्य के माध्यम से नृत्य करने वाले समुदायों से हुआ है जो एक गाँव से दूसरे गाँव जा जाकर प्रस्तुति दिया करते थे। इनकी गाथाओं में मुख्यत: पौराणिक गाथायें ही होती थीं। भक्ति काल में इसमें अधिकांशत: कृष्ण भक्ति गाथायें ही होती थीं। राधा कृष्ण की लीलाओं का मंचन और नटवरी नृत्य इसका मूल भाव था। मुगल काल में इसके स्वरुप में काफी कुछ परिवर्तन हुआ और यह नृत्य मुगल दरबारों में पहुँच गया। यह मुगल दरबारों में परिष्कृत और विकसित भी हुआ। इसी काल में कथक नृत्य के घरानों का उदय हुआ और लखनऊ, जयपुर, बनारस और रायगढ़ घराने बने। वर्तमान कथक नटवरी नृत्य का ही स्वरुप है। राजकीय संरक्षण प्राप्ति के पश्चात आज कथक नृत्य उत्तर भारत का लोकप्रिय शास्त्रीय नृत्य है। कथक नृत्य को लोकप्रिय बनाने में पंडित बिन्दादीन महाराज, अच्छन महाराज, पंडित बिरजू महाराज, सितारा देवी, गोपी कृष्ण, पंडित नारायण प्रसाद, रोशन कुमारी, पंडित जिया लाल, पंडित सुन्दर प्रसाद आदि विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान है।

कूचिपुड़ी नृत्य –

कुचिपुड़ी नृत्य भारत की प्रमुख आठ शास्त्रीय नृत्य शैलियों में

से एक है। यह आन्ध्र प्रदेश की प्रचलित पारम्परिक नृत्य शैली है। कूचिपुड़ी नृत्य का नामकरण कूचिपुडी गाँव के नाम से पड़ा है जहाँ ब्राह्मणों का समूह जिन्हें भागवथालु कहा जाता है इस नृत्य का अभ्यास करता था। संत सिद्धेन्द्र स्वामी ने इसे 17वीं शताब्दी में एक सुव्यवस्थित स्वरुप दिया और पुर्नजीवित किया। कूचिपुड़ी नृत्य हिन्दू पौराणिक गाथओं पर आधारित होता है जिसमें आद्योपान्त भक्तिभाव के दर्शन होते हैं। इस नृत्य में कर्नाटक संगीत का प्रयोग होता है। इसके साथ मृदंगम, वीणा, बांसुरी आदि वाद्यों का मुख्य रुप से प्रयोग होता है। कूचिपुड़ी नृत्य में तेज पद संचालन तथा मूर्तियों जैसी आकृतियों के माध्यम से अभिव्यक्ति होती है। गुरु तादेपल्ली चिन्न सत्यम्, चिन्ता कृष्ण मूर्ति, गुरुवेदान्तम लक्ष्मी नारायण आदि ने कूचिपुडी नृत्य को खूब समृद्ध किया है। आज यह नृत्य दक्षिण भारत के प्रमुख लोकप्रिय शास्त्रीय नृत्यों में से एक है।

कथकलि नृत्य –

कथकलि नृत्य केरल राज्य का प्रमुख शास्त्रीय नृत्य है। कथकली का अर्थ है कथा और नाटक। कथकलि नृत्य में रामायण, महाभारत और पौराणिक गाथाओं का मंचन होता है। इसमें संगीत, नृत्य और अभिनय का मिश्रण रहता है। कथकलि नृत्य का जन्म 17वीं शताब्दी के आसपास पारम्परिक रामनाट्टम नामक नृत्य से हुआ है। इसे कुटियाट्टम, कृष्णनाट्टम और कलरिप्पयट्टु आदि नृत्य प्रकारों से प्रेरणा मिली है। कथकलि में पात्रों को स्वभाव और चरित्र के आधार पर विभिन्न वर्गों में बाँटा जाता है जैसे पच्चा (देवता), कुट्टी (स्त्री), ताढ़ी (दुष्ट), करि (राक्षस) और मिनुक्क (साधु)। कथकलि नृत्य में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें चेण्डा, मद्धलम नामक ढोल, चेंगिला (घण्टा), इलत्तालम (मंजीरा) आदि वाद्यों का प्रयोग होता है।

कथकलि नृत्य में पात्र को तैयार करने में (मेकअप) लगभग चार घण्टे का समय लगता है। प्रत्येक पात्र का मेकअप अलग अलग तरह

का होता है। यह भाव प्रधान नृत्य है। यह नृत्य शरीर के अंगों, आँखों और चेहरे की माँसपेशियों के नियन्त्रण से भावाव्यक्ति करने वाला नृत्य है। इनके माध्यम से कलाकार शब्दों का प्रयोग किये बिना अपनी कथा एवं उससे सम्बन्धित भावों को व्यक्त करते हैं। कथकली के नर्तकों को बारह वर्ष तक कठोर प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है। केरल कला मण्डलम कथकली में शैक्षणिक और अनुसंधान के क्षेत्र में अग्रणी संस्था है जिसकी स्थापना बीसवीं शताब्दी में कवि वल्लथथोल नारायण मेनन और मन्नकुलम मुकुन्द राजा ने की थी।

मोहिनीअट्टम नृत्य –

मोहिनीअट्टम केरल राज्य का महिलाओं द्वारा किये जाने वाला भारत का एक शास्त्रीय नृत्य है। इसकी उत्पत्ति भगवान विष्णु के मोहिनी अवतार से हुई है। यह नृत्य स्त्रियोचित कोमल भाव भंगिमाओं, सौम्य और श्रृंगारिक मुद्राओं, सुन्दर वेशभूषा और मणिप्रवलम भाषा में होता है। इसमें मृदंगम, वीणा और बांसुरी जैसे वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। इसमें लगभग 40 विविध मुद्राओं (अडावुकल) का प्रयोग किया जाता है। नर्तकी सोने के किनारों वाली सफेद कासावु साड़ी पहनती हैं। सोने के आभूषण और नेत्रों पर गहरा मेकअप करती है। मोहिनीअट्टम के संगीत में विविध लयों का समावेश होता है। गीत मलयालम और संस्कृत में होते हैं। मलयालम मिश्रित मणिप्रवलम भाषा का प्रयोग भी प्राय: इस नृत्य में देखने को मिलता है। बीसवीं सदी में केरल कलामंडलम के संस्थापक श्री वल्लथोल नारायण मेननके प्रयासों से इस नृत्य शैली को गरिमा प्राप्त हुई है। इस नृत्य के प्रचार प्रसार में सुविख्यात नृत्यांगना डा. कनक रेले द्वारा किये गये प्रयास सर्वविदित एवं प्रणम्य है।

ओडिसी नृत्य –

ओडिसी नृत्य उडीसा की शास्त्रीय नृत्य शैली है। इसका जन्म उड़ीसा के मंदिरों में देवदासियों के नृत्य से हुआ है। इसमें उड़ीसा के मंदिरों के विविध मंदिरों, गुफाओं और भित्तिचित्रों में उपलब्ध नृत्य की विविध मुद्राओं का उपयोग समन्वित है। ओडिसी नृत्य सम्बन्धी अनेकानेक शिलालेखों भी मंदिरों और गुफाओं में देखने को मिलते हैं। इस नृत्य के प्रचार प्रसार एवं विस्तार में नृत्य गुरु केलुचरण महापात्र का नाम उल्लेखनीय है। इस नृत्य में भगवान जगन्नाथ एवं अन्य देवी देवताओं की विविध लीलाओं का वर्णन होता है। यह मुख्य रुप से महिलाओं द्वारा किया जाने वाला नृत्य है लेकिन आज महिला और पुरुष दोनों ही इस नृत्य को समान रूप से करते हैं। इसका श्रेय गुरु कैलुचरण महापात्र को जाता है। ओडिसी नृत्य का आधार भरत कृत नाट्य शास्त्र है। इसमें नाट्य शास्त्र के अनुरुप विविध सिद्धान्तों का अनुपालन होता है। नाट्य शास्त्र में वर्णित 108 नृत्य प्रकार अप्रत्यक्ष रुप से ओडिसी नृत्य की ओर इंगित करते हैं। ओडिसी पारम्परिक रुप से एक नृत्य नाटिका शैली है। इसमें त्रिभंगी स्वरुप को विशेष महत्व दिया जाता है। पारम्परिक ओडिसी नृत्य दो प्रमुख शैलियों में दिखाई देता है। पहले प्रकार में मंदिरों में महिलाओं द्वारा अपने आराध्य के समक्ष किया गया आध्यात्मिक नृत्य है। दूसरा आधुनिक प्रयोगवादी ओडिसी नृत्य है जिसमें अनेकानेक विषयों और प्रयोगात्मक विचारों लेकर नई नाट्य परिकल्पनाओं को साकार करने का प्रयास किया जाता है। इसमें गीत गोविन्द की रचनाओं को विशेष स्थान दिया जाता है।

उदयगिरि और खण्डगिरि की गुफाओं में इस नृत्य के अनेकों पुरातात्विक प्रमाण आज भी देखने को मिलते हैं। तेरहवीं सदी में निर्मित कोणार्क के सूर्य मंदिर में बनी नृत्य करती हुई प्रतिमायें आज ओडिसी नर्तकियों के लिये प्रेरणा स्त्रोत हैं। ओडिसी नृत्य के साथ पखावज, बांसुरी, वीणा आदि वाद्यों का मुख्य रुप से प्रयोग होता है।

मणीपुरी नृत्य –

मणीपुरी नृत्य उत्तर पूर्वी राज्य मणीपुर का शास्त्रीय नृत्य है। इस नृत्य में तांडव और लास्य नृत्य दोनों का समावेश देखने का मिलता है परन्तु लास्य का प्रभाव अधिक है। इसके वृत्तगति वाले पदसंचालन, स्वाभाविक मुख–मुद्रायें, राधा–कृष्ण की लीलाओं के साथ जनमानस को आनन्द प्रदान करते हैं। मणीपुर राज्य की भौगोलिक स्थिति और दूर दराज का क्षेत्र होने के कारण यह नृत्य अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचायें रखने में पूर्णत: समर्थ है। इसके साथ पुंग (ढोल) एवं बांसुरी का मुख्य रुप से प्रयोग किया जाता है।

मणीपुरी नृत्य का जन्म कब हुआ इसके कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलते किन्तु यह कहा जा सकता है कि यह एक प्राचीन और आध्यात्मिक नृत्य शैली है जिसमें राधा कृष्ण की लीलाओं का समावेश देखने को मिलता है।

मणीपुर का लाई हरोबा एक प्राचीन नृत्य है जो मणीपुर की समस्त नृत्य शैलियों का आधार है। इसमें देवी-देवताओं के आमोद-प्रमोद का दर्शन होता है। राजा भाग्यचन्द्र के काल में इस नृत्य में राधा-कृष्ण की रास लीलाओं का समावेश हुआ और यह नृत्य रासलीला परक बन गया। इस नृत्य में पाँच रास प्रकार पाये जाते हैं जिनमें चार का सम्बन्ध विशेष ऋतुओं से है। रास की वेशभूषा में कढ़ा हुआ घाघरा शामिल होता है जो पैरों पर फैला होता है, इसके ऊपर महीन मलमल का एक घाघरा पहना जाता है। शरीर का ऊपरी भाग गहरे रंग के मखमल के ब्लाऊज से ढका रहता है और एक परम्परागत घूँघट एक विशेष केश-सज्जा के ऊपर पहना जाता है, जो मनोहारी रूप से चेहरे के ऊपर गिरा होता है। कृष्ण को पीली धोती, गहरे मखमल की जाकेट और मोरपंखों का एक मुकुट पहनाया जाता है। इनके अलंकरण उत्कृष्ट होते हैं और उनकी बनावट प्रदेश की विशेषत्ता लिये होती है।

सत्रिय नृत्य -

सत्रिय नृत्य असम राज्य का भारतीय शास्त्रीय नृत्य है। सन 2000 में संगीत, नृत्य और नाटक को समर्पित संस्कृति मंत्रालय की स्वायत्त संस्था संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली ने इसे आठवे शास्त्रीय नृत्य के रुप में मान्यता प्रदान की है। सत्रिय नृत्य की उत्पत्ति 15वीं शताब्दी में असम के महान संत शंकरदेव द्वारा स्थापित वैष्णव मठों में हुई है। इन वैष्णव मठों को असम में सत्र कहा जाता है। इस नृत्य में भगवान कृष्ण, राम और विष्णु के अवतारों की विविध गाथाओं को नृत्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह एक आध्यात्मिक नृत्य शैली है जिसमें असमिया संस्कृति का निर्वाह करते हुये प्रस्तुति की जाती हैं। यह नृत्य सत्रों में ही विकसित एवं विस्तारित हुआ परन्तु आज यह असम की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत के रूप में जाना जाता है। पहले असम में दो नृत्य शैलियों थीं ओजा पल्लि और देवदासी। ओजा पल्लि नृत्यों के दो प्रकार अब तक असम में हैं दृसुकनानी, जिसमें ओजा पल्लि नृत्य सर्प देवी की पूजा के अवसर पर समूह गायन की संगति करते हैं। मनसा और व्याहार गीत, रामायण, महाभारत और कुछ पुराणों के असमी रूपांतर से ग्रहण किए गए हैं। शक्ति सम्प्रदाय (पंथ) का सुकनानी ओजा पल्लि है और व्याहार गीत वैष्णव सम्प्रदाय का है। श्रीमंत शंकरदेव ने सत्र में अपने दैनिक धार्मिक अनुष्ठानों में व्याहार गीतों को जोड़ा। अब तक भी व्याहार गीत असम के सत्रों के धार्मिक अनुष्ठानों का एक भाग है।

सत्रिय नृत्य परंपरागत हस्तमुद्राओं, पाद कार्यों, आहार्य संगीत आदि के संबंध में सख्ती से बने सिद्धांतों के द्वारा सत्रिया नृत्य की परंपरा संचालित होती है। इस परंपरा में विशिष्ट रूप से दो धाराएं होती हैं गायन बायनार नाच से खरमारनाच का आरंभ नाटकीय प्रस्तुतियों से युक्त भाओना संबंधित रंगपटल से होता है तथा दूसरे ऐसे नृत्य जो स्वतंत्र है जैसे चाली, राजस्थान चाली, झुमुरा, नादु भंगी आदि। इसमें चाली को चरित्र लालित्यपूर्ण एवं शानदार वीरोचित्त जुदाई को प्रदर्शित करते पुरूप चरित्र द्वारा निष्पादित किया जाता है।

छाऊ नृत्य -

छाऊ नृत्य भारत के पूर्वी भाग का नृत्य है। इसे अर्ध शास्त्रीय नृत्य कहा जा सकता है। इसमें मार्शल आर्ट का प्रयोग विविध भाँति किया जाता है। इस नृत्य में लोक पारम्परिक शैलियों और परम्पराओं का निर्वहन तो किया जाता है साथ ही साथ धार्मिक मान्यताओं को भी विशेष स्थान दिया जाता है। छाऊ नृत्य ने तीन प्रकार देखने को मिलते हैं जो अपनी अपनी विशेषताओं के साथ प्रचलित हैं। छाऊ नृत्य की तीन शैलियाँ निम्नवत हैं -

1. पुरुलिया छाऊ (पश्चिम बंगाल)

2. सरायकेला छाऊ (झारखंड)

3. मयूरभंज छाऊ (ओडिसा)

पुरुलिया और सरायकेला छाऊ में मुखौटों और चमकीली वेशभूषा का प्रयोग किया जाता है। इसके साथ विशिष्ट प्रकार का मृदंग वादन होता है जिसकी ताल पर नर्तक नृत्य प्रस्तुत करता है। पुरुलिया और सरायकेला छाऊ में काफी कुछ साम्य देखने को मिलता है। मयूरभंज छाऊ में मुखौटों का प्रयोग नहीं होता है। यह शैली अपनी लुभावनी वेशभूषा और गति मुद्राओं के लिए जानी जाती है।

इस नृत्य में युद्ध तकनीकों, पशुओं की चालों और शारीरिक मुद्राओं का सुंदर संयोजन देखने को मिलता है। पुरुलिया और सरायकेला शैलियों में नर्तक अलग-अलग चरित्रों को दर्शाने के लिए विशेष मुखौटे पहनते हैं। नृत्य अक्सर रामायण, महाभारत और स्थानीय लोककथाओं से प्रेरित होते हैं, जिसमें शिव और पार्वती से जुड़ी कहानियाँ प्रमुख होती हैं। नृत्य में ढोल, धुमसा जैसे पारंपरिक वाद्य यंत्रों और मोहुरि एवं शहनाई जैसे वाद्ययंत्रों का प्रयोग होता है। यह नृत्य अक्सर एक खुले स्थान पर रात भर आयोजित किया जाता है। छाऊ नृत्य पूर्वी भारत की सांस्कृतिक विशिष्टता का परिचायक है।

लेखक: विद्वान संगीतकार हैं।
संपर्क : 353, भूतल, सूर्य नगर फेस - 2, सेक्टर - 91, फरीदाबाद - 121013
हरियाणा सम्पर्क - 9999539998, 9868361132

आलेख

तांडव लास और अंग को गनें री

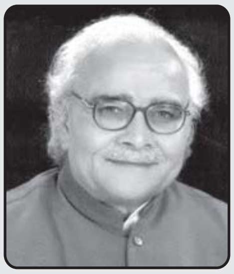

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

केलिमाल में स्वामी हरिदासजी की एक ध्रुपद है, जिसमें युगल-नृत्य का एक चित्र है। कुंजबिहारी नाच रहे हैं और लाड़लीजू सात, नौ, ग्यारह, तेरह मात्राओं की औघर ताल पर ताताथेई ताताथेई बोलों के साथ उनको नचा रही हैं। तांडव और लास तथा नृत्य-संगीत के अन्य अंगों की गणना भला कौन कर सकता है-

कुंजबिहारी नाँचत नीके, लाड़ली नचावत नीके
औधर ताल धरें श्रीस्यामा, ताताथेई ताताथेई बोलत संग पी के।
तांडव लास और अंग को गनें, जे जे रुच उपजत जी के।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कौ मेर सरस बन्यौ और रस-गुनी परे फीके ॥

भगवान् कृष्ण के साथ नृत्य का अभिप्राय बहुत व्यापक रूप से जुड़ा हुआ है। सूरदास ने बाल-लीला के प्रसंग में नृत्य के अनेक चित्र अंकित किए हैं-

आँगन स्याम नचावहीं जसुमति नंदरानी।
तारी दै दै गावहीं मधुरी मृदुबानी।
त्यों त्यों मोहन नाचै ज्यों ज्यों रई घमरकी होड़ री।
अब की बार मेरे कुँवर कन्हैया नंदहि नाच दिखावहु।

एक भक्त कवि का पद्य है -

शृणु सखि कौतुकमेकं नंदनिकेतांगणे मया दृष्टम्।
गोधूलि धूसरांगो नृत्यति वेदांत-सिद्धान्तः।

रसखान का बड़ा प्रसिद्ध सबैया है-

ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावें।

एक जगह पर यशोदा नचा रही हैं, एक जगह पर अहीर की छोरियाँ नचा रही हैं और केलिमाल के इस पद में लाडलीजू नचा रही हैं। लाड़ले-लाल प्रेमरस के वशीभूत होकर नाच रहे हैं।

चैतन्यचरितामृत में भी एक चित्र है-

राधिकार प्रेमगुरु आमि शिष्य नट। सदा आमा नाना नृत्य नचाय उद्भट। प्रेमोत्कर्ष के कारण राधा गुरु हैं तथा कृष्ण शिष्य हैं नट। राधा अपनी इच्छा से कृष्ण को नाना प्रकार से नचा रही हैं।

'केलिमाल' में तीन प्रकार के संगीत चित्र हैं एकल-संगीत, युगल-गान या युगल-नृत्य और मण्डल-नृत्य। मण्डल-नृत्य रास-नृत्य है। मूलतः यह लोकनृत्य है। संगीत या मण्डल नाट्यशास्त्र की टीका में अभिनवगुप्त ने लिखा है

मंडलेन तु यन्नृत्यं हल्लीसकमिति स्मृतम् एकस्तत्र तु नेतास्याद् गोपस्त्रीणां यथाहरिः।

'श्रृंगारप्रकाश' में भी भोजराज ने हल्लीसक की यही परिभाषा की है. साथ में यह भी कहा है कि विशिष्ट ताल के साथ निबद्ध होने पर इसे रास कहा जाता है। रामनारायण अग्रवाल ने हल्लीसक को आभीरों में प्रचलित नृत्य बतलाया है। डॉ. राकेशबाला सक्सेना का कहना है कि राजस्थान का उडिया-झूमर, गुजरात का गरबा, महाराष्ट्र का गोप, बंगाल का जात्रा, कश्मीर का हेटक, हिमाचल का मलका, मणिपुर का लाइहरोबा, आंध्र का कौलाटम् रासनृत्य के ही रूप हैं।

कर्ट शैख्स (Dr. Curt Shechs) की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'वर्ल्ड हिस्ट्री ऑफ डांस' इस विषय की प्रामाणिक कृति मानी जाती है। वे कहते हैं कि सभी आदिम जातियों में मण्डलावर्त नृत्य पाया जाता है। डॉ. कर्ट शैख्स तो मण्डलावर्त नृत्यों को मानव-पूर्व मानते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'यह अविसंवादित तथ्य है कि इस प्रकार के नृत्य का मूल-प्रेरक मनोभाव उल्लास है। विविध प्रकार की चारियों से वलयित, ताल द्वारा नियन्त्रित, धारावाहिक मण्डलावर्त नृत्य जीवन के किसी अज्ञात रहस्यमय केन्द्र से उल्लसित होता है।' अरूप को रूपायित करना तथा रूप को अरूप तक ले जाना, विराट् की यह अनुभूति साधारण-अनुभव को दिव्य-अनुभूति बना देती है। भारतीय-संस्कृति में गंगा के जल को ब्रह्मद्रव के रूप में ग्रहण कर लिया जाता है। साधारण जल में भी जब अमृतकलाओं की उपस्थिति का भाव दृढ किया जाता है, तब वह दिव्य हो जाता है। इसी प्रकार व्यष्टि-नृत्य भी विराट्-नृत्य की अनुभूति करा सकता है।

सामान्य नर-नारी जीवन का अलभ्य लाभ नृत्य में पा जाते हैं, फिर भी विचारकों ने एक प्रतीक, एक बिम्ब और एक अभिप्राय (मोटिफ) के रूप में नृत्य के माध्यम से सृष्टि-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। नटराज

पं. उदयशंकर एवं पार्टनर
छायाचित्रः सौजन्य ललित शर्मा (झालावाड़)

हो या नटवर, कालिय नृत्य, ताण्डव और लास दर्शनशास्त्र के रहस्य-सूत्र बने और उनके माध्यम से भारत की मनीषा ने सृष्टि-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। नृत्य में रहस्य-तत्त्व को देखा, मनुष्य ही नहीं समग्र प्रकृति नाच रही है। भौरा भी नाच रहा है, हवा भी नाच रही है, नदियाँ भी नाच रही हैं, वृक्षलता झूम रही हैं, सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र भी नृत्य कर रहे हैं, किसी ताल पर किसी लय पर। समुद्र की लहरें भी नाच रही हैं। एक विशिष्ट गति पर धरती भी नाच रही है। समग्र जीवन नाच रहा है। हम स्वयं नृत्य को देख रहे हैं एवं नृत्य भी कर रहे हैं। अन्ततः सृष्टि-लय-रस की लीला है, वह भी आनन्द की एक ताल है, एक लय है, एक मुद्रा है, एक नृत्य है। नृत्य के विश्वबोध की एक दीर्घ-परंपरा भारत के दर्शनशास्त्र में है ।

ललितासहस्रनाम में भगवती को महाताण्डव-साक्षिणी कहा गया है। वहाँ नृत्य के तीन अभिप्राय हैं। एक बिम्ब है, जब शून्य (शव) पर आद्या नृत्य करती हैं। यह तिरोभाव की अवस्था है, प्रलय काल है. ब्रह्म निष्क्रिय -रूप में पैरों के नीचे है और त्रिगुणात्मक- शक्ति नृत्य करती रहती है। यहाँ निष्क्रिय- ब्रह्म साक्षी है. शक्ति नृत्य-रत है, कामायनी में चित्र है-

चिति का स्वरूप यह नित्य जगत,
वह रूप बदलता है शत शत।
कण विरह-मिलनमय नृत्य-निरत,
उल्लासपूर्ण आनन्द सतत।

दूसरा बिम्ब है- सृष्टिकाल का, जब शिवा-शिव दोनों ही परस्पर-साक्षी होकर नृत्य करते हैं। युगलनृत्य है। इसी बिम्ब में जब शिव नृत्य करते हैं तो शिवा साक्षी हैं और शिवा नृत्य करती हैं तो शिव साक्षी हैं। तीसरा बिम्ब प्रलय-काल के आगमन का है। परमभैरव सृष्टि को समेटकर आत्मसात करते जाते हैं और नाचते जाते हैं। यहाँ भगवती महाताण्डव-साक्षिणी हैं। पञ्चदशीस्तव में कहा गया है कि परमभैरव सृष्टि को समेटने के लिए नृत्य करते हैं और उस समय पाश, अंकुश, इक्षु-धनु और बाण वाली तुम्हारी ही मूर्ति साक्षिणी रूप में बनी रहती हैं।

शिव आदिनर्तक हैं, और नटराज हैं तथा कृष्ण नटवर हैं । शिव-गाथा हो या कृष्ण-गाथा दोनों ही मूलतः लोक-गाथा हैं। लोक जीवन का प्रवाह समष्टि-जीवन का प्रवाह है, सामान्य जन-जीवन का प्रवाह है। शास्त्र की दृष्टि विशिष्ट होती है तथा लोक की दृष्टि सामान्य होती है। शिव भी भारत का लोकमन है और कृष्ण भी भारत का लोकमन है। हरिहर की अवधारणा पर ध्यान देने की जरूरत है। 'प्राकृत पैंगलम्' में बारहवीं से चौदहवीं शती तक के अपभ्रंश-पद्यों का संग्रह है। इस ग्रन्थ के अन्त में शिव तथा कृष्ण की (हरिहर की) एक साथ स्तुति की गई है -

जअइ जअइ हर वल इअ विसहर
तिल इअ सुंदर चंदं मुणि आणंदं सुहकंदं।
जअड़ जअइ हरि भुज जु अधरु गिरि
दह मुह कंस विणासा पिअवासा सुंदर हासा।

भक्तकवि सूरदासजी ने हरिहर का चित्र अंकित किया है-

हरिहर संकर नमो नमो।
अहिसायी अहि अंग-विभूषन अमित दान बलविषहारी।
नीलकंठ वरनील कलेवर प्रेम परस्पर कृतहारी।
चंद्रचूड़ सिखि चंद्र सरोरुह जमुनाप्रिय गंगा-धारी।
सुरभि रेनुतन, भस्मविभूषित वृषवाहन वनवृषचारी।
आज अनीह अविरुद्ध एक पस, यह अधिक ये अवतारी।
सूरदास सम, रूप नामगुन अंतर अनुचर अनुसारी।

संस्कृतिशास्त्र के अध्येता को राधा और कृष्ण के युगल को समझने के लिए शिवा-शिव युगल को जानना-समझना अनिवार्य है। दोनों अवधारणाओं में प्रेम का गहनतम रूप है। शैवशास्त्र में शिव को परमनर्तक, नटाम्बर-नटभैरव, परमनाट्याचार्य, नर्तेश्वर-नरेश और नर्तन-प्रिय कहा गया है। शैव दर्शन के अनुसार विश्व का उन्मेष शिव की नृत्यलीला है। काश्मीर-शैव दर्शन के अनुसार शिव से होने वाला विश्व का उन्मेष शिव की स्वातन्त्र्य भरित नृत्य-लीला है। अपनी इस नर्तन-क्रीड़ा से नानारूपात्मक विश्व की सृष्टि करने के कारण शिव को ही शिवसूत्रों में नर्तक कहा गया है, यह पहले कहा जा चुका है। यह विश्व-क्रीड़ा उसके स्वात्मानन्द की ही अभिव्यक्ति है। काश्मीर-शैव दर्शन की सृष्टि सम्बन्धी इस विचारधारा को ध्यान में रखते हुए ही यहाँ कामायनीकार ने नटराज शिव को स्वात्मानन्द के अतिरेक में नृत्य निरत दिखाया है-नटराज स्वयं थे नृत्य-निरत। यह जगत्-नृत्य आनंदभरित शिव का स्वात्म-विलास है और परिपूर्ण स्वातन्त्र्य का स्वात्म-विलास हो उसकी लीला कहलाती है। [काश्मीर-शैव दर्शन और कामायनी, पृ. 243]

शिव संगीत के परमदेवता हैं। वे कच्छपी- वीणा का वादन करते हैं। वीणी-रूप की अनेक शिव-मूर्तियाँ हैं। एक प्रतिमा में वे ताल देती हुई प्रिया को वीणा सिखा रहे हैं। अपस्मार-पुरुष की पीठ पर ताण्डव -नृत्य करने वाले महानट-शिव की कांस्य-प्रतिमा भारतीय कला की प्रतीक बन गई है। शिव की नर्तन-प्रतिमाओं का प्रारम्भ चौथी पाँचवी शताब्दी से माना जाता है। गुप्तकाल में शिव की ध्यान-मूर्तियों में महानट का उल्लेख है। मुद्राराक्षस नाटक में नटराज के नृत्य के चित्र हैं। पाणिनि के अनुसार भगवान् शंकर के नृत्य के समय उनके डमरू से, अइउण, ऋलृक् एओङ् एऔच् इत्यादि चौदह माहेश्वर सूत्र निकले -

नृत्तावसाने नटराजराजो
ननाद ढक्कां नवपंचवारम् ।
उद्धर्तुकामः सनकादि सिद्धा-
नेतद्विमर्शे शिवसूत्र-जालम् ।

शिव का उद्दाम नृत्य चैतन्य की अनुभूति का उल्लास है। गतिमय जगत् उनका उल्लास-नृत्य है।

गौरा-महेश्वर के लोकगीत विभिन्न जनपदों में प्रचलित हैं और इन गीतों में नृत्य का अभिप्राय सर्वत्र विद्यमान है। कुमाउनी का गीत है -

नाचिबौ खेलिबौ लौली गमारा थें तेरो कसो नाच।
नें मैं थें आंड़ि नैं मैंथें धागरि क्या हुँछ मेरो नाच।
नाचना नाचता गम्रा भैंसर बाटा लागी गया।

श्रीकृष्ण का नटवर रूप भी उस नटराज का प्रतिरूप है- वर्हापीडं नटवर वपुः । दिक् पीताम्बर है। कालिय काल है, जिसको उपकरण बनाकर नटवर महानृत्य करते हैं। नटराज का ज्वालामाल-युक्त आभा-चक्र गोपीमण्डल है, जो उसके पैरों के ताल और वंशी की तान पर थिरकता रहता है। यही नटवर का नित्य विश्वनृत्य रास है, जो चिदानन्द के महास्फोट का प्रतीक है। भगवान् ने कालिय के मस्तक पर चित्र-ताण्डव नृत्य किया था-

तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादांबुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त।
तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीय गन्धर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः ।
प्रीत्या मृदंगपणवाणकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसापसेदुः ।
तच्चित्रतांडवविरुग्णफणातपत्रो रक्तं मुखैरुरुवमन्नृप भग्नगात्रः।

(भागवत 10.16.26-30)

अर्थात् इस कालिय के मस्तकों पर रत्नों के स्पर्श से उनका चरण-कमल प्रगाढ रक्त-वर्ण वाला हो गया और अखिल कलाओं के आदिगुरु नृत्य करने लगे। उनको उस समय नृत्य के लिए उद्यत देखकर गन्धर्व, सिद्ध, सुर, चारण और देववधूगण प्रेम से मृदंग, पणव, आणकवाद्य, गीत, पुष्पोपहार और स्तुति के साथ घेरकर खड़े हो गए। उस चित्र-ताण्डव में कालिय के फैले हुए फण पीड़ित और क्षत-विक्षत हुए और वह रक्त वमन करने लगा।

भगवान् शिव हों या भगवान् कृष्ण, नृत्य का अभिप्राय उनके साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। आखिर क्यों ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें मानवशास्त्र की ओर चलना होगा। मानवशास्त्रियों ने संसार के उन लोगों की जीवन-शैली का भी अध्ययन किया है, जो सभ्यता के प्रभाव से दूरी पर रह रहे हैं। उनके अध्ययन से आदिमानव के स्वभाव की जानकारी मिलती है। जिन लोगों ने आदिम जातियों का अध्ययन किया है, उन्होंने बताया है कि भावावेग की अभिव्यक्ति का पहला मानव प्रयत्न उसका नृत्य ही था।

सुसाल के लैंगर ने 'फीलिंग एण्ड फार्म' नामक पुस्तक पृ. 190 में कहा है कि -नृत्य वन्य जीवन का सर्वाधिक गम्भीर बौद्धिक व्यापार है, देश और काल से परे किसी अज्ञात लोक के सम्मुखीन होने का प्रयास है, एक ऐसी मानस-धारणा है, जो व्यक्तिजनातीत है और जीवन और मृत्यु से व्यवहृत होकर भी शेष प्रकृति से परिवेष्टित और पोषित है। इस दृष्टि से देखा जाए तो नृत्य का प्रागैतिहासिक मूल बिल्कुल आश्चर्य की बात नहीं है। यह धार्मिक चिन्तन की वह प्रक्रिया है, जो संसार में अतिमानवीय-शक्तियों की धारणा उत्पन्न करती है। वस्तुतः नृत्य उन्हीं धारणाओं को सम्मूर्तित करने का प्रयास है। ये शक्तियाँ नृत्य द्वारा उत्पन नहीं की जाती या उत्पन्न होती हुई अनुभूत नहीं होतीं बल्कि नृत्य-क्रिया द्वारा उद्बोधित समाहृत प्रतिस्पर्शित या प्ररोचित हुआ करती हैं। आदि मानव की अतिमानवीय कल्पना के सामने ये यथार्थ हैं, प्रतीक नहीं। मैलविल जे0 हर्सकोवित्स ने अपनी पुस्तक 'सांस्कृतिक मानवशास्त्र' में पश्चिमी अफ्रीका के मूलवासियों के नृत्य अनुष्ठान का विवरण दिया है।

भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के नत्यों का अध्ययन करने से एक बात स्पष्ट होती है कि नृत्य किसी-न-किसी रूप में उपासना का अंग रहा है , दूसरे शब्दों में कहें तो नृत्य एक उपासना-पद्धति है। 'विज्ञान-भैरव' का कथन है कि चक्राकार नृत्य करते हुए जब शरीर भूमि पर गिर जाता है, तब अन्तःकरण की क्षोभशक्ति का विराम होता है और चित्त अपनी परा-अवस्था में पहुँच जाता है-

भ्रांत्वा भ्रांत्वा शरीरेण सहसाधुविपातनात्।
क्षोभशक्तिविरामेण परासंजायते दशा।

मणिपुरी, कत्थक, ओडिसी और भरतनाट्यम् मन्दिरों और वहाँ की देवदासियों से जुड़े हुए नृत्य हैं। गुजरात का गरवा-नृत्य भी आनुष्ठानिक-नृत्य है। गुजरात में रासदेव, डांडिया, टिप्पानी, झुल्लीसाका, गरबा और अठिंगा ये रास के ही छह स्वरूप प्रचलित हैं। गुजरात में रासगीता की शुरुआत नरसीमेहता ने की थी, 'रास सहस्त्रपदी' की रचना की थी।

नृत्य का अनुष्ठान सूफी-सन्तों की परम्परा में भी प्रचलित रहा है। इसका स्रोत कहीं तो अवश्य है। ख्वाजा अहमद अब्बास की एक पुस्तक है - इन्कलाब (सन् 1930)। इसमें उन्होंने पानीपत की कलन्दर बू अलीशाह की दरगाह में होने वाली कव्वाली के अनुष्ठान का वर्णन किया है - 'चारों तरफ भावनाओं का जो तूफान उमड़ रहा था, उसके बीच वह चुपचाप खड़ा था। फिर यकायक उस पर जुनून सवार हुआ, उसका शरीर काँपने और हिलने-डुलने लगा। गाना अब तक खौफनाक हद तक तेज हो चुका था और लगातार उसकी धुन तेज होती जा रही थी। उस आदमी ने अपने हाथ हवा में ऊपर उठा रखे थे. उसके अन्दर कोई ऐसी रहस्यमयी लहर उठ रही थी, जो इस उन्मत्त नृत्य के रूप में प्रकट होना चाहती थी।'

प्राचीन तमिल-साहित्य में ऐसे अनेक नृत्यों का वर्णन मिलता है, जो कन्नन और नप्पिन्नै द्वारा किए गए बताए गए हैं। कन्नन और नप्पिन्नै को लीलाओं में 'शिलप्पदिकारम्' के 'आयचिय कुरवै' प्रसंग में इसी प्रकार के नृत्यों का वर्णन है, जिनका अभिनय 'आयर कुल' में होता था। इन नृत्यों में प्रमुख 'कुरवै कूतू' है। 'शिलप्पदिकारम्' में 'कुरवै कूतू' के सम्बन्ध में कहा गया है कि सात-नौ ग्वालिनें एक-दूसरे का हाथ पकड़कर नाचती थी। उनके अनुसार विघ्न-बाधाओं को दूर करने के लिए उनके इष्ट देवता कन्नन से प्रार्थना करते समय उस नृत्य का करना आवश्यक था। उनके बीच यह प्रसिद्ध था कि कन्नन ने एक बार अपने अग्रज बलराम और प्रेयसी नप्पिन्नै को लेकर यह नाच नाचा था 'मणिमेखलै' में भी इस 'कुरवै कूतू' का उल्लेख है।-[मणिमेखलै 19.65-66] कन्नन से सम्बन्धित एक दूसरे नृत्य का नाम 'कुट कूतू' है, जिसमें 'आयर-कुल' के नर-नारी भाग लेते थे। यह कलश को सिर पर

रखकर किया जाने वाला नृत्य है, यह नृत्य बहुत प्रचलित था। 'शिलप्पदिकारम्' में कन्नन द्वारा किए गए ग्यारह प्रकार के नृत्यों का विवरण मिलता है। कहा गया है कि 'कुट कूतू' का नृत्य कन्नन ने अनिरुद्ध को कैद करने वाले वाणासुर का वध कर लौट आते समय सोनगर (सोनितपुर) की गली में किया था। कन्नन (कृष्ण) से सम्बन्धित दो और नृत्य 'अल्लीवाडल' और 'मल्लाडल' हैं। 'मणिमेखलै' में कन्नन द्वारा किए गए 'पेड्डु' नामक नृत्य का भी वर्णन है। [मणिमेखलै 3. 122-123]

भारतवर्ष के विभिन्न जनपदों में, विभिन्न जन समुदायों में ऐसे शताधिक नृत्य आज भी प्रचलित हैं, जो किसी आस्था और अनुष्ठान के अंग हैं। इन नृत्यों में जो उपास्य है, जो देवी या देवता है, वह भी नाचता है तथा जो उपासक हैं, वे भी नाचते हैं, उदाहरण के लिए ब्रज का लांगुरा-नृत्य है। दुर्गा-पूजा के लिए जब स्त्रियाँ सज-धजकर, पूजा-सामग्री लेकर चलती हैं, तो आगे नाचता हुआ लाँगुरिया चलता है। यह लाँगुरिया स्वयं देवता भी है- लांगूलभैरव, तथा उपासक भी है। नवरात्रियों में ही ब्रजमण्डल में काली-नृत्य होता है। इसमें उपासक अनुष्ठान-विधि सम्पन्न करके काली का मुखौटा धारण करके तलवार लेकर नाचता है और उपासक उस नृत्य के दर्शक हो नहीं, प्राय: अंग बन जाते है। नृसिंह-नृत्य है, इसमें नृसिंह अवतार की लीला है, परन्तु उपासक नृसिंह का मुखौटा धारण करके एक विशेष ताल और वाद्य की धुन पर नाचता है। दूसरे उपासक 'झें पतिंग, झ पतिंग, मैं मैं मैं मैं' का उच्चारण करके ताली बजाते हैं और नृत्य का अंग बन जाते हैं।

इन आनुष्ठानिक-नृत्यों के अध्ययन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि उपासना पद्धति के रूप में नृत्य की परम्परा उतनी ही पुरानी है, जितना पुराना मनुष्य-समाज है। आदिवासी-जीवन में अथवा लोक-जीवन में देवता की अवधारणा के साथ नृत्य का अभिप्राय जुड़ा हुआ है। शिव ताण्डव नृत्य करते हैं, पार्वती लास-नृत्य करती हैं तथा कृष्ण कालिय नृत्य और रास-नृत्य करते हैं। भारतवर्ष की मूर्तिकला का इतिहास देखें या चित्रकला का इतिहास देखें, नृत्य-उपासना का अभिप्राय बहुत व्यापक है।

कोर्तन का एक चित्र 'भागवत माहात्म्य' में है-
प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी,
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतारागकर्तार्जुनोऽभूत् ।
ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्या दिकानां नटवत्सु तेजसाम् ।
इन्द्रोऽवादीन्मृदंगं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा,
यत्राग्रे भाववक्ता सरस-रचनया व्यासपुत्रो बभूव ।
अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत ।

(6.86-87)

प्रह्लादजी तो चंचल गति से करताल बजाने लगे, उद्धवजी ने झांझें उठा लीं, नारद वीणा बजाने लगे, राग-गायन में अर्जुन झूमने लगे, इन्द्र ने मृदंग बजाया, सनकादि जय-जय ध्वनि करने लगे, शुकदेव विभिन्न मुद्राओं से भाव बता रहे थे तथा इन सबके बीच में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नटों के समान नाच रहे थे। इस नृत्य को देखने के लिए महादेव और पार्वती भी पधारे थे। चैतन्य महाप्रभु के कीर्तन नृत्य के भावावेश का चित्रण चैतन्यचरितावली (418-20) में है।

'भागवत' में गोविन्द अभिषेक का प्रसंग है, नारद, तुम्बुरु गन्धर्व, विद्याधर सिद्ध और चारण भगवान् के यश का गायन कर रहे हैं, वहीं भागवतकार का वचन है-सुरांगनाः संननृतुर्मुदान्विताः। (10.27.24) सुरांगनाएं प्रसन्न होकर नाचने लगीं।

महाकवि कालिदास ने नृत्य को देवताओं का 'चाक्षुषयज्ञ' बतलाया है-

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं रूद्रेणेदमुमाकृत-व्यतिकरे स्वांगे विभक्तं द्विधा ।

त्रैगुण्योद्भवमत्रलोकचरितं नानारसं दृश्यते नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम् ।

अर्थात् नृत्य देवताओं का प्रत्यक्ष और शान्त यज्ञ है। रुद्र ने उमा से मिलकर इसे अपने अंग में ही दो भागों में विभक्त किया। इसमें त्रिगुण से उत्पन्न नाना रस वाले लोक-चरित दिखाई पड़ते हैं। भिन्न-रुचि वाले लोगों को नाना प्रकार से प्रसन्न करने वाला एक नाट्य ही है।

'मालविकाग्निमित्र' में नृत्य का एक बिम्ब है-

अंगैरन्तर्निहित-वचनै सूचितः सम्यगर्थः पादन्यासो लयमनुगताः तन्मयत्वं रसेषु ।

शाकायोनिर्मुदुरभिनयः तद्विकल्पानुवृत्तौ। भावो भावं नुदति विषयाद्रागबंधः स एव।

अर्थात् अंग-प्रत्यंग के अन्तर्निहित वचन सम्पूर्ण अर्थ सूचित कर रहे हैं। अंग-प्रत्यंग की भंगिमा अर्थ की अभिव्यक्ति कर रही है। चरणन्यास लय का अनुगत है, लय का अनुसरण कर रहा है। एक चरणन्यास दूसरे चरणन्यास में समा रहा है, लय हो रहा है, रस केन्द्र में है, उसमें तन्मयता है। नृत्य में अनेक प्रकार के संचारी के विकल्पों को अनुवृत्ति होती है, वह कई शाखाओं में विभक्त होती चलती है, इसलिए शाखा योनि है। अभिनय भाव की प्रस्तुति है। राग बन्ध है तो इन्द्रिय विषय, परन्तु बराबर उनकी ओर से ध्यान हटाता है। विषय सम्बन्ध नहीं रह जाता, आत्मरूप हो जाता है। भाव ही भाव की ओर अभिमुख कर देता है।

60.7 लय और आनन्द-शक्ति

एक लयबद्ध राग विश्व में सहज-रूप से चल रहा है और नृत्य 'अन्तर' के राग को उस विश्वराग से सम्बद्ध करने की साधना है। लय विराट् सृष्टि और जीवन का मूल-विधान है। लय का विधान श्वास-प्रश्वास की गति में है। नृत्य में लय मूर्तिमान है। नृत्य का रहस्य लय में समाहित है। नृत्य सनातन प्रवाह है। नृत्य अनिर्वचनीय अनुभूति है। चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन नृत्य के रूप में नृत्य को आध्यात्मिक-साधना के रूप में पुन: प्रतिष्ठित किया। 'तन्त्रालोक' में लिखा है कि-

किसी मधुर गीत के सुनने पर या चन्दन आदि का सुखद स्पर्श

होने पर अथवा नृत्य आदि के देखने पर हृदय को तटस्थता के परिहार से जब गीत आदि विषय में एकतानता (एकाग्रता) आती है, तब उस प्रमाता-विशेष के हृदय में अर्थात् बोध में तन्मयतावश जो परिस्फुरणरूप स्पन्दमानता होती है, वही शैवशास्त्रों में आनन्द-शक्ति कहलाती है। गीत नृत्य आदि विषय में एकाग्रता के कारण जीव के बोध में तन्मयतावश जो आनन्दस्पन्दन होता है, वह सामरस्य के क्षणों का आनन्द है।

तथाहि मधुरे गीते स्पर्शे वा चन्दनादिके।
माध्यस्थ्यविगमे यासौ हृदये स्पन्दमानता।
आनन्दशक्तिः सैवोक्ता यतः सहृदयो जनः।

[तन्त्रालोक भाग 2 आ3 पृ 209]

डॉ0 आनन्द कुमारस्वामी ने लिखा है कि-ऐसा बोध होता है कि नृत्य से ही सभी वस्तुओं की सृष्टि का आरम्भ होता है और यह नृत्यपरायण पुरुष 'इरोस' के साथ ही प्रकट हुआ, क्योंकि इस आदिनृत्य का हम ग्रह-नक्षत्र तथा तारामण्डलों के सामूहिक-नृत्य में नियमित गति में और एक-दूसरे की गतिरेखा के भीतर भी अबाध स्थान-परिवर्तन में पाते हैं। डॉ. स्वामी आगे कहते हैं कि मेरे कथन का यह उद्देश्य नहीं है कि जो लोग उन्माद अथवा मद के आवेश में पहले-पहल अनार्य पहाड़ी-देवता (जो पीछे शिव के रूप में मिला दिए गए) की पूजा में नाचा करते थे, उनके हृदय में शंकर के नृत्य का सबसे उत्तम भाव वर्तमान था। धर्म अथवा कला का कोई श्रेष्ठ भाव अथवा महान् संकेत अखिल मानव समाज का सर्वस्व हो जाता है। युगयुगान्तर में भी यह लोगों को ऐसा दुर्लभ रत्न प्रदान करता रहता है, जिसे वे सर्वदा हृदय में वर्तमान पाते हैं। शंकर के नृत्य की उत्पत्ति चाहे जिस किसी रीति से क्यों न हुई हो, कालान्तर में यह ईश्वर के क्रिया-कलापों का प्रतिरूप बन गया।

'चिदम्बरम्' में शिव-नृत्य की दक्षिण भारतीय शैली की नटराज-प्रतिमाओं का मूल सिद्धान्त ध्यातव्य है। शिव की इन नृत्य-मूर्तियों में चार भुजाएं हैं। केशपाश बँधे हुए और रत्नों से अलंकृत है। नीचे की जटाएं नृत्यकाल में घूम रही हैं। बालों में कपाल, लिपटा हुआ एक सर्प और गंगा की मूर्ति, चन्द्रमा और पत्रों की एक माला दिखाई पड़ती है। दाहिने कान में पुरुषों का और बाँए में स्त्रियों का कुण्डल है। वे हार, कंकण, रत्न-खचित मेखला और अंगूठियों से अलंकृत हैं। कसा हुआ कटि वस्त्र, उड़ता हुआ अंगवस्त्र और उपवीत ही उनके प्रधान परिधान हैं। एक दाहिने हाथ में अग्नि है, दूसरा उठे हुए पैर की ओर संकेत करता हुआ नीचे झुका है। दाहिना पैर छोटे दैत्य मुयलक (अपस्मार पुरुष) पर पड़ा है, जो अपने हाथ में एक काला साँप पकड़े हुए है। बाँया पैर ऊपर की ओर उठा है।मूर्ति पद्मपीठ पर है, जिसमें ज्वालामाल से अलंकृत एक बहुत बड़ा प्रभामण्डल लगा है। नृत्य वास्तव में ईश्वर की पञ्च-क्रियाओं सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह का द्योतक है। 'उणमाइविलक्कम' में बताया गया है कि डमरू से सृष्टि होती है, अभय हस्त से रक्षा होती है, अग्नि से संहार होता है और ऊर्ध्व-पद से मुक्ति मिलती है। मुक्ति अर्थात् अनुग्रह। 'चिदंबा मुम्माणी कोवई' में आता है कि -प्रभो, दिव्य डमरू वाले आपके हाथ ने द्यावापृथ्वी, अनन्त लोकों और असंख्य जीवात्माओं की सृष्टि की है। आपका ऊर्ध्व हस्त चेतन और अचेतन रूप प्रपञ्च की सृष्टि की रक्षा करता है। आपके अग्नि वाले हस्त से इन लोकों में परिवर्तन होता है, भूमि पर आरोपित आपका पवित्र चरण कर्मबन्धन में छटपटाते हुए आत्मा को शरण देता है। जो आपकी शरण में जाता है, उन्हें आपका ऊर्ध्वचरण निर्वाण प्रदान करता है।

डॉ. कुमारस्वामी ने नटराज के नृत्य के तीन प्रधान भाव स्पष्ट समझाए हैं, प्रथम शिव का नृत्य इनके नियमित कार्य-कलापों का प्रतिरूप है। ब्रह्माण्ड में जो कुछ वस्तु मिलती है, उसको हिलाने वाली शक्ति का मूलस्रोत यह नृत्य है। द्वितीय असंख्य जीवों को माया के बन्धन से मुक्त करना ही इस नृत्य का उद्देश्य है तथा तृतीय - नृत्य का स्थान विश्व का केन्द्र 'चिदम्बरम्' हृदय के भीतर है।

नटराज प्रतिमा के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि-कलामर्मज्ञ जिन ऋषियों ने पहले ऐसी वस्तु की कल्पना की, वास्तविक सत्य की प्रतिमा का निर्माण किया, जीवन की जटिलताओं की कुञ्जी तैयार की, प्रकृति के ऐसे सिद्धान्त ढूँढ निकाले, जो केवल एक ही जाति या परिवार को सन्तोष प्रदान नहीं करते और न एक ही शताब्दी के मनीषियों को मान्य हैं, वरन् सभी काल और सभी देशों में दार्शनिकों, भक्तों और कलाकारों के हृदय पर अधिकार कर लेते हैं, उनकी कल्पना-शक्ति, विचार-शक्ति और सहृदयता कितनी विशाल और अद्भुत थी। आज इस विशेषज्ञता के युग में हमें विचार-समष्टि की आदत नहीं, किन्तु जिन्होंने इन मूर्तियों का दर्शन किया, उनकी दृष्टि में, जीवन में और विचार-शक्ति में कोई विशेष अन्तर नहीं हो सकता।

वास्तव में नटराज-प्रतिमा का अभिप्राय दिशा और काल का विशाल विस्तार है। डमरू और अग्नि दृश्य-परिवर्तन की प्रक्रिया के प्रतीक हैं, वास्तव में यह ब्रह्मा का दिन और रात्रि है। ब्रह्मा के रात्रिकाल में प्रकृति निश्चल रहती है और जब तक शिव की इच्छा नहीं होती, तब तक वह नहीं नाचती। जब शिव अपनी समाधि से जगते हैं और उनका नृत्य जगाने वाले शब्दों की तरंगों को निश्चल प्रकृति में उत्पन्न करता है। प्रकृति भी उसके चतुर्दिक् प्रभामण्डल के रूप में प्रकट होकर नाचने लगती है और नृत्य करता हुआ यह उसके नाना रूप की रक्षा करता है। नृत्य करता हुआ शिव संहारक बनकर प्रकृति को विश्राम देता है। यह दर्शन का सार है, यही काव्य है और यही विज्ञान का सत्य है। नटराज केवल सत्य ही नहीं, प्रेम भी हैं क्योंकि करुणा-वृष्टि करना अर्थात् असंख्य जीवात्माओं को मुक्ति प्रदान करना उनके नृत्य का उद्देश्य है।

त्रिपुरदाह के बाद शिव ने जो नृत्य किया, इसका अनुसरण उनके शिष्य तण्डु मुनि ने किया। तण्डु मुनि द्वारा प्रचारित होने के कारण यह ताण्डव कहलाया। मूलतः इस नृत्य का नाम शिव-ताण्डव है। नागा लोगों का विश्वास है कि प्रलयंकर शिव ने ताण्डव नागाओं से सीखा था। खासी-जाति की कुँवारी लड़कियों का ताण्डव प्रसिद्ध है।

डॉ. कर्टशैख्स (Dr. Curt Shechs) की पुस्तक 'वर्ल्ड हिस्ट्री

ऑफ डांस (ड्ढशह्यस्त्र ।द्भह्यह्लशह्4 शद्ध ष्ठड्डठ्ठष्द्ग)' बहुत प्रसिद्ध है। उन्होंने आदिम -नृत्यों के दो भेद किए हैं अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी। शैक्स के मत की समीक्षा करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि 'ताण्डव में पद और पदार्थ, इच्छा और क्रिया अभिन्न रूप में हैं। उनके शब्दों में ताण्डव आदिमानव या पूर्वमानव के उल्लास-नर्तन का परिष्कृत रूप है।' ताण्डव और लास के अन्तर को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि शैक्स ने अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी भेद करते आदिम नृत्यों को समझाया है। अन्तर्मुखी केवल आन्तरिक चैतन्य -वृत्ति का उल्लासजन्य नृत्य है, जबकि बहिर्मुखी सोद्देश्य और सार्थक। वस्तुत: ताण्डव और लास्य अधिक सुन्दर भेद हैं। लास्य में मानवीय प्रयत्न अधिक होता है, इसलिए उसे ही अन्यान्य कलाओं के साथ एक श्रेणी में रखा जा सकता है। ताण्डव केवल परवर्ती-काल के कला-विकास को स्पष्ट करने वाला आरम्भिक मूल प्रयास है। नि:सन्देह वह चैतन्य की आत्माभिव्यक्ति है।

जीव-तत्व के सामने बड़ी समस्या है जड़ाकर्षण का प्रतिरोध। जड़ाकर्षण पर विजय पाने का प्रयास अपने मूल रूप में ताण्डव में उपलब्ध होता है। अपने उद्दाम अभिव्यञ्जन और जड़ाकर्षण के प्रतिरोध-सामर्थ्य के कारण ही वह लोकमान्य हुआ है। चैतन्य के पुञ्जीभूत रूप शिव के द्वारा वह प्रवर्तित माना गया है। दूसरी और लास्य अधिक परवर्ती और मनुष्य की अपनी सर्जना-वृत्ति द्वारा अधिक सँवारा हुआ ललित प्रयत्न है। यह अधिक मानवीय है, क्योंकि वह मानव-चित्त के निश्चित उद्देश्यों, अर्थों को अभिव्यक्ति देता है। उसके ताल, लय, छन्द, झंकार सब मिलकर मानवीय मनोभावों को, रस भाव को, दर्शक चित्त में अनुभूत कराते हैं। इसीलिए ताण्डव जहाँ मानव-पूर्व तत्त्वों का स्वत: स्फूर्त विकास है, वहाँ लास्य मानवीय प्रयासों का ललित रूप है। इसलिए वह नर्तक के चित्त में अधिक स्पष्ट मानसी मूर्ति-भाव की सर्जना करता है। बन्धनों पर विजय पाने का प्रयास उसमें भी है परन्तु ये बन्धन विराट्-प्रकृति का अपना जड़ाकर्षण ही नहीं हैं, बल्कि मनुष्य के जीवन द्वारा प्रतिफलित आकर्षण अर्थात् मानस-संस्कारों पर भी विजय पाने का प्रयास है। ताण्डव का लक्ष्यभूत मानस-संस्कार अस्पष्ट है, अव्यक्त है, जबकि लास्य का स्पष्ट और व्यक्त। कहते हैं, लास्य का प्रवर्तन पार्वती ने किया था। पार्वती अर्थात्, अव्यक्त ब्रह्म की सिसृक्षा, रूप देने का सामर्थ्य देने वाली शक्ति तन्मात्र।

ताण्डव के सम्बन्ध में वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है -शिव का ताण्डव भी कला का मँजा हुआ सूत्र है। दुर्धर्ष सृजन शक्ति के स्पन्दन को एक केन्द्र पर लाकर उसकी कल्पनामयी कल्पना शिव का ताण्डव नृत्य है। जिस कलाकार ने सबसे पहले इस गम्भीर दार्शनिक भाव को कला की लिपि में व्यक्त किया, उसकी ध्यान -शक्ति धन्य है।

'योगवासिष्ठ' में (सर्ग 81) भैरव-भैरवी के अति भयंकर नृत्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -

डिम्बं डिम्बं सुडिम्बं पच पच सहसा झम्यझम्यं प्रझम्यं
नृत्यन्त्या: शब्दवाद्यै: स्त्रजमुरसि शिर: शेखरं तार्क्ष्यवपक्षै:
पूर्ण रक्तासवानां यममहिषमहाश्रृंगमादाय पाणौ
पायाद्वो वंद्यमान: प्रलयमुदिता भैरव: कालरात्र्या: ।

अर्थात् गरुडपक्ष का मुकुट और हृदय पर मुण्डमाला धारण कर नाचती हुई देवी के वाद्यों के शब्द से सहसा डिमडिम पचपच झमझम शब्द होता है। रक्त और आसव से पूर्ण यमराज के महामहिष के श्रृंग को हाथ में लेकर प्रलय के कारण प्रसन्न कालरात्रि के साथ नृत्य करते हुए वंद्यमान भैरव रक्षा करें।

'योगवासिष्ठ' के 'नियति-नृत्य' तथा 'कालरात्रि-नृत्य' के वर्णन में नृत्य की विस्तृत व्याख्या है तृण से ब्रह्मा तक स्पन्दन का नियन्त्रण करने वाली जो शक्ति है, वह नियति है। नियति नित्य है, उद्वेग वर्जित है और अपरिमार्जित है। यह संसार के जंजाल का नृत्य करती रहती है। इसमें चक्राकार घूमने (विवर्त) का अभिनय है। नृत्य के समाप्तिकाल (कल्पक्षण) में अनेक पुष्कर और आवर्त (प्रलयकालीन मेघ) का घोर 'नाद' ताल है। बारम्बार की जल-वृष्टि इस नियति नर्तकी के पसीने की बूँदें हैं। नीले मेघ लोटने से नीलाम्बर का भ्रम होता है। सातों समुद्र के विशुद्ध रत्नों से जड़े हुए इसके कंकण और चूड़ियाँ हैं। प्रहर, पक्ष, दिन उसकी आँखो के कटाक्ष हैं। इस निरन्तर परिवर्तनशील संसार नामक चिर नाटक के नाट्य-नियति के विलास में सदा प्रकाश-स्वरूप परम-ईश्वर अकेले देखते रहते हैं। न वे इस नियति के साथ हैं, न उससे भिन्न हैं। 'योगवासिष्ठ' (निर्वाण प्रकरण उत्तरार्द्ध) के 81वें सर्ग में वसिष्ठ जी कहते हैं कि -तब मन्त्र और विशाल आकृति वाले रुद्र को महाकाश में नृत्य में प्रवृत्त देखा। अपने व्यापकत्व में वह आकाश था. मेघ जैसा काला और दशों दिशाओं को भरने वाला उसका विशाल रूप था। सूर्य, चन्द्र और अग्नि उनके तीन नेत्र थे। दिशाएं ही उनके वस्त्र थीं। इतने में देखा कि उनके शरीर से नृत्य का अनुसरण करती हुई कालरात्रि छाया की तरह निकली और नृत्य करने लगी। नृत्य के आवेश में उनका बढ़ता हुआ शरीर पूरे आकाश में व्याप्त हो गया। कालरात्रि का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि तीनों लोक उन अंग-प्रत्यंग में आदर्श की तरह पड़े थे। कानों में हिमवान् और मेरु की चांदी और सोने की मुद्रिका थी और ब्रह्माण्ड-मण्डलों की माला कटि की मेखला थी। उनके अंगों में पुर, नगर, ॠतु, तीनों लोक, मास, दिन और रात को मालाएं दीख पड़ती थी। गंगा-यमुना आदि नदियाँ मुक्तामाला थीं और कानों में धर्म-अधर्म के कर्णाभूषण थे।

उनके चार स्तन थे (वेद), जिनमें धर्म-रूपी दूध टपक रहा था। चार संख्या वाले वेद-शास्त्रों के अर्थ उनके चूचुक थे। चौदहों विद्या, देवता और प्राणी उनके शरीर की रोमावलियाँ थी। उनके शरीर में पड़े हुए नगर ग्राम-पर्वतादि उनके नाचते समय प्रसन्नता से नाचने लगते हैं कि उनका पुनर्जन्म हुआ है। नृत्य-लीला में यों ही घूमने के चक्कर में बड़े-बड़े पर्वत और पृथ्वी तृण की तरह उड़ रही थी। नील-मेघ-रूपी नीले रेशमी वस्त्र उड़ने से आकाश में घुंघुम शब्द हो रहा था। मेरु नाच रहा था। चञ्चल बड़े-बड़े कुलपर्वत इसकी बड़ी-बड़ी भुजाएं थीं। घूमते हुए बादल उसके वस्त्र थे और इसके शरीर के साथ कल्पवृक्षादि इसके रोएं झुकते

और सीधे हो रहे थे। मर्यादा को धारण करते हुए समुद्र और वृक्ष पृथ्वी से आकाश और आकाश से पृथ्वी पर आ-जा रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि चन्द्र, सूर्य, दिन, रात उनके नखों के प्रकाश में समा गए थे। तारामण्डल चक्र पर पड़े हुए घूमते हुए सहस्त्रों दोप जैसे थे और मणि बरसने से जो शोभा होती है, वैसे ही सुंदर दिखाई पड़ते थे। मालूम होता था कि प्रेम से विद्याधर और देवगण भीतर-बाहर फूल बरसा रहे हों। सृष्टि और संहार दिन और रात्रि के भाग उसके शरीर पर चाँदी के टुकड़े पर उजले और काले बिन्दु की तरह लगते थे। शुक्ल पक्ष और कृष्ण-पक्ष उजले और काले रंगों वाले रत्न जैसे थे, जो दर्पण पर जड़े रहते हैं। कालरात्रि के घूमते-समय सूर्य-चन्द्रादि संसार की सभी मणियां झमझम घनघन शब्द कर रही थीं। हवा के झोंके से जिस तरह मच्छर अस्त-व्यस्त हो जाते हैं, देवी के नृत्य भ्रमण में ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, महादेव, अग्नि, सूर्य, चन्द्र इत्यादि देव-दानव एक-दूसरे के ऊपर गिर उठ रहे थे। संहार-सृष्टि, सुख-दु:ख, भव-अभव, इच्छा-अनिच्छा, विधि-निषेध, जन्म-मरण परस्पर विपरीत होने पर भी मिश्रित और पृथक् रूप से देवी के शरीर में वर्तमान रहते हैं। उत्पात-शान्ति, मरण-उत्सव, युद्ध-साम्य, राग-द्वेष, भय-विश्वास आदि देवी के शरीर में रत्न-समूह की तरह शोभा पाते हैं। नाना प्रकार के रसों की यह सृष्टि-परम्परा है। बच्चे जिस तरह घरौंदा बनाते और बिगाड़ते हैं, उसी तरह नृत्य-क्रिया के अन्तर्गत जगत् के विषय प्रतिक्षण पूर्वस्थिति को छोड़कर अन्य स्थिति को ग्रहण कर रहे थे, उसका रूप प्रतिक्षण बदल जाता था, क्षण भर में अंगुष्ठ-मात्र थी तो क्षण भर में वह आकाश में भर जाती थी। महती भैरवी भैरव-आकार वाले कल्पान्त रुद्र के सामने नाचती रहती है। उसके अनुनय से वह आकाश-भैरव भी उसकी तरह ही विस्तृत रूप धारण कर उसी वेग से नाचता है।

शैव दर्शन संहार-नृत्य को भी शिव की आनन्दकेलि के रूप में स्वीकार करता है। शैव दर्शन के अनुसार विश्व का उन्मेष शिव की नित्य-लीला है। जयशंकर प्रसाद के शब्दों में 'नटराज स्वयं थे नृत्य निरत।' जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में शैव-ग्रन्थों के आधार पर ही स्वात्म-आनन्द के अतिरेक में तन्मय शिव के आनन्द नृत्य का चित्रांकन किया है।शिव के जिस आनन्द-नृत्य से श्रद्धा ने विश्व सृष्टि-संहार का प्रसार बताया है, उसी आनन्द नृत्य से सृष्ट विश्व का संहार दिखता है। शिव की इस संहार-लीला में मनु ने भूधरों को धूलि-कणों की भाँति उड़ते हुए तथा अनन्त चेतना-परमाणुओं को क्षण भर में बनते और विलीन होते हुए देखा है -

आनन्द पूर्ण ताण्डव सुन्दर
उड़ रहे धूलि-कण-से भूघर।
झरते थे उज्ज्वल श्रम सीकर बनते तारा हिमकर दिनकर।
विद्युत कटाक्ष चल गया जिधर, कम्पित संसृति बन रही उघर।
चेतन परमाणु अनन्त बिखर,
बनते विलीन होते क्षण भर।

शंकर कुरुप ने 'एक और नचिकेता' में शिवताण्डव का एक चित्र अंकित किया है -

बिखर-बिखरकर फहर रहे हैं
प्रसरित व्योमकेश,
टूट रहे हैं समलय हो,
नक्षत्र और रुद्राक्ष के हार।
डोल-डोल गति में नर्तन की,
लटक गयी है एक ओर-
जटा-जटित चन्द्र-रेख,
हर्ष में विभोर हुई।
सम्भव है,
अदृश्य घूमती नीहारिका पटलियों में
नये-नये सौरयूथ
खोल रहे हों उत्सुक आह्लाद-भरे नयन,
देखने शिवताण्डव को।
विस्मय तरल पलकों के साथ
सन्ध्या में वह कमनीय नील लोहित-नृत्य देखता हुआ
मैं खड़ा रह गया।
परिमल-भरे दीर्घ नि:श्वासों को थाम,
उस विशाल वक्षतल से सिर टिकाये खड़ी है
विश्लथ नीलवेणी सहनर्तकी प्रकृति चूम रहा है
उसके भावभंगिमापूर्ण मृदुल कपोल को सदाशिव !
प्रफुल्लित कर रहा है
मेरे अन्तरंग की सुन्दरताओं को यह पुरातन मिथुन।

'श्रीतत्त्वनिधि', 'शिल्परत्न ', 'काश्यप शिल्प', 'अंशमद-भेदागम', 'करणागम', 'शिल्पप्रकाश', 'मत्स्यपुराण' आदि में नृत्त, ताल संफोटित, भंगिनाट्य, भ्रमरापित-नाट्य, उद्दण्ड-ताण्डव, चण्डताण्डव, ऊर्ध्वताण्डव, सव्यताण्डव, महाताण्डव, परमानन्द-ताण्डव, महाप्रलयताण्डव, महोग्रताण्डव, परिभ्रमण ताण्डव और प्रचण्डताण्डव का उल्लेख है।

विभिन्न ग्रन्थों में ताण्डवों के नाम के विषय में पर्याप्त वैमत्य है। खोकर ने 'उमाताण्डव' के स्थान पर 'ऊर्ध्वताण्डव' का उल्लेख किया है। कुछ ग्रन्थों में 'आनन्दताण्डव' को 'नादान्त' और कुछ में 'सभापति' नृत्य कहा गया है। कई बार एक ही लेखक ने उसी नृत्य के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग किया है। किन्हीं शास्त्रों में 'त्रिपुरताण्डव' को 'ऊर्ध्वताण्डव' माना गया है व अन्य में 'कालीताण्डव' को। प्रत्येक 'ताण्डव' की पृष्ठभूमि में एक कथानक निहित है। 'आनन्दताण्डव' का सम्बन्ध 'चिदम्बरम्-माहात्म्य' (1913 ई0) में वर्णित कथानक से है। 'सन्ध्याताण्डव' सन्ध्याकाल में हिमालय पर पार्वती के लिए किए गए नृत्य से सम्बन्धित है जिसमें शिव अपने परिवार सहित प्रदर्शित किए जाते हैं। 'कालीताण्डव' चिदम्बरम् में शिव द्वारा दोबारा किए गए नृत्य से जुड़ा है।

करणों की संख्या के अनुरूप ताण्डव की 108 शैलियों की

गणना की गई है। कहीं-कहीं यह संख्या 64 मानी गई है परन्तु शैवागमों में सात प्रकार के ताण्डवों का उल्लेख है 1. आनन्दताण्डव, 2. सन्ध्या ताण्डव, 3. कालिकाताण्डव, 4. त्रिपुरताण्डव, 5. गौरीताण्डव, 6. संहारताण्डव, एवं 7. उमाताण्डव ।

ताण्डव को संयत करने के लिए पार्वती ने लास्य-नृत्य किया। लास्य रस और भाव-समन्वित है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में ताण्डव आदिम है रसभावविवर्जित तथा लास्य मनुष्य की सर्जनेच्छा द्वारा चालित है। मृदु-नृत्य लास्य की प्रवर्तिका पार्वती है। मातङ्गी शतनाम में मातङ्गी को महोल्लासिनी, लास्यलीला नताङ्गी अर्थात् महा आनन्दस्वरूपा और लास्य-नर्तन में झुके हुए अंगों वाली कहा है। धूमावती जहाँ नटनायक संसेव्या, नर्तकी, नर्तकप्रिया, नाट्यविद्या, नाट्यकर्मी, नादिनी, नादकारिणी हैं, वहीं छिन्नमस्ता भी नृत्यप्रिया, नृत्यव्रता:, नृत्यगीत-परायणा, नृत्येश्वरी नर्तकी व नृत्यरूपा निराश्रया है। स्वयं त्रिपुरा का नाम नटेश्वरी है। वे नटेश्वर चिदम्बर के अनुकरण में है -

जंघा कांडोरुनालो नखकिरणलसत्केसरालीकराल: ।
प्रत्यग्रालक्तकाभाप्रसरकिसलयो मंजुमंजीरभृंग: ।
भर्तुर्वृत्तानुकारे जयति निजतनुस्वच्छलावण्यवापी ।
संभूतांभोजशोभां विदधदभिनवोदंडपादो भवान्या: ।

अपने स्वामी के नृत्य के अनुकरण में उठे हुए भगवती के चरण-कमल हैं, यह कमल अपने शरीर के स्वच्छ लावण्य-वापी में उत्पन्न हुआ है। जंघ इस कमल का कण्ड है और उरू नाल है। नख से छिटकती किरणें केसर हैं तथा अलक्तक की प्रभा नूतन-पत्र हैं, बजते हुए नूपुर भौरे हैं।

लास्य के तीन भेद माने गए हैं विषम-लास्य, विकट-लास्य और लघु-लास्य। गेयपद, स्थित पाठ्य, आसीन पाठ्य, पुष्पगण्डिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ़, सैंधव, द्विगूढ, उत्तमोत्तक तथा उक्त-प्रयुक्त भी लास्य के प्रकार हैं। चर्चरकी और देशिक को भी लास्य का प्रकार बतलाया जाता है। **तांडव लास और अंग को गनें, जे जे रुच उपजत जी के।**

स्वामी हरिदासजी ने 'केलिमाल' में संगीत-नृत्य को दिव्यता की परम-स्थिति में प्रतिष्ठित किया है। अनन्तता तर्कगम्य नहीं है। अनन्तता दिव्य की अनुभूति है, दिव्य की अभिव्यक्ति ही कला है। भाव आत्मसत्ता की अनुभूति है। भाव का स्पन्दन संगीत और नृत्य है। नृत्य में रस प्रत्यक्ष है। नृत्य रस की अनुभूति है, उसकी अभिव्यक्ति है। नृत्य आनन्द है, उसे किसी व्याख्या की अपेक्षा नहीं है। जो भी कुछ है, वह आनन्द के सिवा और कुछ नहीं है। 'रसो वै स:।' अनन्त सृष्टि-जीवन का मूल तत्त्व रस है। सृष्टि, स्थिति और लय-रस की ही प्रक्रिया है। रस की ही अवस्था है। स्वामी श्रीहरिदास ने रस को प्रीति के रूप में पहचाना। संगीत और नृत्य के रूप में पहचाना।

लेखक: वरिष्ठ साहित्यकार अध्येता हैं।
सम्पर्क : 1828 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 13-12, पानीपत-132203 (हरियाणा) मोबा. 99960007186

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : **वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ 300/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।**

-संपादक

आलेख

जनजातीय समुदायों की छैल-छबीली मनोरम नृत्य छवियाँ

डॉ. पूरन सहगल

दिन भर के मानसिक तनाव से मुक्ति पाने का सहज एवं सातित्वक माध्यम यदि कोई है तो वह है मनोरंजन। तन-मन से थके मानव को थोड़ा सा भी मनोरंजन का रसास्वादन मिल जाए तो मन-मस्तिष्क की सारी थकान दूर हो जाती है। नई स्फूर्ति और ऊर्जा प्राप्त हो जाती है।

आग और मनुष्य का संबंध उसके अस्तित्व से जुड़ा है। यदि मानव ने प्रकृति से साकार रूप में किसी शक्ति का आश्रय लिया तो वह आग ही थी। निर्वत्र और निराश्रित मानव को अग्नि-अलाव ने जीवन को सहज बनाने का आधार प्रदान किया। उसके पास न तन ढकने के लिए वस्त्र था न सिर ढकने के लिए मकान। उसके पास इनकी कल्पना भी नहीं थी। तब अग्नि-अलाव उसका एकमात्र स्वाभाविक मित्र बना। इन्हीं अलावों के आसपास उसने आनंद विभोर होकर बैठना। संकेतों के माध्यम से दु:ख-सुख बाँटना शुरू किया। इन्हीं अलावों के आसपास उसने शिकार के प्राप्तव्य से प्रसन्न होकर अपनी उमंग और उल्लास को प्रदर्शित करने के लिए घूम-घूमकर एवं बेतरतीब हावभाव प्रकट करने का जो स्वाभाविक प्रदर्शन किया होगा अथवा अपनी मादा को रिझाने के लिए जो भाव-विभाव प्रकट किए होगे। वही कालांतर में नृत्य कहे गये।

अपनी मादा को रिझाने के लिए पक्षियों और पशुओं द्वारा किए गए हावभाव भी उसकी प्रेरणा के माध्यम बने होंगे। मयूर का अपनी मयूरी के इर्द-गिर्द अपने पंख फैलाकर चक्राकार नृत्य करना पिकाक-पिकाक के नाद द्वारा दिग्टिगंत तक अपने मनोभावों एवं मोद का पहुँचाने को प्रयास करना। कपोत का अपनी कपोती को अपने सहवास के लिए सहमत करने के प्रयास में मटक-मटक कर मादक मनुहार करना। कोयल का पंचम स्वर में कुहकना। फूल-फूल पर तितलियों का थिरकना और भंवर पिया का गुनगुनाना। यह सब हमारे आदिमानव को थिरकने, कुहने, कसमसाने और कलरव करने के लिए प्रेरक माध्यम बनते रहे।

हमारा लोकरंजन और उसको रंग-रस से पूरित करने के लिए अलाव एक महत्वपूर्ण माध्यम था। उसी से उनका शिकार भूना जा सकता था। उसी से उन्हें ताप व प्रकाश मिल सकता था तथा वही अलाव उसे एक स्थान पर मिल बैठने व वन पशुओं से सुरक्षा का भी आधार था।

इसी अलाव के आसपास हमारी अनेक लोकरंजक लोक कलाओं का जन्म हुआ और इन्हीं के आसपास उनका धीरे-धीरे परिष्कार होता गया। आज हमारे समक्ष बहुत ही उन्नत मंच और अभिनय के कई माध्यम है। लोकरंजन के विकास की कथा वैसे तो बहुत सुदीर्घ है किन्तु सार रूप में हम इतना अवश्य जानते हैं कि, श्रव्य से दृश्य तक आते-आते कितने ही उतार-चढ़ाव, हमारी प्रदर्शनकारी लोक कलाओं ने देखे होंगे। हमारी प्रदर्शनकारी लोक कलाओं का प्रथम माध्यम, लोक नृत्य माने जाते हैं। लोक नृत्य हमने प्रकृति नदी से सीखे। प्रकृति ही प्रदर्शनकारी नृत्य कलाओं की प्रेरक एवं प्रशिक्षिका है।

इस प्रकार नृत्य की परम्परा आदि मानव से लेकर आज तक पारंपरिक रूप से मानव के हृदय की शून्यता को सजीवता प्रदान करता चली आ रही है।

आदिमानव समूह रात में एक अलाव के चारों ओर चक्राकार घूमकर तालियां बजा-बजाकर, पैरों की थाप देकर बिना अर्थ का कोलाहल करते हुए जब अपने द्वारा किए गए शिकार की खुशी में मस्तमन घूमते हुए दिन भर की थकान उतारते थे। हमें उसे भी एक प्रकार का नृत्य ही कहना पड़ेगा।

पूरी प्रकृति किसी न किसी रूप में नृत्यरत होकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करती हुई झूम उठती है। तब हमें उसे भी नृत्य का प्रेरणा स्त्रोत ही मानना पड़ेगा। शैल चित्रों में आज भी हम उस आदिमानव को नृत्यरत देख सकते हैं।

लोक रंजन के अनेक माध्यमों में नृत्य-संगीत और गीत का सामंजस्य सर्वोपरि है। तन और मन से क्लांत मानव को पुन: ऊर्जा प्रदान

करने में नृत्य से अधिक रसीला साधन दूसरा नहीं है।

पारंपरिक लोक नृत्यों को शास्त्रीय परिनिष्ठता प्रदान कर हमारे आचार्यो ने अनेक नृत्यों का सृजन किया है। नृत्य के साथ संगति और वाद्य की संगीत आदि काल से आज तक पारंपरिक रूप से अक्षण्य है।

नृत्यों की समस्त शैलियाँ भले ही वे शास्त्रीय हो अथवा लोकाधारित। आदिकाल से, आज तक या कहूं वैदिक युग से वर्तमान युग तक विभिन्न रूपों में पल्लवित-पुष्पित होते हुआ हमारे नृत्य समक्ष विभिन्न अवसरों पर पारंपरिक लोक नृत्यों के रूप में प्रकट होकर हमारा मनोरंजन करते चले आ रहे हैं। वह आदिवासी परम्परा में हो अथवा अन्य लोक मंचों पर। लोक की प्रदर्शनकारी समस्त लोक कलाओं में नृत्य तो सर्वोपरि ही रहता चला आ रहा है।

कच्छी घुड़ला नृत्य-एक घोड़े के आकार का बिना पैर का पुतला होता है। नर्तक बीच में घुड़सवार की भाँति सजकर अनेक प्रकार की मुद्राओं के माध्यम से लोक रंजन करता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई घुड़सवार अपने घोड़े पर बैठकर घोड़े को नचा रहा हो। इसका मुख्य वाद्य ढोल होता है। यह नृत्य अनेक उत्सवों पर किसी भी ऋतु अथवा पर्व पर किया जा सकता है।

कालबेलिया नृत्य- कालबेलिया समाज की महिलाएँ कांसे की थाली और चंग पर चक्राकार नृत्य करती है। इस नृत्य के साथ हाथ की थाप और गीत की संगत भी रहती है। यह नृत्य भी अनेक उत्सवों-पर्वों पर किया जाता है। यह नृत्य अत्यन्त गतिशील होता है।

घूमर चक्री नृत्य- यह चक्राकर नृत्य है। घूमर और झूमर के साथ यह गीतमय नृत्य है। कांसे की थाली, चंग, ढोलक/ढोल इस नृत्य के मुख्य वाद्य है।

बारह ताली/तेरा ताली नृत्य- नृत्यरत नर्तकी अपने दोनों हाथों में घंटियाँ बाँधकर अत्यंत तीव्रता और संगीतमयता के साथ घंटियों को पैरों और हाथों में नाचते हुए/परस्पर टकराते हुए नृत्य का मनोरम प्रदर्शन करती है। विशेषकर राजस्थान में ऐसी नृत्यांगनाएँ बहुत है। यह भी मंचीय नृत्य है।

माच- यद्यपि माच नाट्य विधा का कला प्रदर्शन होता है तथा माच के प्रत्येक पात्र के पैरों में घूंघरू बंधे रहते है और उनके संवाद गीतमय होते हैं। बीच-बीच में अपना संवादपूर्ण होते ही पात्र नृत्यमय हो उठता है। इसी प्रकार बीच-बीच में भी नृत्यकाएँ मंच पर आकर नृत्यरत हो जाती हैं। माच प्रदर्शन के मध्य ढोलक, सारंगी, हारमोनियम आदि वाद्य इसकी संगत करते हैं। माच के कलाकारों में पुरुष पात्र और स्त्री पात्र दोनों ही नृत्य करने में सम्नद्ध रहते हैं।

नाचा- यह नृत्य मुख्य रूप से छत्तीसगढ़ की लोक परम्परा का प्रसिद्ध नृत्य है। दीपावली के अवसरों पर 'ददरिया' और करमा गीत नृत्यों की लय ताल पर छत्तीसगढ़ में यह नृत्य प्रदर्शित होता है। यह नृत्य महिलाओं द्वारा सुआ और पुरुषों द्वारा राउन नाचा नाम से सामूहिक रूप से प्रदर्शित होता हैं।

पंथी नृत्य- यह नृत्य भी छत्तीसगढ़ी लोक परंपरा का नृत्य है। इसे पंथी समाज 'पंथी नृत्य' के रूप में प्रदर्शित करते हैं। यह अत्यंत द्रुतगति वाला नृत्य है।

राजस्थान एवं इससे जुड़े दशपुर अंचल में अनेक प्रकार के नृत्य आयोजित होते है। इनकी संख्या लगभग 146-150 है। सभी नृत्य परस्पर एक दूसरे से प्रभावित भी लगते हैं।

इनमें गेर-मोरया, मोर-मोरनी, भवाई-तलवार, बोतल, तेराताली, झूमर, सपेरा, बिछूड़ो-सांसी, चकरी-घोड़ा, भगतण, कबूतरी, पड़-कच्छी घोड़ा, राई बूढ़या, घूघरा, घूमर, गरबा, ख्याल, आर्या, लूम्बर आदि नृत्य अधिक प्रसिद्ध है। ये सभी नृत्य कमोबेश दशपुर अंचल में भी प्रचलित रहे हैं। वैसे ये सब नृत्य पूरे मालवा और म. प्र. में तनिक हेर फेर से मनोरंजित होते हैं।

भुवाई- भुवाई नृत्य तो आज भी अनेक समाजों में पारंपरिक रूप से देखा जा सकता है। मन्नत-मनोती लेकर भवाई नचाने की परंपरा आज भी जारी है। भुवाई या भवाई नृत्य पुरुष ही करते है। अलग-अलग समाजों की अपनी-अपनी भवाइयाँ होती हैं। शुभ की मनोति पूरी करने के लिए भुवाई निमंत्रित की जाती है। यह नृत्य कथा प्रसंगों के साथ रात भर चलता रहता है। ढोलक, हारमोनियम इसके प्रमुख वाद्य होते है। भवाई लोग कई बार वीर नायकों या लोकनायकों के नाट्य प्रदर्शन भी करते हैं तथा उनमें भी नृत्य प्रदर्शन किया जाता है। इस प्रकार अनेक अवसरों पर नृत्यों की मनोरंजन के रूप में प्रदर्शित किया जाता है।

पाबूजी की पड़- वस्तुत: पड़ प्रदर्शन दृश्य-श्रव्य प्रणाली का कला प्रदर्शन है। जो भोपा समाज द्वारा अपने जजमानों के मध्य जाकर उन्मुक्त आकाश के तले रात्रि में प्रदर्शित होता है। इसमें भोपा और भोपण दोनों के पैरोंमें घूघरू बंधे रहते हैं। कड़ावा कहने के पश्चात जब भोपण उस कड़ावे को दोहराती है तब भोपा अपने स्थान पर चक्री लगाकर नृत्य करने लगता है तथा बोपण भी अपने स्थान पर नृत्यरत हो उठती है। यह प्रदर्शन रात्रि पर्यंत चलता है। केवल रणत्या वाद्य ही इसकी संगत करता है।

साँसी नृत्य-मालवा मेवड़ा में एक अपराध पेशा जाति साँसी निवास करती है। इनका मुख्य कार्य पूर्व काल में चोरी और राहजनी करना रहा है। इनकी स्त्रियाँ नृत्य और अभिनय में माहिर होती हैं। पूर्व में यह जाति घुम्मकड़ थी। अब स्थाई निवासी हो गई है। इनकी स्त्रियाँ 'कुंच श्रृंगार' में दक्ष होती हैं। इनके नृत्यों में भी कुंच संचालन एवं नेत्र कटाक्ष की प्रमुखता होती है। इनके नृत्य इन्हीं के पुरुषों के सामने होते हैं। शराब के दौर चलते रहते हैं और मादक नृत्य चलता रहता है। नृत्यरत स्त्रियाँ भी मदिरापान करती हैं। भद्दे कटाक्षों के साथ इनका नृत्य अत्यंत फूहड़ा होता चला जाता है। ढोलक और थाली इनके प्रमुख वाद्य होते हैं।

कंजरियों के नृत्य- ये कंजरियाँ बहुत रंगीन मिजाज होती हैं। इनके बदन की लोच कमाल की होती है। इनका नृत्य उन्मुक्त हावभावों से

भरपूर होता है। जितनी स्फूर्ति और लचीलापन इनके नृत्यों में होता है उसका दूसरा कोई उदाहरण नहीं मिलता। नृत्य के साथ गीत संगीत की संगत भी बहुत मादक होती है। गीतों का अभिनय के साथ प्रस्तुतिकरण बहुत अद्भुत होता है। गोरबंद, ईडाणी, कंगसियों आदि गीत अत्यंत लोक प्रिय हैं।

(1) गायाँ चराती गोरबंद गूंथियों
भेस्यां चराती पोयो जी राज,
म्हरो गोरबंद नखरारो।
आलिजा म्हारो गोरबंद नखरारो।।
(2) म्हारे छैल भंवर को कांगस्यो
पणयारयाँ ले गीरे/ परणयारयाँ ले गीरे।
म्हारी सोकन्याँ ले गी रे।
(3) पाड़ोसण घणी चगोर, ले जी ईडोणी।
म्हारी सवा लाख की लूम, गम यी ईडोणी।
म्हारे पीयरिया की भेंट, गम गी इडोणी।

इनकी होली बहुत प्रसिद्ध है। छींटदार रेशमी सूथनी कुर्ती चाँदी के नख-शिख गहने, लंबी धार का काजल मदिरा की मादकता, फूहड़ अभियन की इशारेबाजी। चक्राकर नृत्य। विवाह आदि अवसरों पर भी इनके नृत्यों के आयोजन करवाए जाते हैं।

बेड़नियों के नृत्य- इनके नृत्य भी अभिनय युक्त होते हैं। फूहड़पन की चरम सीमा तक पहुँच जाना इनके लिए सहज होता है। गीत अभिनययुक्त इनके नृत्य भी विवाह, आदि अवसरों पर करवाए जाते हैं।

बाना और गरबा- बाना और गरबा लगभग एक जैसे ही लोक नृत्य हैं। बाना तीव्रगति वाला चक्राकार नृत्य होता हैं। इसको ढोल और काँसे की थाली द्वारा संचालित किया जाता है । यह मंथर गति से शुरू होकर तीव्रतम गति तक पहुँचता है। उस समय का दृश्य अद्भुत होता है। बाना के खेलिए रंग-बिरंगी वेशभूषा धारण किए रहते हैं। इनका प्रदर्शन भी डंडों और ढोल की थाप पर चलता है। खेलिए अपनी स्थिति पर परस्पर डंडे टकराकर चक्री लेते हैं। और चक्राकार घूमते जाते हैं। इस नृत्य. में गीत नहीं होता। गति होती है। यह रास का ही एक संवर्धित एवं परिवर्तित नृत्य है।

गरबा- यह मुख्य रूप से नवरार्ति में खेला जाता है। विशेष रूप से महिला नृत्य है। यह बाना नृत्य की ही तरह खेला जाता है। इसमें गीत भी शामिल रहता हैं। अम्बा माता की लीलाओं के गीतों की मधुरता, रंग बिरंगी वेशभूषा में सुसज्जित कन्याएँ, सुहागिने, खेलने के डंडों की रणकार। ढोल की थाप। अद्भुत मनमोहक दृश्य होता है।

जब मन मुदित हो उठता है। मस्तिष्क अवसाद मुक्त हो जाता है। तब तन में जो हर्ष और आल्हादमय आनंद की अनुभूति होती है। उसका दैहिक थिरक में प्रकटन होना ही नृत्य कहलाता है। यह स्वत: होता। मन और मस्तिष्क एकमेव होकर तन को आल्हादित कर देते हैं उसका प्रक्रटीकरण देह नृत्यमय होकर करता है।

मयूर का अपने सुरंगे पंखों को विस्तारित कर अपनी मयरी को रिझाने के लिए थिरक-थिरक कर ताथई-ताथई कर उठना, कपोत का चकाकर मटक मटककर अपनी कपोती को रिझाना, वृक्षों का झूमना। ये सब नृत्य की प्राकृतिक प्रेरणाएँ है।

इन्हीं प्रेरणाओं ने आदिम जन को नृत्यमग्न होना सिखाया। गीत और संगीत, नृत्य के प्राण तत्व है। तीनों की त्रयी से ही नृत्य गतिमय होता है।

आदिमजन ने सब कुछ प्रकृति से ही तो सीखा है। प्रकृति ही तो उसकी पाठशाला है। दिन भर के श्रम से थके आदिवासीजन रात्रि में अलावों के इर्द-गिर्द नृत्यमय होकर अपनी थकान और अवसाद को मिटाकर सुख की नींद सोते है। आदिवासी नृत्य अधिकतर चक्राकार तथा पंक्तिबद्ध होते हैं। गीत और संगीत उसे प्राणवान बनाते है।

आदिवासी नृत्यों की अनेक विविध रूपी नृत्य परंपराएँ है। यदि इनके जीवन से नृत्य निकाल दिया जाए तो मानों इनके प्राण ही निकाल लिए गए ऐसा मानना होगा। आदिवासी लोक कलाओं में नृत्य कला सर्वोपरि स्थान रखती है। यह कला उनके जीवन की संजीवनी मानी जा सकती है।

यों तो समस्त कलाएँ सहज अनुभूति की कल्पना की मूर्त रूप प्रदान करती है परन्तु नृत्यकला की सरसता एवं विशेषता इस संदर्भ में प्रधानतया उल्लेखनीय है। इस विराट विश्व की यह चेतन प्रकृति अपने उल्लसित क्षणों में स्वयं ही थिरकने लगती है यह थिरकन ही नृत्यकला की प्रथम उदभावना है। मानव की उत्पत्ति के साथ ही नृत्य का जन्म हुआ है और मानवीय क्रमिक विकास ने ही उत्तरोत्तर नृत्यकला को विकसित किया है।

इन आदिवासियों ने प्रकृति के विशाल प्रांगण में विचरते हुए अपनी नैसर्गिक नृत्य कला का आदि एवं अद्यतन सीखा है, प्राकृतिक उपादानों को खुली आँखों से देखकर वनवासियों ने अपने पाँवों की गहरी थकान को कभी भी कार्यक्षमता में बाधक नहीं होने दिया।

आदिवासियों का सारा जीवन नृत्यों के विविध रूपों से व्याप्त है इनका हरेक उत्सव नृत्य से आरंभ होता है और उसकी समाप्ति भी नृत्य से ही होती है, गहन वनों की लंबाई को अपने कठोर डगों से नापने वाले ये अरण्यवासी जीवन के अभावों को नृत्यकला की सरसता से ही सरस और सुखद बनाते हैं। वातावरण एवं अवसरानुकूल परिस्थितियाँ नृत्यों के आकार-प्रकार से समुचित परिवर्तन और परिवर्धन करती है, यही कारण है कि आदिवासी नृत्यकला कभी भी जीवन के अवसरों से विमुख नहीं हो पाई है, सामूहिक रूप से रचाए गए ये नृत्य एक ओर वनवासियों की सामाजिकता को सजग बनाते हैं और दूसरी ओर सामूहिकता को बल प्रदान करते है, नर वर्ग से संबंधित और नारी वर्ग से संबंधित, इस प्रकार आदिवासी नृत्यकला दो रूपों में अवश्य विभाजित हुई है लेकिन धार्मिक

सामाजिक एवं व्यावसायिक रूपों में इस कला को विभक्त करना ठीक नहीं लगता क्योंकि सामाजिकता यहां सर्वत्र व्याप्त है–

संक्षेप में आदिवासियों नृत्यों की ये विशेषताएँ है–

1. आदिवासियों के नृत्य अत्यंत ओजपूर्ण, शक्तिशाली, अंग–भंगिमाओं और लय ताल की दृष्टि से अत्यन्त सरल और समूहगत होते हैं।

2. ये नृत्य कतारबद्ध गोलाकर कतार तथा चौकोर और अर्द्ध गोलाकार कतारों में संगठन और अंग–भंगिमाओं के गठन में अत्यंत चपल और चुस्त हैं।

3. अधिकतर मिश्रित नृत्य है एवं स्त्री–पुरुषों की भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ नृत्य के संग नाचते हुए भी अत्यंत स्वस्थ और स्वाभाविक है।

4. नृत्यों के साथ चलने वाले गीतों तथा ध्वनियों में सरलता, एकरूपता व एकरसता है, कभी–कभी साजों का प्रयोग भी नहीं करते हैं और यदि करते हैं तो साजों के दिखावें अत्यधिक आकर्षक परन्तु वादन अत्यन्त सरल और प्राथमिक होता है।

5. नृत्यों के साथ चलने वाले गीतों में शब्दों से अधिक ध्वनि का प्राधान्य तथा अधिकतर गूंज पैदा करने वाले स्वर होते हैं।

6. अधिकतर सामाजिक नृत्य है कथा–नृत्यों का नितांत अभाव पाया जाता है।

7. आकर्षक अलंकरण एवं प्रकृति के निकट होने के पोशाख अधिक आकर्षक होती है।

8. लोकजीवन से अधिक नैकट्य रहता है।

9. वन्य पशु–पक्षियों की कतिपय प्रवृत्तियों का अनुकरण मिलता है।

ये विशेषताएँ लगभग सभी आदिम जातियों के नृत्यों में कुछ कम अथवा ज्यादा परिणाम में पायी जाती है, उन पर अन्य स्थानीय विशेषताएँ तो होती है फिर भी इन नृत्यों में पुरातन परिपाटी और परम्परा का बड़ा प्रभाव है। इनके नृत्यों में चेष्टाहीनता का ही प्राधान्य रहता है, यही कारण है कि समस्त भारतवर्ष के आदिम नृत्यों की अपनी अलग श्रेणी है, उन्हें अन्य लोकनृत्यों की श्रेणी में डालना उचित नहीं है।

प्रकृति की अनुकम्पा पर पूर्णरूपेण अवलंबित रहने के कारण इन वनवासियों के आकर्षक नृत्यों में प्राकृतिक उपादानों का विशेष एकीकरण हुआ है, कानन में रहते हुए इन आदिवासियों ने अपनी नृत्यकला की पशु–पक्षियों की क्रीड़ाओं एवं अनुकृतियों से समृद्ध बनाया है।

साहचर्य का प्रभाव मानव–संस्कृति पर पड़ता ही है। अत: वन–वातावरण की झलक इन नृत्यों में मिलना स्वाभाविक है, सिंह नृत्य में एक ओर पौरुष है तो दूसरी ओर भयंकरता है। गवर–नृत्य (वन भैसा नृत्य) में आक्रमण शैली का सुन्दर प्रदर्शन है। भालू नृत्य में ठुमकना सीखकर वनवासियों ने अपने अनेक नृत्यों में इस क्रिया को कलात्मक रूप से प्रदर्शित किया है। मृगों की छलांगों ने इन आदिवासियों को अत्यधिक प्रभावित किया है। मयूर का नर्तन कम आकर्षक नहीं होता है। शेर का गर्जन, आहत सांभर की चीत्कार, कोयल की कूक, बुलबुल का तराना, पक्षियों का चहकना, पल्लवों की मरमर ध्वनि, शाखाओं का हिलना, पुष्पों का थिरकना, आँधी का बवंडर, तूफान की सनसनाहट, वायु की मंद तीव्र गति आदि की अभिव्यक्ति इन स्वाभावित वन नृत्यों में किसी भी समय देखी जा सकती है, यह नृत्यकला शारीरिक शक्ति को संवर्धित करती है दुष्ट दलन को प्रक्रिया बताती है एवं आक्रमण की विधि सिखाती है।

अवसरानुकूल विविध नृत्यों को नाचकर ये आदिवासी अपनी नृत्यकला की कलात्मक अभिवृद्धि करते है और शरीर की क्षमता का संतुलित बनाते है कतिपय नृत्यों के नाम इस प्रकार है–

1. कर्मा 2.शैला 3.दुर्ग 4.गेंडी 5.युद्ध 6.शिकार 7.गवर 8.घेरा 9. जवारा 10. चूघर 11. गैर 12. छिरवा 13. धुपड़पाट 14.पाली 15. दिवाली 16.गोंचा 17. बीजपुतनी 18.नवाई 19. विरहा 20.जड़पथ 21. कातरा 22.सुआ 23. ऊंदीपाली 24.मटकी 25. इंदल 26. शैताअ 27.चेरता 28.खीड़ी 29. तेहरीं 30. डंडाराम 31. पूजा 32.कोल 33.सहरिया, गरबा, बाना आदि।

नृत्यकला में वाद्ययंत्रों का विशेष महत्व है। इनके स्वर ही नर्तकों की पद–गति की सुव्यवस्थित रखते है। स्वर की साधना, लय का परिसान तथा ताल की अन्विति में वाद्यों का परिगान आवश्यक है–वस्तुत: संगीत, नृत्य, गीत और वाद्य का ललित समन्वय इस कला में द्रष्टव्य है। कतिपय वाद्ययंत्र ये हैं–

1.मादल 2.ढील 3.टिमकी 4.सारंगी 5.कांसे की थाली 6.लोटा 7.कटोरा 8.मटका 9.शंख 10.करताल 11.चटकोरा 12.बाँसुरी 13.मुरली 14.सैला, लकड़ी का एक छोटा टुकड़ा 15.अलगोजा 16.नगाड़ा 17.ढपला 18.ढपली 19.घुँघरु 20. रमतूला 21.शहनाई 22.तुरई 23.चिमटा 24.झालर 25.खंजरिया 26.सूप 27.घंटियाँ 28.ढोलक 29.घंटा 30.मृदुम्भ 31.टुड, लोहे की छड़ी 32.दूबड़ी, छोटे डग्गे की आकृति का यह वाद्य दो लकड़ियों से बजाया जाता है। गुदुम्भ लोहे व चमड़े के मेख से बना होता है तथा इसे चमड़े की मोटी, लंबी व पतली पत्तियों से बजाया जाता है। इसकी ध्वनि गंभीर होती है– यह नगाड़े की

तरह होता है, इसे सींगबाजा भी कहते है, कारण कि इसमें कहीं-कहीं सांभर व चीतल के सींग लगा दिए जाते है।

साधारणत: ये नृत्य कभी-कभी अवकाश के क्षणों में नाचे जा सकते है और आदिवासी नर-नारी अपनी सामान्य पोषाक में ही थिरकने लगते है, लेकिन विशेष अवसरों पर जब ये आदिवासी नाचते है तब उनकी वेशभूषा बड़ी आकर्षक और सुहावनी होती है, युवक सुन्दर रंग-बिरंगे पुष्पों से अपने शरीर को अलंकृत करते है। मोरपंख की कलंगी साफे में खोंसते हैं, गले में फूलों की माला पहनते है और वन भैसा के सींगों को भी मस्तक के दोनों और लगाते है।

इन नर्तकों के कुछ अलंकरण ये है जिससे इनका गठित शरीर बड़ा सुहावना लगता है-1.पुष्प-पल्लव 2.मयूरपंख 3.पक्षियों के पर 4.सीप 5.कौड़ी 6.सींग 7.चर्म 8.मूंगा 9.शंख आदि। यदा-कदा ये वनवासी मलमल के श्वेत अथवा रंगीन साफे से मस्तक सजाते है। कमर को कपड़े से कसते है। लंबी किनारीदार धोती पहनते है। कटि के कुछ निचले भाग को छूने वाले जेबदार कुर्ते पर रंगीन बंडी (जॉकेट की तरह) को धारण करते है। कानों में मुरकी गले में चाँदी अथवा पुष्पों की माला पहनते है। हाथों में रंगीन अथवा सादे डंडे डालते है और पैरों में घुंघरु बाँध लेते हैं।

वनवासी महिलाएँ तो नृत्य के अवसर पर मनमोहिनी वेशभूषा से अपने शरीर को चमका देती है। पूर्वी मंडला की आदिवासी रमणियाँ गले में चांदी के रूपयों तथा अठन्नियों की बनी हुई बाबली तथा नागपुरिया हमेल पहनती है। सर्पाकार हंसली भी उनकी ग्रीवा को सजाती है। रूतियाँ, गुरियाँ, माला, लटका आदि गले के आभूषण है। कानों में ये कर्णफूल पहनती है, जिनमें छोटी-छोटी चाँदी की जंजीरे रहती है। कभी-कभी ये सामने वालों में एक कान के दूसरे कान तक चांदी की जंजीर भी लगा लेती है। ललाट के मध्य में बीजा और बिंदिया चमकती है। नाक में कुटिया अथवा लोंग दमकती है। कलाइयों में चूड़ियाँ तथा कई चाँदी, गिलट एवं पीतल के आभूषण रहते है तथा पैरों में बिछुए, चुटकी, चूड़ा, कडा आदि अनेक अलंकारों का एकीकरण देखा जा सकता है । इस प्रकार से अलंकृत शरीर पर कभी ये रंगीन धोती पहनती है तो कभी धोती के साथ चोली भी। निमाड़ की आदिवासी युवतियाँ विविध गहनों के साथ-साथ लाल रंग के घाघरे पर रंगीन ओढ़नी ओढ़ती है तथा चोली अथवा बंडी या ब्लाऊज पहन लेती है। पैरों में ये घुँघरु बांधती है और फूलों को जूड़ों में लगा लेती है। नाचते समय उनके हाथों में हिलता हुआ रंगीन रूमाल आनन पर आये स्वेद-कणों को पौंछता रहता है।

एक नृत्य-गीत में बताया गया है कि युवती सोलह श्रृंगार करके तथा लँहगा पहनकर नाच रही है। उनके पैरों में घुंघरु भी है-

ए है, हाय नारी नाचत है रे,
ए जमुना के तीर,
नारी नाचत है रे,
लंहूंगा पहिरे, सोलह सिंगार,
नारी नाचत है रे,
तबला बाजे डुग्गीबाजे
अरु बजे मिरदंग रे
ए है, हाय नारी नाचत है रे,
तारों तार मिलकै, बाजत है सितार,
नारी नाचत है रे,
जमुना के तीर
ए हे, हाय रे, है रे,

विशाल मध्यप्रदेश के विभिन्न भागों में रहने वाले इन आदिवासियों की वेशभूषा में विभिन्नता होना स्वाभाविक ही है।

नृत्यकला का यह संक्षिप्त रूप मध्यप्रदेश के आदिवासियों को पद-संचालन गतिविधि का सौंदर्य-परिपूर्ण एक चिरंतन लेखा है जिससे रूप की अनबुझी प्यास है, जीवन की मीठी तीती मिठास है, चिरप्रतीक्षित लालसा की दहकती आग है एवं मंदिर उद्दाम यौवन का अल्हड़पन है।

यहाँ यह विशेषत: उल्लेख्य है कि प्रत्येक नृत्य-विद्या के साथ जो गीत सुरीले स्वरों में गाए जाते है, उनमें नृत्य की भाव भंगिमा के संकेत तो अंकित रहते ही है, साथ ही साथ उस अवसर की भी अभिव्यक्ति अभिव्यंजित हो जाती है जिसकी धूमिल रेखाओं को उकेरा जा रहा है।

आदिवासियों के नृत्यों के साथ जो गीत प्रयुक्त किए जाते है, उनमें कभी-कभी साम-संगीत के दर्शन भी होते है, इसलिए भारत के लोकनृत्य आर्य सभ्यता का उदघाटन करते है। वे अतीत की प्रतिध्वनि है हमें उन पर गर्व है। पार स्परिक संबंधों को सुदृढ़ बनाने एवं शांति स्थापित करने में भी ये लोक नृत्य बहुत सहायक सिद्ध होते है।

इन नृत्यों को हम 6 भागों में बांट सकते हैं यथा 1. संस्कार नृत्य विवाह तथा पुत्र जन्म आदि से संबंधित 2. कथा नृत्य, इतिहास से संबंधित 3. ऋतु नृत्य, ग्रीष्म, बसंत तथा शिशिर आदि ऋतुओं से संबंधित 4. त्यौहार नृत्य, होली, दिवाली, नागपंचमी तथा तीज आदि से संबंधित 5. उत्सव नृत्य, वर्ष में होने वाले मेलों से संबंधित 6.आध्यात्मिक नृत्य, विभिन्न देवी-देवताओं से संबंधित विविध भारत के लोकनृत्य।

ये नृत्य आकार में लघु होते हुए भी जीवन के विराट स्वरूप को शब्दों के माध्यम से उजागर करते है। भले ही इनमें अलंकारों का प्राचुर्य न भी हो फिर भी मानवीय भावों का सर्वत्र चित्रण मिलता है।

नृत्यों के साथ गाये जाने वाले गीतों में यह वैशिष्ट्य है कि इनकी प्रथम पंक्ति में प्राय: लय का संकेत रहता है। इससे वादक अपने वाद्यों के स्वरों को ठीक करते है तथा नर्तक अपनी पद-गति को सुव्यवस्थित करने की कुशलता से प्रवृत्त हो जाते है। शैला-नृत्य-गीतों में यह विशेषता द्रष्टव्य है। इनका प्रारंभतारी ना को नाना, नारी नाना हो, तरो नको नाना, नाना रे नाना हो, तर हर नाना नाना न रे, नाना रे नाना, तरहर नाना रे नाना आदि ध्वन्यात्मक शब्द-पंक्तियों से होता है यथा-

तर हर नाना नाना रे नाना रे नाना
तर हर ना रे नाना,
भइयो है रे अहिला वहिला
बहला है गरियार
बिटिया है रे, अमकुल चमकुल
गली चलत बिदुराय
गमन लहजारे

इस शैली नृत्य का व्यापक रूप सर्वत्र देखा जा सकता है। डंडा नृत्य तथा लाठी नृत्य इसी शैला नृत्य के सुसंस्कृत रूप है। पंजाब, गुजरात, राजस्थान, असम, बिहार आदि में भी शैला नृत्य का एक न एक रूप देखने को मिल जाता है। निमाड़ के आदिवासी लाठी नृत्य को बड़ी कुशलता से प्रदर्शित करते है। बघेलखण्ड में शरद ऋतु की चांदनी रात में शैला खेलने का जो नृत्य है वह गुजरात के डाण्डयारास का नामान्तरण है। शैला छोटा डंडा होता है। दो शैले दोनों हाथों में लेकर छह या आठ नवयुवक गोलाकर घेरे में घूमते हुए आपस में डंडे बजाते हुए शैला खेलते है। इस नृत्य का चित्रण बाघ के गुफा-चित्रों में भी पाया जाता है जिससे ज्ञात होता है कि यह प्राचीन लोकनृत्य था। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी भाग में इसे चौक चांदनी का खेल कहते है। बुन्देलखण्ड जनपद के दक्षिण में इसे सैरा कहते है। दशपुर की शैल गुहा में ये चित्र मंडे हुए है।

इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेख है कि इन गीतों में वातावरण निरंतर चित्रित रहता है। यहाँ भूत-प्रेत है। शिकार का मनोरंजन है। नारी के प्रति कुछ विश्वास है। हल्के व्यंग्य है। नर्मदा मैया में भक्ति है। राम-कथा के कई प्रसंग है और बहुत कुछ है। इन सबका सामीप्य ही आदिवासी-जीवन को गुलाब के फूल के समान महकाता रहता है-

घोड़ा मांगे का कोड़ी,
का कोड़ी मांगे सूत,
वामन मांगे कान जनेवा
बमन्नि मांगे पूत
माना नाला जान लेवे भैया ला सपूत,
बड़ा सोभा लागे मैया मांगली के भूत,
बड़ा माया लागे भैया मांगली के भूत,
बड्ड़ी चढ़ी भालू तो आया लेरा गांव है,
पिछी फिरी भालू तो मुरिया गर देखाय है,
लेकर बलाखा तीर धना ही दावे?
फेकर बलाखा बांधु दावे ?
वेगा के बलाखा तीर धना ही दावे,
राज के बलाखा बांधू दावे,
केकर रे बलाखा सांभर मिरगा मारे,
केकर रे बलाखा बाघा मारे,
बेगा के बलाखा सांभर मिरगा मारे,
राजा के बलाखा बाघा मारे,
करिया रे पानी चिकन पथरा,
तट छोरे नहाय बमन छोकरा
गोहूं के रोटी भइस कतरा
तो ही चाए है मोटाई बमन छोकरा
ए है हाय मैया क्वांरी है गा,
मोहबत तेरी भारी मैया क्वांरी है गा,
अमरकंठ या जनमे मैया
पहाड़ फोर बहाय कपिल धारा मा,
कूद गई ना बहे दूध के धार
ए हे, हाए ए है, हाय,
मैया क्वांरी है गा,
झिरमिर झिरमिर पानी बरीसे
कउन बिरिधरतर भींजत हुई है
राम लखन दोउ भाई
राम लछन दोउ भाइ रे,
चंदन बडली नीच काल्ल्या दूकान मांडी
चलरे देवरिया बड़ मारा,
कड़िला गिरवमेला
देवर भौजाई मन मेल्या,
पीना कोई कीजो मती
देवर भूगल्या लाज
चल रे देवरिया बड़ मारा,
कडिला गिरवमेला

कर्मा नृत्य प्रचलित पारंपिक आदिवासी नृत्यों में कर्मा नृत्य- में स्त्री तथा पुरुष आमने-सामने दो झुण्डों में खड़े हो जाते है। दो पंक्तियों के बीच में अथवा किनारों पर खड़े होकर वादक अपने वाद्ययंत्रों पर अंगुलियाँ नचाते है। गति-योजना (अंगसंचालन) के आधार पर करमा नृत्य, झूमर, लंगड़ा, लहकी, ठाड़ा, झुलनिया आदि भेदों में विभाजित किया गया है। इसके गीतों का आरंभ ही हो रे, ओ हो, हाय रे, हाय हाय, हो रे आदि ध्वन्यात्मक शब्दों से होता है। करमा नामक वृक्ष की शाखा को पावन ऋतु में अथवा कहीं-कहीं पर चैत मास में किसी रमणीक स्थल में गाड़ कर इसके इर्द-गिर्द यह नृत्य किया जाता है। मान्यता है कि इस नृत्य में इन्द्रदेव प्रसन्न होते है एवं वर्षा कर फसलों को पर्याप्त मात्रा में उगाते है। भारत के प्राय: समस्त आदिवासी करमा नृत्य नाचते हैं। कतिपय विद्वान इस पर्व को भगवान कृष्ण से सम्बद्ध मानते है इस नृत्य का गीत है-

अंगना से लौट चला साजन
नींदा बैरी हाइगा रे
संग मुला माये, संग मुला सोये
उठके विहान रेंग चला साजन

नींदा बैरी होइगा रे.

शैला नृत्य–विवाह, दशहरा, दीपावली आदि अवसरों पर यह नाचा जाता है। इसमें नर्तक सिर में मोर के पंखों को खोसते है और पैरों में घुँघरु बाँधते है। धीरे-धीरे डंडों को बजाते हुए ये पैरों को धरती पर पटकते है एवं वातावरण को मनोहारिणी स्वर-लहरी में ध्वनित कर देते है, शिकार शैला, भरोनी शैला, लहकी शैला, बैठकी शैला, सर्प शैला, हरोली, शैला आदि कई रूपों में यह नृत्य विभाजित है।

दुर्गनृत्य– इसमें दस-पन्द्रह युवक भाग लेते है, इनमें से दो-चार नर्तकों के सिरों पर सुन्दर कलंगियाँ रहती है, ये सब एक दूसरे के कंधों पर खड़े होकर दुर्ग का दृश्य प्रस्तुत करते हैं तथा कमर में बंधे हुए घुंघरुओं को लयात्मक ध्वनि से मटक-मटक कर बजाते है, युद्ध में पराजित शर्तुओं को ललकारते हुए विजयोल्लास में यह नाच नाचा जाता है। शैलानृत्य की भाँति यह भी युवक नृत्य है। इससे स्त्रियाँ भाग नहीं लेती है, गीत है-

रची होरी कई मची होरी,
गढ़ मांडव मारे सची होरी,
कॉयण हेरु म्हारी गेंडी डंडडियाँ,
काँयण हेरु म्हारी लंबी छड़ी,
दक्खण हेरु, म्हारी गेंड डंडडियाँ,
उज्जण हेरु, म्हारी लंबी छड़ी,
गढ़ मांडव मारे मची होरी,

गेंडीनृत्य– गेंडी एक लंबी सीधी दृढ़ लकड़ी होती है जिस पर चढ़कर वह नृत्य नाचा जाता है। प्रत्येक्ष नर्तक के साथ दो गेंडी होती है। इनके निचले भाग में जो काष्ठ-खण्ड लगा रहता है वह पैरों के रखने के लिए होता है सिर में मोरपंख खोसे हुए मृग-चर्म अथवा शेर के चमड़े से देह के ऊपरी भाग को ढके हुए युवक कभी झपटते है कभी इधर-उधर मुड़ते है तो कभी फुदकतें हुए मृगशावक की भाँति चौकड़ी भरने का अभिनय करते है। पावस ऋतु में यह नृत्य अधिक नाचा जाता है, गीत है-

करिया रंगीली डौकी कांस पितर माला हो,
होंगर के चीनी मोंहा लाल लास डोंगा,
बीने बीने कर समधीन मोर संग जैबे.
तोर संगजाऊँ, समधी का का देवी ना
मेर संग चलवे तो जनम चीना दे हँ ना

राईनृत्य– बुन्देलखण्ड के गौड आदिवासियों में यह विशेष प्रचलित है नर्तकी राई (मथनी) की भाँति इसमें चक्र की तरह ठुमुकती है तथा थकान को महसूस करती ही नहीं। संभवत: नृत्यगीत को ध्यान में रखते हुए इसका यह नामकरण हुआ है। इस महिला नृत्य पर बेड़नियों ने अपना आधिपत्य जमा लिया है। रात में मशालों के प्रकाश में इस नृत्य की छटा देखते ही बनती है। नर्तकियाँ कामुक भाव-भंगिमाओं से दर्शकों रो अधिक लुभाती है। कुछ नृत्य विशारदों की मान्यता है कि युद्ध में व्यस्त सैनिकों के आमोद प्रमोद के लिए रात में यह नृत्य विशेष रूप से नाचा जाता है। इसके गीत छोटे और बड़े मंदिर होते है-

चकरी होगये नैन
जब कितंकित चालिए नजरियाँ,
मन जेइसा लगा,
औरों पे मारिए नजरियाँ,

कभी दो-चार तो कभी चार छ: रमणियाँ इस नृत्य में भाग लेती है एवं मृदंगों, सारंगियों, ढोलकों आदि के सुरीले स्वरों से यह बड़ा आकर्षक बन जाता है।

रीना नृत्य– मंडला, बैतूल तथा बस्तर के गहन वनों में रहने वाले आदिवासियों की जीवन सहचरिया इस नृत्य को बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रदर्शित करती है। यह युवती-नृत्य दिवाली के प्रकाश को विशेष मोहक बना देता है। आमने-सामने से दो पंक्तियों में खड़ी होकर सर्वप्रथम ये नर्तकियाँ मंद स्वरों में गीत गाती है। वाद्ययंत्रों के स्वर साथ देते है और नृत्यरत सुन्दरियाँ कभी इधर-उधर मुड़ती है, कभी निहुरती है तो कभी हल्की-सी छलांग भरने का अभिनय करती है तालियां बजा बजाकर ये नृत्य के मध्य में वादकों की ताल आदि का संकेत देती है, नृत्य की कुछ पंक्तियाँ है-

हो टीना टीना री टीना हो,
हो टीना टी हला आए,
किहुआ हो रेटीना टोहल आए,
बारी के ईरतीर बायों झलर धान हो,
हिरनागर मिरगी चरी जाय,
किहुआ हो रे टीना टाहल आए

भगोरिया नृत्य– आदिवासियों का यह प्रणय नृत्य जीवन सहचरी की प्राप्ति में भी सहायक माना गया है। सुसज्जित नवयुवकों के साथ कभी-कभी अविवाहित सुन्दरियाँ भी इसमें सम्मिलित हो जाती है, होली के एक सप्ताह पूर्व ग्रामों नगरों आदि में आयोजित बाजारों में यह नृत्य होता है। रुप लोलुपी युवक कभी फूल-सी कोमलांगी-नवोढ़ा के मदभरे कपोलों पर सिन्दूर की लाल रेखाएँ अंकित कर अपना चयन स्पष्ट कर देते हैं। दोनों के कुछ समय के लिए सघन वन में लुप्त हो जाते है एवं पंचायत द्वारा जब उनका चयन सोल्लास स्वीकृत हो जाता है तब वे सब के सामने उपस्थित हो उठते है।

ऐसे मदभरे वातावरण में वाद्यों का रसिया संगीत अधिक सुहावना लगता है, एक भगोरिया नृत्यगीत इस प्रकार है-

कालई खेत खेड़ावसो भूको कपास वेरावसों
बारी बारी जवानी देखी न राते पान खवाउसो

सुआ नृत्य– शुक लोकजीवन में अधिक प्रिय है इसकी अनेक कथाएं गीतों में गायी गई है और इसकी प्रवीणता सर्वत्र स्वीकृत हुई है। छत्तीसगढ़ की वनवासी महिलाओं में यह अधिक प्रचलित है। अनाज से

भरी हुई टोकनियों में मिट्टी अथवा काष्ठ के बने हुए तोते को रखा जाता है और इसके माध्यम से नारी अपने जीवन के सुख-दु:ख की कहानियों को गीत-रूप में सिसकती हुई कहती है-

नन्दे भोजाई एक मत जोरे रे सुअना
चल जाओ हरदी बजार रे सुअना
लाये ला लावोहब हरदी बजार रे ओ भोजी
काले के जावो ससुरा रे सुअना,
काले के जावो ससूरा रे सुअना
हाटे मा लेलेवो पाने सुपाड़ी ओननंदी
रे सुअना, काले के जावो ससुरा

इस प्रकार लोक नृत्यों के ये गीत गीतिकाव्य के सुन्दर उदाहरण है जो किसी भी मानस को उद्देलित कर सकते है।

मध्यप्रदेश के वन-पर्वतादि में रहने वाले कतिपय आदिवासी इस प्रकार है-

1.भील 2.भिलाले 3.बारेला 4.सांसी 5.गांडे 6.बैगा 7.कोल 8.भरिया 9.कोरवो 10.भूमिया 11.सहरिया 12.वनजारा 13.बेडिया 14.कवारा 15.कोरकू 16.कंध 17.ओरांव 18.परधान 19.शवर 20.आंध 21.विभूवार 22.खरबार 23.मुड़िया 24.पाण 25.कोलम 26.नगासिया 27.भुंइहार 28.चेरा 29.माड़िया 30.तड़वी 31.परहरिया 32.संथाल 33.भूंजिया 34.स्वेहरा 35.धंवार 36.मलार 37.साहली 38.कोलोह 39.विरहोर 40.अगुर 41.भोगदा 42.भूमिज 43. विरजिया 44.मोगिया 45.मानकर 46. अगरिया।

आदिवासी जनजीवन में नृत्य का महत्व वैसा ही जैसा देह में प्राण का। बिना नृत्य के आदिवासी जीवन निरीह एवं नीरस हो जाता है। आदिम मानव से लेकर आज तक आदिवासी समुदायों में नृत्य मन की उमंग की अभिव्यक्ति बना हुआ है।

यदि हम विभिन्न आदिवासी समुदायों के नृत्यों के बारे में संक्षिप्त जानकारी लें तब हम पाएंगे कि इनका कोई भी पर्व-उत्सव बिना नृत्य गान के नहीं हो पाता।

नृत्य उतना ही प्राचीन है जितनी की मनुष्य जाति, मनुष्य अतीत काल से अपनी भावनाओं को शारीरिक चेष्टाओं और शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता आया है। इस शारीरिक चेष्टाओं का परिष्कृत रूप नृत्य और शब्दों की अभिव्यक्ति गीत है। ऐसा अंदाज है कि इस खुशी को स्थायित्व प्रदान करने उद्देश्य वह नृत्यरत् हुआ होगा। फूंकने वाले वाद्य, बांसुरी, तुरही आदि और आवाज करने वाले ढोल, मांदल तुड़-बूड़ी, हुड़क, ढफ किंगारी, इकतारा, झांझ, चिमटी, मंजीरा आदि की रचना की। लोक नृत्य और गीतों का गहरा संबंध है। ये एक दूसरे के पूरक है। मानव सभ्यता के क्रमश: विकास के साथ लोक नृत्य और लोक गीत बिखरते गए परन्तु इस विकास यात्रा का कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं है। मनुष्य ने अपने पेट की भूख शांत करने के लिए भोजन की व्यवस्था की और फुर्सत के समय आनंद, सौंदर्य भावना की भूख मिटाने के लिए नृत्य संगीत और गीत की सृष्टि की। बस इसी का फल है लोकांचल में लोक नृत्यों और लोक गीतों की धारा बही और अबाध रूप से बहती चली आ रही है।

मध्यप्रदेश में आदिवासी लोक नृत्यों का अक्षय भण्डार है, अनेक जाति और जनजातीय समूहों विशेषकर उरांव, गोंड, मांडिया, मुरिया, कोहलाभूतिया व नागरची, भील-भिल्ला, बेगा, बिझवार, भुईया, ओझा, राऊत, देवार, केजरियाँ, बेड़िया आदि तो अत्यन्त ही नृत्य और संगीत प्रेमी समूह है इसके साथ ग्रामीण अंचलों में निवास करने वाले अनेक वर्ग भी विभिन्न ऋतु, पर्वों, धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक उत्सवों का आयोजन नृत्य व गीत प्रस्तुत कर सम्पन्न करते है। विभिन्न समूह अपने-अपने नृत्यों की अलग-अलग पहिचान लिए है। किन्तु इस विविधता में समानता के भी दर्शन होते है।

प्रदेश के आदिवासी नृत्यों को मोटे रूप में तीन भागों में बाँट सकते है-

1. धार्मिक नृत्य 2. सामाजिक नृत्य 3.पेशेवर नृत्य। धार्मिक नृत्यों के तहत वे सभी नृत्य आते है जो देवी-देवता की आराधना और प्रसन्न करने अथवा भूतप्रेतों, देवी विपदाओं जैसे अवृष्टि और अकाल, अतिवृष्टि और बाढ़ महामारी आदि से छुटकारा पाने के लिए आयोजित किए जाते है। इन नृत्यों की भाव भूमि धार्मिक है। धार्मिक नृत्यों की लंबी श्रृंखला में उरांच का सरहुल, गौड़ों की करमा, सुआ, माडियों का ककसाड़, धुरवा (परजा) का परब (झालियाना) बैगा का करमा, भील-भिलालों का भगोरिया, भुईया (भूमिया) का करमा का राऊत बेड़नियों का राई आदि प्रमुख है।

यहाँ प्रदेश के प्रमुख आदिवासी नृत्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना समुचित होगा-

सरहुल- प्रदेश के पूर्वी अंचल में बसने वाले उरांव आदिवासी समूह का विश्वास है कि सरना पूजा के अवसर पर सरहुल नृत्य से ग्राम देवता महादेव और पुरखों की आत्माएं प्रसन्न होती है और उनके आशीष से गांव में सुख, शांति और समृद्धि आती है। सरहुल सामूहिक नृत्य है। यह प्रकृति पूजन की धार्मिक आस्था से प्रेरित है। सरहुल नृत्य चैत्र-पूर्णिमा को गांव-गांव में समारोहपूर्वक आयोजित किया जाता है। सरना (साल वृक्षों के पुंज) में जहां महादेव का वास है। लोक इकट्ठा होते है, पुजारी पूजा करता है, दो कलश पानी भरकर रखते है। उनमें साल के फूल डालते है और यही पवित्र जल पूजा-स्थल पर छिड़कते है। इसी अवसर पर नृत्य के साथ गीत चलता है। मांदल, बड़ा नगाड़ा, झांझ आदि बजाए जाते है। सब मिलकर एक बड़ी सुन्दर स्वर लहरी उत्पन्न करते है। नर्तक दल की शोभा बढ़ाने के लिए टोंटम का प्रतीक झण्डा भी बीच में रखा जाता है। नर्तक स्वयं गीत गाते है सारा वातावरण आनंद विभोर हो जाता है।

सुआ- दीपावली के अवसर पर समूचे छत्तीसगढ़ में सुआ बड़ी धूमधाम सेनाचा और गाया जाता है। यह इस अंचल का प्रसिद्ध नृत्य है

जिसमें केवल स्त्रियां ही भाग लेती है। सुआ नृत्य अंचल के आदिवासियों की धार्मिक भावनाओं और विश्वासों से विशेष रूप से जुड़ा है आदिवासियों के धार्मिक जीवन में शंकर-पार्वती का प्रमुखस्थान है। आदिवासी महिलाएं इनकी उपासना अपने ढंग से अत्यन्त निष्ठा और भक्तिभाव से करती है। अत: इनका यह 'लास्य नृत्य' भगवान शिव की प्रशस्ति-गान से आरंभ होता है। फिर सुआ नृत्य तोता पक्षी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन का परिचायक भी है। हरियाली तीज के अवसर पर नवविवाहिता महिलाएँ अपने मायके आती है और हरियाली की प्रतीक सुआ की प्रतिमा धान से भरी हुई टोकरी में रखकर अन्य युवतियों के साथ मिलकर यह नृत्य प्रस्तुत करती है। सुआ नृत्य भी गीताष्मक लोक नृत्य है जैसा कि, पूर्व में इस गीतमय नृत्य का वर्णन किया भी गया है।

ककसाड़-बस्तर के माड़िया गोड़ अपने गोत्र देवता की पूजा के लिए ककसाड़ (काकासार) पर्व का आयोजन करते है। इस पर्व के दो पक्ष है-गोत्र देवता की पूजा-अर्चना और क्षेत्र की जनता के सुखी व समृद्धिशाली जीवन के लिए देवता का आशीष प्राप्त करना। दूसरा पक्ष यह है कि पति-पत्नी का विशेष अवधि के बाद प्रेमलाप नए वैवाहिक संबंधों की स्थापना, आनंद व रस का आयोजन, माडिया आदिवासी समूह का यह धार्मिक पर्व उनके आर्थिक जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाहित करता है। इसी अवसर पर खेती स्थल का चुनाव और बोये जाने वाले बीजों को अभिमंत्रित करने के लिए गोत्र देवता के आह्वान के साथ यह याचना की जाती है कि खेत धनधान्य से लहलहाएँ, पेड़ खूब फूलें, फलें सब तरह आनंदमय जीवन हो। इस अवसर पर नृत्य का आयोजन होता है। श्रृंगार प्रसाधनों से सज्जित कुंआरे, युवक-युवतियाँ नृत्य में भाग लेती है। भरपूर मदिरा पिए हुए युवक-युवतियाँ आनंद विभोर होकर नाचते है और अपने मनपसंद साथी के बाहों में बाहें डालकर नृत्य करते हैं और रात के बढ़ते-बढ़ते परस्पर एक सूत्र में बंधकर नृत्य में लीन होते है। ककसाड़ नृत्य में मधुर गीत के साथ ढोल, लकड़ी की मांदुरी, मिट्टी की तुड़बड़ी, ठरका, तोड़ी, बांसुरी, टिमकी, मंजीरा आदि की मिली-जुली स्वर लहरियां सारे वातावरण में दूर-दूर तक गूंजती है। इस नृत्य के साथ गीत और संगीत अलग नहीं है। तीनों एक साथ चलते है।

परब- बस्तर की धुरवा (परजा) का परब नृत्य झालियाना भी कहलाता है। इसके भी नृत्य, गीत व संगीत तीनों पक्ष साथ-साथ चलते है। इस पर्व नृत्य के पीछे छिपा रहस्य है कि अंचल में कोई भूखा न रहे। बारहों महीनों लोग खेत देवी के आशीष से सम्पन्न व सुखी रहें, उनके गाय-बैल व अन्य पालतू पशु-पक्षी निरोग रहे, सारे लोग नित नये प्रगति के सोपानों को पार करते रहें।

बस्तर जिले के माड़िया, मुरिया व धार झाबुआ तथा पश्चिम निमाड़ जिलों के भील-भिलाले आदिवासी समूहों का आनंद उत्सव क्रमश: मड़ई और भगोरिया लोक जीवन की एकरूपता प्रस्तुत करते हैं। इन दोनों आयोजनों में नृत्य और गीत जब आनंद की उत्ताल तरंगे भर देते हैं तो वनों की स्तब्धता टूटती है, जीवन की नीरसता छटती है और सारा अंचल एक बार मधुर गीतों तथा आर्कषक नृत्यों के माध्यम से प्राणवान हो उठता है, बस्तर के आदिवासी समूहों की मड़ई आयोजन के पीछे उनके कई धार्मिक संस्कार, मान्यताएं और विधियां जुड़ी हुई है, पूर्व निर्धारित तिथि तथा स्थल पर आदिवासीजन मड़ई में सम्मिलित होने के लिए एकत्र होते है। देवी पूजन करते है बस यही से मड़ई का प्रारंभ माना जाता है। ढोल-ढमाके, देवी-गीत और घुंघरुओं की ध्वनि के साथ देवी के समक्ष आदिवासीजन भाव-विभोर होकर नाचते है फिर मड़ई के मुख्य दिन रात्रि में एक खुले मैदान में आदिवासी तरुण-तरुणियां एकत्र होकर एक विशाल घेरा बनाकर पारंपरिक एक ढाल तौर नृत्य करते हैं। यह नृत्य पौ फटने तक चलता है और सारी रत एक ही गीत की पंक्तियाँ दोहराते हैं,मदिरा में मस्त हुए नाचते रहते हैं, इस आयोजन के प्रमुख नर्तक होते है घोटुल की मोटियारी और चेलिक।

बिल्कुल मड़ई के अनुरूप भील अंचल में होली के एक सप्ताह के पहिले दिन में भगोरिया हाट प्रारंभ होते है। ताड़ी आना भी शुरु हो जाती है। युवक, युवती, बूढ़े, बच्चों के दल के दल रंग-बिरंगे परिधानों और गहनों में सजे-धजे, ताड़ी के सुरुर में झूमते, नाचते गाते अपने-अपने ग्रामों के भगोरिया हाट में पहुंचते है। हाटों में मादल की ताल, बांसुरी के स्वर और ताड़ी केरस रंग में गाते, थिरकते युवक-युवतियों के दल भगोरिया का अपूर्व आनंद लेते हाट में घूमते रहते हैं।

भील 'भगोरिया उत्सव' अपने इष्ट देवता भगोर देव की पूजा-अर्चना के लिए, बड़े उत्साह से आयोजित करते हैं। यह या तो होली नृत्य है या अपने इष्ट देवता के प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पित करने के लिए पूजा नृत्य है। महिला व पुरुष रंग-बिरंगे परिधान में सजकर, बांस की झापी, 'बोड़नी' में पकवान बनाकर भगोरिया हाट में लाते हैं। पूजा स्थल पर एक खंभा गाड़ा जाता है और उसके आसपास बोड़नी रखते है। भंगेरा देव की पूजा की जाती है। वाद्य यंत्र बजाकर नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। गांव का सयाना ढोल पर पहली थाप लगाता है, उसके बाद दूसरे अन्य लोग थाप लगाते है और नर्तकगण आनंद विभोर होकर नाचते-गाते रहते है। इसमें सभी भाग लेते है। नर्तक नाचते हुए लगभग बौरा जाते है, बनेली आवाज और चीखों के साथ प्रेम भरे गीत गाते हुए गोलाई में नाचते रहते है। यहां तक कि ढोलों की ताल पर स्वयं को खुला छोड़ देते है। भगोरिया मूक भाव-भंगिमाओं और गीत का सूचक अनूठा नाच है। अंत में भंगरा देव का प्रसाद आपस में बाँटते है और बाजार घूमकर आनंद उत्सव का समापन करते है। इसी उत्सव में प्रेमीजन अपना जीवन साथी चुनते हैं।

काठी- मालवा अंचल का प्रसिद्ध आदिवासी नृत्य काठी है। यह मातृ-शक्ति जगत-जननी जगदम्बा गौरी मां (पार्वती) की अर्चना के लिए अनूठा नृत्य है। काठी नृत्य देवप्रबोधनी एकादशी से प्रारंभ होता है। इस दिन काठी माता की 'ध्वजा' (ध्वज) चढ़ाई जाती है इसे नर्तक दूर-दूर तक नृत्य करते हुए ले जाते है। आयोजन का समापन महाशिवरात्रि को

होता है। निमाड़ में काठी नृत्य के नर्तक हरिजन या तेली होते है, जिन्हें निमाड़ में भगत कहते है। काठी नृत्य केवल नृत्य ही नहीं है वरन् इसकी धार्मिक गरिमा आलौकिक है।

काठी नृत्य में भाग लेने वालों का श्रृंगार अनूठाहोता है और इस नृत्य में बजाये जाने वाले वाद्य यंत्र भी विशेष होते है इस आदिवासी नृत्य के गीत अत्यन्त सुरुचिपूर्ण और साहित्यिक है।

निमाड़ व मालवा के धार्मिक आदिवासी नृत्यों की श्रृंखला में गणगौर, फूलपाती और गड़बा (गरबा) नृत्य भी उल्लेखनीय है। गणगौर और फू लपाती नृत्य, राजस्थान की तरह प्रदेश के पश्चिमी अंचलों में आयोजित होते है। गणगौर सौभाग्यकांक्षिणी महिलाओं के द्वारा बड़ी श्रद्धा भावना से मनाया जाता है। चैर्त माह में नृत्य का आयोजन होता है। यह मूलत:गण अर्थात् शिवजी और गौर याने पार्वती के रूप में आदिपुरुष और आदिशक्ति की आराधना में आयोजित होता है। महिलाएँ किसी नदी, पनघट या सरोवर के किनारे जाकर मूर्तियों की पूजा करती है और असीम श्रद्धा के साथ गीत, नृत्य प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार मांगलिक अवसरों पर फूलपाती नृत्य के आयोजन किए जाते है शहर व गाँव की महिलाएँ एक स्थान पर एकर्त होती है और गीत गाती हुई नदी, तालाब या पनघट तक पहुंचती हैं। वहाँ पीतल के जल भरे कलश को कनेर, चम्पा, मोगरा फू ल के हारों और आम की पत्तियों से सजाते है, पूजन करते हैं, आपस में माथे पर गुलाल लगाते हैं और फिर ढोल की आवाज के साथ फूलपाती लेकर कन्याएँ घर आती है। फूलपाती के कलश को सिर पर लेकर नृत्य किया जाता है। ऐसा लगता है बसंत के स्वागतार्थ इस लोक नृत्य की शुरुआत हुई होगी।

मालवा अंचल में गुजरात के समान नवरात्रि के दिनों में गड़बा (गरबा) नृत्य का आयोजन होता है। कुंवार महीने में शुक्ल पक्ष की पड़वा (प्रतिपदा) की किशोरियों देवी-देवताओं के प्रति अपने अन्तर में निहित श्रद्धा और विश्वास का प्रतीक घट सजाती है। मिट्टी के घट पर स्वास्तिक आदि मांगलिक आकृतियां बनाई जाती है। इसमें जलता दीपक रखते है। इसे ही गड़ा घट (गरबा घट) कहते है। हर शाम को महिलाएं इकट्ठा होकर गरबा गीतों की गाती हुई नृत्य करती हैं।

राउक नृत्य- राउत नृत्य छत्तीसगढ़ की समस्त राउत (अहीर) जाति द्वारा किया जाता है। कहीं-कहीं इसे गहिरा या अहिरा नाच भी कहते है। राउत जाति अपने को युदवंशी मानती है और कृष्ण को आराध्य देव, गौधन इनकी प्रमुख सम्पत्ति होती है। वे गोधन की विशेष रूप से पूजा करते है। उनके गले में सौहर्द की माला पहनाते है और साथ ही आदि शक्ति तथा इष्ट देवी-देवताओं की पूजा करते है । इसे मातर कहते है। इस अवसर पर वे एकत्र होकर नृत्य करते हुए अपने प्रसिद्ध दोहों का गायन करते है । दोहे स्वरचित होते है । इनमें गौवंश की वृद्धि की कामना, देवी-देवताओं के माहात्मय का वर्णन तथा पारिवारिक और सामाजिक संदर्भों का यथार्थ वर्णन है। नृत्य के अवसर पर राउत परम्परा के अनुसार अपनी अनुपम साज-सज्जा करते हैं, पैरों में एक विशेष पैजेन, कमर में बड़े घुंघरु तथा घंटियां धारण करते है और पगड़ी में मयूर के पंख और हाथों में लाठी, ढाल आदि लेकर नृत्य प्रस्तुत करते है। वे नृत्य करते हुए घर-घर जाते हैं।

बैगा- मंडला, शहडोल, बिलासपुर, रायपुर के वन आच्छादित अंचलों में निवास करने वाले बैगा आदिवासी समूह अत्यन्त कलाप्रेमी है। कर्म के पुजारी बैगा कर्म को प्रधान मानकर श्रम देवता की आरधाना में करमा नृत्य करते है। यह उनका प्रमुख नृत्य है। इसमें विभिन्न आयु के पुरुष व स्त्रियाँ भाग लेती है। नृत्य के साथ जिन वाद्य यंत्रों का उपयोग होता है इनमें गंभीर ध्वनि वाले नगाड़ों का प्रमुख स्थान रहता है। किन्तु बैगा के करमा नृत्य से कुछ भिन्न होता है भुईया (भूमिया) का करमा नृत्य। भुईया के करम देवता उसे धन-धान्य, फल-फूल, कन्द मूल से सम्पन्न रखते हैं। अत: वह कार्तिक महीने में वन से करमा वृक्ष की डाल लाकर उसकी पूजा करता है, श्रद्धा सुमन अर्पित कर भाव-विभोर होकर नृत्य करता है और अपने प्रमुख देव करम देवता से सुखी और सम्पन्न जीवन के लिए आसीष मांगता है। इसके अतिरिक्त प्रदेश के एक और आदिवासी समूह, मंझवार (मांझी) वर्षा ऋतु के प्रारंभ और समापन पर क्रमश: आषाढ़ और कुंवार में करमा नृत्य प्रस्तुत कर अपनी इष्ट देवी-देवता की प्रार्थना करता है कि प्रति वर्ष खूब अच्छा पानी बरसे, जलाशय, नदी-नाले, पानी सेर लबालब भरे रहे और मछली का भरपूर उत्पादन हो, मंझवार मुख्यत: मछुए होते हैं जल में जनम लेते और पलने वाली मछली उनके जीवन से जुड़ी है। इसके भरपूर उत्पादन से उनकी समृद्धि जुड़ी है। अत: स्वाभाविक है कि वर्षा के भगवान की पूजा-आराधना नृत्य आयोजित करके करते है। बस्तर के आदिवासी समूह भतरा यदि शिकार के इष्ट देवता भाटीदेव की आराधना में नाचते है तो गदबा अपनी ठाकुरानी माता, आराध्य देवी ठाकुरनी माता, धरनी देवी आदि की पूजा कर नृत्य करते हैं। जिसमें चेचक, बड़ी माता आदि के प्रकोप से उनकी रक्षा हो, यही नहीं भरवान देवी और डाण्ड, देवी के सामने वे गुहार करते है कि न केवल बल्कि उनके पालतू पशु-पक्षी भी स्वस्थ्य व सुखी रहे।

सामाजिक नृत्यों का भी अपना एक अलग सिलसिला है। वे नृत्य विभिन्न जाति, जन-जाति समूहों के आर्थिक और सामाजिक जीवन से जुड़े है। कुछ नृत्य ऋतु विशेष के भी है। कुछ विशिष्ट उत्सवों पर आयोजित होते है। नृत्य की उत्पत्ति पर तो आदिम मानव की श्रम-साधना का स्पष्ट प्रभाव अब भी देखा जा सकता है। शिकार करने वाली, जनजातियाँ उस प्रकार के विशेष नृत्य करती हैं जिनमें शिकार पकड़े जाने की नकल है। बस्तर का सुप्रसिद्ध आकर्षक गौर नृत्य इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। आदिवासी समूह पहले आखेट भी सामूहिक रूप से करते थे। अब समय बदल गया है पर इनका वह आखेट कर्म यादगार और मनोरंजन केवल विभिन्न नृत्यों और गीतों भर में सुरक्षित रह गया है। इसी प्रकार लम्हाभार, कोडरीमार, चीतलमार आदि आदिवासी नृत्य भी इसी

श्रेणी में आते है। खेतिहार आदिवासी हरिजन समुदाय के नृत्यों में अन्न बोआई, रोपाई फसल कटाई आदि के चित्र मिलते है।

बहुत से नृत्य मनोरंजन और सामाजिक आयोजनों को श्रेष्ठता तथा भव्यवता प्रदान करने के लिए आयोजित होते है । मालवा का मटकी नाच इसी श्रेणी में आता है। छत्तीसगढ़ के कुछ आदिवासी समूहों में यह केवल पुरुषों द्वारा सम्पादित होता है सैला नृत्य की प्रथा अत्यन्त व्यापक रूप से प्रचलित है। यह गौड़ों का वीर नृत्य है। सैला नृत्य के कुछ प्रकार ऐसे भी हैं जो जाति विशेष से संबंधित है। ऐसे प्रकारों में चाचर सैला, बेगर सैला, झूमर सैला तथा पनिहारी सैला प्रमुख है। चांचर सैला गोंडों का कलात्मक नृत्य है। बैगर सैला बैगाओं का नृत्य है। पनिहारी-सैला में कुएं से जल भरती हुई पनिहारी-सैला में कुए से जल भरती हुए पनिहारिनों की रस्सी के कमजोर होने के व्याकुल भाव-भंगिमाओं का प्रदर्शन किया जाता है।

पेशेवर नृत्य में केवल उन आदिवासी या हरिजन समूहों के नृत्य सम्मिलित है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन नृत्यों की उदर पोषण के लिए प्रस्तुत करते आ रहे हैं। उदाहर्ण के लिए बंजरिया का नृत्य जाति, कला और वंश परम्परा के रूप में विकासत हुआ है। बुंदेलखण्ड की बेडनी नाचती गाती है। ब्याह-शादी के अवसर कंजरियां और बेड़नियाँ बुलाई जाती है। इनकी अपनी नृत्य कला है और कुछ विशेष वाद्य यंत्र भी उपयोग में लाये जाते है। इसी क्रम में बुंदेल खण्ड में राई नृत्य और गीत है। पेशेवर नर्तक युवक-युवतियां गांवों में घर-घर और मेला, मड़ई, सामाजिक उत्सव धार्मिक अनुष्ठान आदि अवसरों पर उपस्थित होकर नाचते है। ये नृत्य ताल और लय के आधार पर ऐसी तल्लीनता, लावण्य और भंगिमा का प्रदर्शन करते हैं कि दर्शकगण चकित रह जाते हैं।

जब आदिवासी समूह वृत्ताकर सज्ज होकर नृत्यमय होता है तब वह अलाव के इर्द-गिर्द नृत्यरत हुआ अलाव की परिक्रमा तो करता है साथ ही वह अपने स्थान पर भी घूमता चलता है। तब ऐसा लगता है मानो स्वयं वसुंधरा विविध रूप धर सूर्य की परिक्रमा लगा रही हो। या ऐसा लगता है मानों स्वयं प्रकृति नटी अनेक रूप धारण कर स्वयं नृत्यमय हो उठी हो। वैसी स्थिति में न तो ढोल वादक को स्वयं का भान रह पाता है और न ही नृत्यरत आदिवासी महिलाओं,पुरुषों को।

इसी प्रकार जब फूलपाती लेकर शीश पर पुष्प सज्जित कलश धारण किए आदिवासी बालिकाएँ एवं किशोरियां रंग-बिरंगी पोशाखें धारण कर नृत्य-गान करती बाग से गांव तक पहुँचकर पुन: नृत्यमय हो उठती है तब ऐसा आभासित होता है मानों समस्त बागों के विविध रंगों के पुष्पों ने प्राणवान होकर नृत्य करना शुरु कर दिया हो या फिर अनेक रंग-बिरंगी तितलियाँ मानव रूप धर नृत्यरत हो उठी हों।

ऐसा मन भावन नृत्योत्सव होता है आदिवासीजनों के उत्सावों का। इसका मूल कारण है आदिवासीजनों का अभावों को स्वभाव बना लेना। श्रम को अपनी जीवन साधना का सकारत्मक उत्सव बना लेना।

इन्हीं नृत्यों को देखकर लगता है हमारा आदिवासी समाज उत्सवधर्मी और जीवंत चरित्र का गौरव गरिमाशाली समाज है. इनके नृत्यों का परिमर्जन ही तो आगे चलकर शास्त्रीयता पाकर अनेक लोकधर्मी नृत्यों में परिवर्तन पाकर विश्ववंद्य हो गए।

ऐसे है हमारे ये आदिवासी जन और उनकी नृत्यगान तथा संगीत कला। ऐसे हैं हमारे सदा बहार ये आविदासी समाज एवं इनकी समस्त कलाएँ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिवासी समुदायों के गीत-संगीत और नृत्य मिलकर उनकी संस्कृति को जीवित और जीवंत बनाए रखते है। यदि हम यों कहें कि यदि हमें आदिवासी लोक संस्कृति को समझना और जानना तथा बूझना है तो हमें उनके गीतों में बसे भावों को समझना होगा। गीतों को अभिव्यक्ति करने के संगीत तथा संगीत माध्यमों को समझना होगा। तथा समझना होगा उनके नृत्यों की जीवंतता को।

गीत-संगीत और नृत्यों के जाने बिना आदिवासी लोक संस्कृति का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

यदि संक्षेप में कहें तो कहना होगा। श्रम, सहजता, सरलता, जीवंतता, गीत-संगीत और नृत्य ही आदिवासी जन संस्कृति की अनूठी और अदभूत पहचान है।

आदिवासी समुदायों के लोक नृत्य प्रकृति आधारित होते हैं। उन्होंने अपने नृत्य किसी पाठशाला में अथवा किसी नृत्य गुरु से नहीं सीखे। प्रकृति ही उनकी पाठशाला है। मयूर, कपोत, भालू, सिंह, वृक्ष आदि उन्हें नृत्य विद्या का प्रशिक्षण और प्रेरणा देते हैं। परंपरागत पीढ़ी दर पीढ़ी ये आदि नृत्य आदिवासी समुदायों में गतिमान रहते हैं। जिस प्रकार मयूर को कोई भी नृत्यगुरु नृत्यमय होना नहीं सिखाता। कपोत को कोई मटकना नहीं सिखाता। भालू को कोई नाचना नहीं सिखाता। सब कुछ प्रकृति प्रदत्त है।

नृत्यमय होकर केवल मानव ही नहीं सभी जीव एक अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव करते है। इस प्रकार गीत-संगीत और नृत्य की त्रयी आदिम संस्कृति को चरण-चरण पीढ़ी दर पीढ़ी प्रेरित करती चली आ रही है और इसी के भरोसे दिन भर के श्रम थकान और अवसाद से हमारा आदिवासी समाज जीवंतता प्राप्त करता चला आ रहा है।

सच तो यह है कि जितने भी शास्त्रीय नृत्य है सब जनजातीय लोक नृत्यों के परिष्कृत नृत्य ही है। अदभुत है आदिवासी जनजातीय लोक और इनके लोक नृत्यों की छैल छबीली मनोरम नृत्य छवियाँ।

लेखक: लोक साहित्य के अध्येता हैं।
संपर्क : निदेशक- मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान
मनासा जि. नीमच (म.प्र) मोबा. 9424041310

■

आलेख

कथक नृत्य के घराने

डॉ. आलोक श्रीवास
कथक नर्तक

नृत्य मानव अभिव्यक्ति का एक अभूतपूर्व साधन है। व्यक्ति जब अति प्रसन्न होता है तो उसके शरीर में उठ रही भावनाओं को वह अपने अंग, उपांग व प्रत्यंगों के माध्यम से प्रकट करने लगता हैं । यह उसका एक नैसर्गिक गुण है जो कि उसकी अभिव्यक्ति पर अंकुश लगाए बिना ही स्वत: प्रस्फुटित होने लगता है और वह उल्लास में अपनी भाव भंगिमाओं के माध्यम से अपनी प्रसन्नता को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करने लगता है । यह गुण केवल व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है । बल्कि प्रकृति में विचरण करने वाले सभी जीव-जंतु, पशु-पक्षी, नदियों ,वृक्षों और पुष्पों में भी समाहित है। ये सभी अपने आनंद को अपनी तरह से प्रकट करते हैं, जिससे यह संपूर्ण प्रकृति एक सौंदर्यपूर्ण चित्र की तरह उभरकर सामने आती है । यह समस्त क्रिया कुछ हद तक नृत्य का ही एक रूप है । नृत्य अंगों और भावों की एक सौन्दर्यमय भाषा है। नृत्य मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है। अगर हम नृत्य के इतिहास को पीछे पलट कर देखें तो इसका सीधा संबंध प्रागैतिहासिक काल, वैदिक काल से होते हुए रामायण काल , महाभारत काल , जैन एवं बौद्ध धर्म के अभ्युदय काल से होते हुए गुप्त काल ,राजपूत काल ,मुगल काल तक में इसके साक्ष्य प्राप्त होते हैं । प्रागैतिहासिक युग की गुफा और चट्टानों में चित्रित व उत्खनित स्त्री व पुरुष की नृत्य भंगिमाओं व आकृतियाँ जहाँ इस ओर संकेत करती है ,कि उस अंधकार युग में भी नृत्य मानव जीवन का अभिन्नंग था हिस्सा था, वहीं मोहन जोदड़ो - हड़प्पा की खुदाई में प्राप्त नृत्य करती हुई स्त्री व पुरुष की कांसे की प्रतिमाएँ इस ओर संकेत करती है कि तत्कालीन जनजीवन में नृत्य का एक महत्वपूर्ण स्थान था। वर्तमान में यह नृत्य प्रवाह है जो अनेकों चट्टानों को चीरता हुआ और अपने अंदर अनेकों संस्कृतियों को समाहित करता हुआ निरंतर गतिमान है इससे हम नृत्य की असाधारण यात्रा का अनुमान लगा सकते हैं ।

ब्रह्मा जी द्वारा रचित पंचम वेद - नाट्य वेद में भारतीय नृत्य कलाओं के सूत्र प्राप्त होते हैं। उसी के आधार पर भरत मुनि जी ने नाट्यशास्त्र की रचना कर उसमें नृत्यकला को विस्तृत रूप से समझाया है। भारत के अलग-अलग प्रांतों में शास्त्रीय आधार पर जिन तत्वों को ग्रहण किया गया उनमें शास्त्र के साथ-साथ लोक तत्वों के मिश्रण से कुछ नई शैलियों का उदय हुआ और उसी के आधार पर लोक में सर्वाधिक प्रचलित नृत्य विधाएँ भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के नाम से जानी जाने लगी जिनमें प्रमुख है भरतनाट्यम, कथकली, मोहिनीअट्टम, कथक, मणिपुरी, ओडिसी , कुचिपुड़ी सत्त्रिय।

भारतीय नृत्य कलाओं के आकाश में उत्तर भारत का एकमात्र शास्त्रीय नृत्य कथक ध्रुव तारे की तरह चमक रहा है ।'कथा कहे सो कथिक कहावे' अर्थात प्राचीन काल में कथक का आरंभ मंदिरों से माना जाता है ।

कमुख्यत : उस समय इसका स्वरूप कथा वाचक जैसा था जिसमें कथिक जाति के कलाकार अभिनय द्वारा समाज में धर्म व संस्कृति के प्रति चेतना जाग्रत करने के लिए पौराणिक कथाओं की प्रस्तुति करते थे, यह परंपरा आज भी पूर्ण रूप से उत्तर भारत के अन्य भागों में जीवित है। लगभग ईशा की 7वीं शताब्दी से 17 वीं शताब्दी के मध्य के जितने भी संगीत शास्त्र के ग्रंथ हैं उन सभी में कथको का उल्लेख कथावाचक ,देसी गायक तथा वैष्णव गायको के रूप में ही प्राप्त होता है। यह कलाकार कथा वाचन कर ही अपना जीवन यापन करते थे। अपनी कथा को और रोचक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए यह अपनी कथा के बीच-बीच में कुछ ताल की थाप के बोलो का प्रयोग कर उसे तिहाई जैसा रूप देकर के सम पर आते थे, और फिर अपनी कथा को आगे बढ़ाते थे। इस तरह से ताल का प्रयोग होने के कारण वह अपने पदघातो पर भी विशेष ध्यान दिया करते थे, इस प्रकार उत्तर भारत में प्रचलित शास्त्रीय तत्वों को समाहित कर इस नृत्य परंपरा का नाम उत्तर प्रदेश के इन्हीं सांगीतिक परिवारों की एक जाति के आधार पर जब कथक नृत्य पड़ गया तो उसके प्राचीन प्रमाणों की खोज की आवश्यकता नृत्य जगत में होने लगी इसी प्रयास में कथक, कथिक, कथिको, कहुब आदि कथक के पर्यायवाची शब्द प्रकाश में आने लगे। परंतु नृत्य जगत इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि कथक नृत्य अपनी संपूर्ण व्यक्तित्वबोध के

महाराजा चक्रधर सिंह

लिए 'कथक शब्द पर ही आधारित है।

दसवीं शताब्दी के बाद का काल भारत में इस्लामी सभ्यता के प्रवेश व मंदिरों में भक्ति भाव से कथा वाचक के द्वारा नृत्य प्रस्तुत करने वाले वैष्णव संप्रदाय वह कथिक समाज के लोगों के बिखराव का काल माना जाता है। जैसे ही पूरे उत्तर भारत में इस्लामी सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ उसका पूरा-पूरा असर भारतीय संगीत व नृत्य पर भी पड़ा जो नृत्य मंदिरों में आराधना के लिए किया जाता था अब वह दरबारों में मनोरंजन के लिए प्रस्तुत किया जाने लगा नमस्कार सलामी में तब्दील हो गया था। यह सत्य है कि इस युग में कथक नृत्य की प्रस्तुति में परिवर्तन हुआ और इसके पश्चात जैसे-जैसे अंग्रेजी सभ्यता भारत में प्रवेश कर रही थी और अंग्रेजी शासन काल मे ही जब दरबार और राज महल विलुप्त होते जा रहे थे। राज महलों एवम् दरबारों मे आश्रित कलाकारों पर इसका बहुत गहरा असर पड़ा और सभी कलाकार वहां से निकाल कर अपनी गुजर बसर के लिए अलग-अलग स्थानों पर कूच करने लगे और उनमें से अनेकों कलाकारों ने नृत्य व संगीत को ही अपना जीवन यापन का सहारा बनाया वहाँ जो भी नृत्य संगीत सिखाया करते थे उसे वह अपने नाम से ही प्रस्तुति करवाया करते थे ,इस तरह से अनेक स्थानों में गुरुजनों ने अपने नाम से ही अपनी नृत्य शैली को लोगों के बीच में स्थापित करने का कार्य शुरू कर दिया था,पर इससे कला जगत में एक बिखराव की संभावना नजर आने लगी जिससे कुछ गुरुजनों ने मिलकर कथक के विकास एवं प्रचार प्रसार के लिए एक निर्णय लिया। और यहां से कथक के एक नए अध्याय का सूत्रपात हुआ। जिसने कथक नृत्य को एक नई दिशा प्रदान की और निर्माण हुआ कथक के घरानों का अब गुरुजनों के नाम विशेष से नहीं बल्कि स्थान विशेष से इस नृत्य की पहचान होने लगी ।

घराने का शाब्दिक अर्थ कुटुंब या परिवार है जहां उस परिवार की रीति रिवाज और शैली का निर्वहन पीढ़ी दर पीढ़ी किया जाता आ रहा हो,ऐसा ही कुछ हमारी भारतीय कलाओं का भी है। जहां की गुरु में कला प्रदर्शन के विशिष्ट गुण हुआ करते हैं जो योग्य गुरु व योग्य शिष्य द्वारा एवम् वंश परंपरा के अंतर्गत एक दूसरे को हस्तांतरित किया जाता है। अर्थात विद्या व कला वही सीखी जा सकती है जहां उस कला को परंपरागत रूप से सिखाई जा रही हो । इसके लिए अभ्यास व समर्पण आवश्यक है आचार्य भरत ने आचार्य के अनेक गुणों में से एक गुण 'शिष्या निष्पादन' बताया है। और इसकी संभावनाएं बहुत हद तक घरानेदार शिक्षण प्रणाली में देखी जा सकती है।

कथक नृत्य में मुख्यत: चार घराने है-

लखनऊ घराना ,जयपुर घराना ,बनारस घराना और रायगढ़ घराना। इनमें से लखनऊ एवं जयपुर सर्वाधिक पुराने घराने है, इन्हीं घरानों से अन्य दो घरानों की उत्पति मानी जाती है।

जैसे बनारस घराने का जन्म जयपुर की शाखा (जानकी प्रसाद)जी से हुआ है। तथा रायगढ़ घराने का नृत्य लखनऊ और जयपुर घराने की सम्मिश्रित शैली के प्रयोगात्मक एवम् रायगढ़ के राजा चक्रधर सिंह जी की कल्पनाशीलता का मूर्त रूप है।

जिस पर हम आगे विस्तार से कहेंगे।

सर्वप्रथम हम कथक नृत्य के मूल घराने के रूप मे स्थापित लखनऊ घराने में प्रकाश डालेंगे जिसमें एक ही परिवार से निरंतर दस पीढ़ियों से इस कला के विकास एवम् संरक्षण में प्रयासरत है।

लखनऊ घराना : लखनऊ घराने का उद्गम स्थान इलाहाबाद जिले की हड़िया नमक तहसील के गांव चुलबुला से माना जाता है। यहां कथिक समाज के ९८९ परिवार निवास किया करते थे जो कि मंदिरों में गीत संगीत एवं नृत्य के साथ कथा वाचन के माध्यम से अपनी जीविका उपार्जन किया करते थे । लखनऊ घराने के मूल पुरुष ईश्वरी प्रसाद जी भी अपने परिवार के साथ वही निवास किया करते थे ईश्वरी प्रसाद जी का समय अत: साक्ष्य के आधार पर 1645 - 1650 माना जाता है । जो की भक्तिकालीन युग के आस पास का ही समय है उनका संपूर्ण परिवार ईश्वर उपासना में निरंतर लगा रहता था । जिनके बारे में कहा जाता है कि भगवान कृष्ण ने स्वयं ईश्वरी प्रसाद जी के स्वप्न में प्रकट होकर उन्हें नटवरी नृत्य के प्रचार प्रसार का आदेश दिया वह स्वयं भी एक अच्छे नर्तक थे ,भगवान कृष्ण के आदेश के अनुसार उन्होंने नृत्य कला को ही अपना जीवन बना लिया और इसे बृहद रूप दिया जिसे उन्होंने नटवरी नृत्य की संज्ञा दी इस दंतकथा पर ईश्वरी प्रसाद जी की नवमी पीढ़ी की वर्तमान युवा कथक नृत्यांगना पद्म विभूषित पंडित बिरजू महाराज जी की पौत्री और पंडित दीपक महाराज जी की सुपुत्री रागिनी महाराज जी का यह कहना है ,कि वह इसे भक्ति युग से जोड़ते हुए यह कहती हैं, कि जिस तरह से मीराबाई जी को कृष्ण जी के दर्शन हुए और वहां उनके प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास के साथ द्वारकाधीश में एकाकार हो गई , इस तरह से ईश्वरी प्रसाद जी की भी आस्था का यह अटूट संबंध कृष्ण की कथा से जुड़ता है ।

ईश्वरी प्रसाद जी के तीन पुत्र हुए अड़गू जी ,खड़गू जी, और तुलाराम जी उन्होंने नटवरी नृत्य की संपूर्ण शिक्षा अपने पुत्रों को दी उनकी मृत्यु 105 वर्ष की आयु में नाग पंचमी के दिन सर्प के काटने से हुई थी। माता-पिता की मृत्यु के बाद खड़गू जी ने नृत्य करना त्याग दिया और तुलाराम जी संयासी बन गए केवल अड़गू जी ने अपने तीनों पुत्रों प्रकाश जी दयाल जी और हरिलाल जी को नृत्य की संपूर्ण शिक्षा दी कुछ समय बाद खड़गूजी का भी देहांत हो गया अपने दोनों भाइयों को लेकर प्रकाश जी लखनऊ आए और वाजिद अली शाह के पिता नवाब आसिफ आसिफुदौला के दरबारी नर्तक बन गए । 'मआदुनुल मूसीकी' में लखनऊ के प्रकाश जी और उनके पुत्र दुर्गा प्रसाद जी ,ठाकुर प्रसाद जी तथा मानसिंह जी का नाम उत्तम एवं अलौकिक नृत्यकार के रूप में प्राप्त होता है। ठाकुर जी का उल्लेख नवाब वाजिद अली शाह के गुरु के रूप में

भी प्राप्त होता है । सही मायने में देखा जाए तो यह युग लखनऊ घराने की स्थापना प्रचार प्रसार और विकास का स्वर्ण युग माना जाता है। कथक नृत्य के इतिहास की बात नवाब वाजिद अली शाह के स्मरण से सदैव अधूरी रहेगी। उनका कथक जगत मे बहुत बड़ा योगदान है । उन्हें स्वयं भी नृत्य संगीत व साहित्य मे अत्यधिक रुचि थी, नवाब साहब ने अपने दरबार में अनेकों गुनी संगीतकारों नृत्यकारों व साहित्यकारों को न केवल आश्रय दिया बल्कि नृत्य और संगीत में नवाचार भी किया । दुर्गा प्रसाद जी के तीन पुत्र हुए बिंदादिन जी , कालका प्रसाद जी तथा भैरोंप्रसाद जी और यहीं से लखनऊ घराने को एक अन्य उपनाम से भी जाना जाने लगा जो नाम था 'कालका - बिंदादिन' घराना इन दोनों भाइयों की जोड़ी ने उस युग से अपने नृत्य से एक नया इतिहास रचा । बिंददिन जी का कथक जगत को बहुत बड़ा योगदान है। उन्होंने 1500 से भी अधिक ठुमरीयों और भजनों की रचना की है जो की कथक कलाकारों के लिए अमूल्य निधि की तरह है। बिंदादिन जी की कोई भी संतान नहीं थी कालका प्रसाद जी के तीन पुत्र हुए अच्छन महाराज जी, शंभू महाराज जी और लच्छू महाराज जी। अच्छा महाराज जी एक उच्च कोटि के नर्तक एवम् गुरु थे। वह रंग रूप व कदकाठी में तो उतने खूबसूरत नहीं थे लेकिन कहा जाता है कि जब वह नृत्य करते थे तो उनके नृत्य से जो आभा प्रकट होती थी उसे पूरा सभागार प्रकाशित हो उठता था। पंडित दीपक महाराज जी जो स्वयं एक कुशल कथक नर्तक है और लखनऊ घराने की आठवीं पीढ़ी से संबंध रखते हैं पद्मविभूषण पंडित बिरजू महाराज जी के सुपुत्र हैं वह अपने दादाजी को याद करते हुए एक किस्सा बताते हैं कि एक बार दरबार में अच्छन महाराज जी का नृत्य प्रस्तुत किया जाना था और फर्श पर पतली सी चांदनी बिछी हुई थी और उस चांदनी पर जब अच्छन महाराज जी लगभग 2 से 3 घंटे तक तीव्र गति के साथ नृत्य प्रस्तुति के पश्चात जब वहां से हटे तो उस चांदनी में एक भी सिलवट नहीं आई इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लखनऊ घराना का नृत्य मात्र नजाकत का नृत्य नहीं बल्कि तेजी तैयारी का नृत्य भी है यही कारण था कि जब उनके विषय में रामपुर दरबार के महाराज को पता चला तो उन्होंने स्वयं उन्हें अपने दरबार में बड़े आदर के साथ उन्हें अपना दरबारी नर्तक घोषित किया इसके बाद वह रायगढ़ रियासत में राजा चक्रधर सिंह जी के शासन काल मे काफी समय तक रहकर के अनेक शिष्याओं को तैयार किया शंभू महाराज जी दिल्ली में वह लच्छू महाराज जी मुंबई और फिर लखनऊ भातखंडे में रहकर के अनेक शिष्यों को तैयार किया लच्छू महाराज जी ने कई हिंदी फिल्मों में नृत्य संरचनाएं भी की है। जो की हिंदी फिल्मों मे शास्त्रीय नृत्य का प्रादुर्भाव भी कहा जा सकता है।

अच्छन महाराज जी की तीन पुत्रियां और एक पुत्र पद्म विभूषण पंडित बिरजू महाराज जी हुए शंभू महाराज जी की एक पुत्री और दो पुत्र कृष्ण मोहन महाराज जी और राममोहन महाराज जी है लच्छू महाराज जी की कोई संतान नहीं यह ईश्वरी प्रसाद जी की सातवीं पीढ़ी कहलाती है।

इसके पश्चात आठवीं पीढ़ी में पंडित बिरजू महाराज जी के सुपुत्र जयकिशन महाराज जी, दीपक महाराज जी एवं ममता महाराज जी एवं कृष्ण मोहन महाराज जी की सुपुत्री इप्शिता मिश्रा है। लखनऊ घराने की नवमी पीढ़ी में पंडित जयकिशन महाराज जी के सुपुत्र त्रिभुवन महाराज जी अनीता महाराज जी की सुपुत्री शिंजिनी कुलकर्णी जी और दीपक महाराज जी की दोनों सुपुत्रियां रागिनी महाराज एवं यशस्विनी महाराज जी लखनऊ घराने की बारीकियों को। संजोए रखने में सतत प्रयासरत है।

कथा जगत में पद्म विभूषण विभूषित पंडित बिरजू महाराज जी का नाम बहुत ही आदर के साथ लिया जाता है ,अगर यह कहा जाए कि वह कथक नृत्य के पर्याय है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी उनके अथक प्रयास से कथक आज अपनी पूर्ण शास्त्रीयता के साथ देश विदेश के संभ्रांत समाज में सिर उठाए खड़ा है। रागिनी महाराज अपने दादा पद्म भूषण विभूषित पंडित बिरजू महाराज जी को याद करते हुए बताती हैं कि दादा अक्सर उनसे कहा करते थे कि लखनऊ घराने का नृत्य परियों का नृत्य है। अत्यधिक गति से नृत्य करने के साथ-साथ मुख्य विलास खराब ना हो और दर्शकों को अंगों की आकृतियां स्पष्ट रूप से समझ आए ,नृत्य में बोलो की सुंदरता हो और खूबसूरती के साथ लय की काट छांट हो, लखनऊ घराने का नृत्य वंश परंपरा के साथ-साथ शिष्य परंपरा से भी अधिक विकसित हुआ है। लखनऊ घराने में एक से बढ़कर एक कलाकार हुए हैं जो इस घराने की शुद्धता को बरकरार रखते हुए अपनी नृत्य प्रस्तुति को उत्कृष्ट स्थान प्रदान कर रहे हैं जिनमें प्रमुख है। पद्म भूषण विभूषित उमा शर्मा जी, पद्मश्री प्रताप पवार जी, कुमकुम धर जी, शास्वती सेन जी, वास्वती मिश्रा जी, पद्मश्री विभूषित शोवना नारायण।

जयपुर घराना :- राजस्थान का नाम लेते ही हमें भारत का शौर्यपूर्ण इतिहास याद आने लगता है । यहां एक से एक शूरवीरों ने जन्म लिया जिन्होंने भारत की स्मिता को बचाने के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया है। राजस्थान भारत के अति प्राचीन राज्यों में से एक है वहां की मिट्टी और वहां की हर एक-एक दीवार स्वयं ही अपना इतिहास गाती है। वहां के राजा महाराजाओं की रगों में , जहां शौर्य का लहू बहा करता था वहीं उनके हृदय को संगीत और नृत्य के प्रति आस्था की तरंगें भी झंकृत किया करती थीं, वहां के राजा महाराजा उच्च कोटि के संगीत के जानकार व संरक्षक भी थे ,यही कारण है कि वह अपने युद्ध कौशल में विचलित नहीं हुआ करते थे शायद संगीत उनके मस्तिष्क को संतुलित करने में

सहायक हुआ करती थी अपने युद्ध के दौरान भी वह नृत्य संगीत के उच्च कोटि के कलाकारों को अपने साथ ले जाया करते थे नृत्य और संगीत की परंपरा प्राचीन काल से ही राजस्थान की भूमि में थिरक रही है सवाई जयसिंह, सवाई प्रताप सिंह एवं सवाई राम सिंह आदि राजाओं के शासनकाल में जयपुर दरबार में कथक नर्तकों का जमघट लगा रहता था। गायन वादन नृत्य एवं अन्य ललित कलाओं के उच्च कोटि के कलाकार भी जयपुर दरबार के गुणीजन खाने में सदा रहा करते थे लखनऊ की ही तरह जयपुर घराने का भी इस नृत्य के विकास में काफी योगदान रहा है ।

प्रोफेसर डॉक्टर मांडवी सिंह जी की पुस्तक के अनुसार कत्थक परंपरा के 'अनुसार राजा सवाई प्रताप सिंह जी ने 18 वीं शताब्दी में संगीत कला पर आधारित एक अमूल्य ग्रंथ की रचना की जिससे 'राधा गोविंद संगीत सार' के नाम से बाद में प्रकाशित किया गया यह ग्रंथ सारंग देव के संगीत रत्नाकर पर आधारित है इस ग्रंथ में नर्तन पर एक अध्याय है जिसमें चर्चित नृत्य संबंधी विषय संस्कृत की अन्य ग्रंथ में उल्लेखित सामग्री से भिन्न है यह कथक नृत्य तथा हिंदुस्तानी संगीत से अधिक निकट प्रतीत होता है आज जिसे हम 'सम' कहते हैं उसे राधा गोविंद संगीत सार में 'मान' कहा जाता है तथा 'ततकार' को 'चचकार' की संख्या दी गई है' ।

जयपुर में अनेक वंश परंपरा है। परंतु मुख्य रूप से भानू जी के वंशज एवं गिरधारी लाल जी के वंश का उल्लेख किए बिना जयपुर घराने का श्री गणेश करना अनुचित होगा। क्योंकि इन पीढ़ियों में कुछ ऐसे नर्तक हुए जिन्होंने सारे देश में जयपुर घराने का प्रचार प्रसार करके यश प्राप्त किया और उनके वंशज अभी भी अपनी परंपराओं को निभाएं हुए हैं। इस घराने का मूल आधार भानू जी थे जो शंकर भगवान को अपना आराध्य मानते थे कहा जाता है कि उन्होंने किसी महात्मा से शिव तांडव नृत्य की शिक्षा भी ली थी । इनकी वंश परंपरा में एक से एक दिग्गज कलाकार हुए जिनमें से प्रमुख है मालू जी, कानू जी गिरधारी जी, दूल्हा जी, हरि प्रसाद, हनुमान प्रसाद, मोहनलाल, चिरंजी लाल, नारायण प्रसाद, शंकर लाल जी जयलाल जी सुंदर प्रसाद जी और मालू लाल जी रामगोपाल जी,इनमें से हरिप्रसाद जी और हनुमान प्रसाद जी ने कथक जगत में अपना सिक्का मनवाया और देवपरि की जोड़ी के नाम से प्रसिद्ध हुए । इन सभी गुरुजनों ने अनेकों वर्षों तक जयपुर घराने की शास्त्रीयता को बचाए रखे हुए अनेक शिष्यों को तैयार किया इनमें से नारायण प्रसाद जी जिनका जन्म 1908 में हुआ यह बहुत ही कुशल नर्तक व गुरु थे राजा चक्रधर सिंह जी के शासनकाल में रायगढ़ में यह गणेश उत्सव के समय अपनी प्रस्तुति के लिए गए थे। इनका नृत्य देखकर के राजा चक्रधर सिंह इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने तुरंत इन्हें अपने दरबार का दरबारी नर्तक घोषित कर दिया। नारायण प्रसाद जी एक कुशल रचनाकार भी थे उन्होंने अनेकों कविताओं की रचना की है। उनके दो पुत्र चरण गिरधर 'चांद' और तेज प्रकाश तुलसी। चरण गिरधर 'चांद' कुशल नर्तक एवं गुरु है। जय लाल महाराज जी जो कि राजा चक्रधर सिंह जी के शासनकाल में रायगढ़ में रहे उस समय अच्छन महाराज जी ,लच्छू महाराज जी जैसे दिग्गज कलाकार भी रायगढ़ में उनके साथ थे। जयपुर घराने के एक और महान गुरु कुंदन लाल गंगा जी का भी स्मरण करना अति आवश्यक है । दिल्ली कथक केंद्र में रहकर के उन्होंने अनेकों शिष्याओं को तैयार किया जिनमें प्रमुख है उर्मिला नागर जी, प्रेरणा श्रीमाली जी,पंडित राजेंद्र गंगानी जी जो उनके सुपुत्र भी है साथ ही इस घराने के और भी प्रमुख नर्तक एवं नर्तकी हुए है, जो इस प्रकार है रोहिणी भाटे जी दुर्गा लाल जी, देवी लाल जी, राजकुमार चावड़ा जी, गीतांजलि लाल जी, अभिमन्यु लाला जी विद्या लाल जी, उमा डोगरा जी, हरीश गंगानी जी है। वर्तमान में इस घराने के हस्ताक्षर पंडित राजेंद्र गंगानी जी है जो कि अपने कुशल नर्तन व नेतृत्व से जयपुर घराने के अनेक शिष्य तैयार कर रहे हैं ।

इस घराने की विशेषता है भक्ति पूर्ण नृत्य। अपनी ऊर्जापूर्ण नृत्य के लिए यह सदा ही कला जगत में अधिक प्रिय रहा है,। लमछड़ परनो, कवित्य, लयकारी का अत्यधिक प्रयोग इस घराने में दिखाई देता है।

बनारस घराना :- बनारस भारत की अति प्राचीन नगरी है जिसे हम वाराणसी भी कहते हैं। मान्यता के अनुसार भगवान शिव ने अपने त्रिशूल पर इस नगरी को धारण किया हुआ है, गंगा की निर्मल धारा के तट पर बसी काशी यहां विश्वनाथ का मंदिर है जो की 12 ज्योतिर्लिंगों में एक है, यह एक पौराणिक, आध्यात्मिक एवम् सांस्कृतिक नगरी है। भगवान शिव नृत्य के आदि देव है तो उनकी नगरी में नृत्य व संगीत का होना तो स्वाभाविक सी बात है ।

बनारस में कथक नृत्य के मूल पुरुष जानकी प्रसाद जी माने जाते हैं । जानकी प्रसाद जी राजस्थान के मूल निवासी थे । पर उनका मन भक्ति व अध्यात्म में लगे रहने के कारण उन्होंने बनारस को अपनी साधना नगरी बनाई वहीं रहकर के उन्होंने अपनी नृत्य शैली का प्रचार प्रसार किया उन्होंने अपने जीवन काल में सैकड़ो शिष्य तैयार किए जो उनकी नृत्य शैली को लेकर के धीरे-धीरे सारे देश में फैल गए बनारस घराने के जानकी प्रसाद जी बचपन से ही अपनी कला व भक्ति के प्रति बहुत निष्ठावान थे जब वह 8 वर्ष के थे तब बीकानेर दरबार में अपनी नृत्य की प्रस्तुति उन्होंने खड़ी तलवार में की थी तभी से जानकी प्रसाद जी को महाराज बीकानेर अत्यधिक प्यार करने लगे थे। जयपुर घराने से पूर्व राजस्थान में श्यामल दास घराने के नाम से एक अलग घराना विख्यात था जो बाद में दो भागों में बट गया एक जयपुर घराना कहलाया और दूसरा जानकी प्रसाद घराना जहां जयपुर घराने का विकास राजस्थान में हो रहा

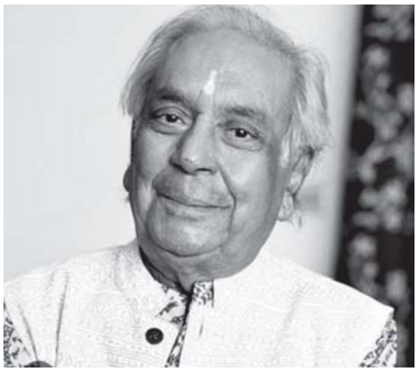

था वहीं जानकी प्रसाद जी का घराना शिव की नगरी बनारस में पल्लवित हो रहा था। जानकी प्रसाद के तीन प्रमुख शिष्य थे चुन्नीलाल दूल्हा राम और गनेशीलाल जी जानकी प्रसाद जी बहुत ही प्रतिभावान कलाकार एवं नृत्य गुरु थे। उनके नृत्य की प्रमुख विशेषता यह थी कि उसमें नृत्य के साथ केवल नृत्य के बोल ही प्रयुक्त किए जाते है, तबला पखावज के नहीं अंग की तैयारी के साथ स्पष्ट सौंदर्य और लालित्य की और इस घराने का विशेष झुकाव रहता है गति मुद्रा और अंग में भी लखनऊ तथा जयपुर घराने से बनारस घराना अति भिन्न है। इस घराने की एक और प्रमुख नर्तक हुए कृष्ण कुमार जी भारत सरकार द्वारा पद्मश्री की उपाधि प्राप्त करने वाले कृष्ण कुमार जी ने इस घराने के प्रचार प्रसार में अत्यधिक कार्य किया है उनके तीनों ही पुत्र अशोक कुमार,विजय कुमार, एवम् चंदन कुमार है कथक नृत्य के कुशल नर्तक रहे कृष्ण कुमार जी के प्रमुख शिष्य जितेंद्र महाराज हुए जितेंद्र महाराज की दो प्रमुख शिष्याएं नलिनी अस्थाना जी और कमलनी अस्थाना जी है जिन्हें भारत सरकार ने कथक नृत्य के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य के लिए पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया है। वर्तमान में कथक नृत्य की अग्रिम पंक्ति की कलाकार है।

बनारस घराने की कथक नृत्य की बात अधूरी रह जाएगी अगर हम गुरु सुखदेव महाराज जी का स्मरण न करें पंडित सुखदेव महाराज जी का जन्म भगवान शिव की नगरी काशी में ब्राह्मण परिवार में सन् 1888 में श्री रामदास जी मिश्रा के यहां हुआ, सुखदेव महाराज संस्कृत भाषा की तथा गायन के विद्वान थे उन्होंने भारत के बड़े-बड़े नगरों में अपनी कला का प्रचार करते हुए अनेक सम्मान तथा पुरस्कार प्राप्त किए थे वह अपने समय के उच्च कोटि के गुनी गायक तथा कलाविद् माने जाते थे। सुखदेव महाराज जी 18 वर्ष की अल्प आयु में ही अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए नेपाल महाराज के दरबार मे गए थे ,अपनी कला कौशल से उन्होंने महाराज को इतना प्रभावित किया कि नेपाल के महाराजा ने उन्हें अपने दरबार में मुख्य गायक के रूप में स्थान प्रदान किया था।

श्री सुखदेव महाराज जी ने एक बार लखनऊ घराने के प्रसिद्ध आचार्य श्री बिंदादिन महाराज का नेपाल में नृत्य देखा और उनकी कला से वह इतना प्रभावित हुए की उन्होंने तभी मन में यह विचार कर लिया कि वह कथक नृत्य का भी गहन अध्ययन करेंगे उन दिनों सुखदेव महाराज नेपाल में अपनी कला के माध्यम से ख्याति प्राप्त कर चुके थे।और उन्हें नेपाल मे बहुत आदर व सम्मान प्राप्त होता था उन्हीं दिनों उन्होंने नेपाल महाराज के राजगुरु की पुत्री महलों देवी से विवाह किया ,विवाह के कुछ दिनों के बाद वह बनारस लौट आए और यहां कला का प्रचार करना लगे । सुखदेव महाराज चुकी संस्कृत के प्रकांड पंडित थे ,इसलिए उनका रुझान नृत्य और संगीत के शास्त्र की तरफ भी पूर्ण रूप से था और उन्होंने भरत मुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र का अध्ययन कर उसे अपने नृत्य में उतरने की कोशिश की इसलिए नाट्यशास्त्र के तत्वों का प्रयोग बनारस घराने में दिखाई देता है। सुखदेव महाराज जी की संतानों में अलकनंदा देवी ,तारा देवी सितारा देवी, दुर्गा प्रसाद पांडे चतुर्भुज मिश्रा जी जिन्हें हम लोग चौबे महाराज जी के नाम से भी जानते हैं । उन्होंने समाज की परवाह किए बिना अपनी पुत्रियों अलकनंदा जी ,तारा देवी और सितारा देवी को भी अपने पुत्रों की तरह नृत्य की शिक्षा दी इस बात का बहिष्कार पूरे समाज में हुआ पर उन्होंने उसकी परवाह किए बिना उन्हें संपूर्ण नृत्य की शिक्षा दी और सभी ने कथक जगत में इतिहास रचा सितारा देवी को तो स्वयं रविंद्र नाथ टैगोर ने 'कथक क्वीन' की ख्याति से अलंकृत किया था सितारा देवी अपनी बाल्यावस्था से ही मुंबई में निवास कर कई फिल्मों में अपनी कला से लोगों में स्नेह और सम्मान प्राप्त किया। लेकिन बहुत समय तक उन्हें फिल्मी दुनिया रास नहीं आई और वह वापस अपनी कथक जगत में लौट आई और संपूर्ण जीवन कथक की सेवा में लगा दिया , बनारस घराने के एक और प्रमुख नर्तक गोपी कृष्ण जी है जो की तारादेवी जी के सुपुत्र है उन्होंने कथक को फिल्मी दुनिया में एक सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया वि शांताराम जी ने उन्हें लेकर 'झनक झनक पायल' बाजे फिल्म का निर्माण किया जिसमें चौबे महाराज जी के साथ उनकी जुगलबंदी को बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई गोपी कृष्ण जी ने अनेक फिल्मों में नृत्य निर्देशन का भी कार्य किया और वहां उन्होंने बनारस घराने के बहुत अच्छे से अच्छे शागिर्द तैयार कर घराने का नाम रोशन किया। वर्तमान में इस परिवार से बहुत ही युवा कथक नर्तक विशाल कृष्णा जी अपने मनमोहक नृत्य से जनमानस को नृत्य के प्रति आकर्षित कर रहे हैं। वर्तमान में बनारस घराने के दो प्रमुख नर्तक एवम् गुरु माता प्रसाद मिश्रा जी और रवि शंकर मिश्रा जी की जोड़ी बनारस घराने की मौलिकता को दर्शाती है। माता प्रसाद जी के सुपुत्र रूद्र शंकर मिश्रा जी युवा पीढ़ी को बनारस घराने की ओर आकर्षित कर रहे हैं साथ ही सौरव गौरव मिश्रा जी की जोड़ी भी बनारस घराने को आगे ले जाने में अपना योगदान दे रही है। अपनी विशिष्ट नृत्य शैली के कारण आज बनारस घराना संपूर्ण नृत्य जगत में एक लोकप्रिय घराने के रूप में जाना जाता है।

रायगढ़ घराना:-जयपुर के सवाई महाराज प्रताप सिंह ,लखनऊ के वाजिद अली शाह के बाद कथक नृत्य के विकास एवम् उत्थान में रायगढ़ महाराजा चक्रधर सिंह का नाम कभी नहीं बुलाया जा सकता।

राजा भूपदेव सिंह के घर मे उस समय उत्साह एवं उल्लास का माहौल बना जब भाद्र कृष्ण पक्ष चतुर्थी संवत् 1962 (1904 ई.) को कला एवं साहित्य ने राजा चक्रधर सिंह जी के रूप मे जन्म लिया। राजा भूपदेव सिंह जी उन्हे प्यार से नन्हें महाराज कहकर पुकारा करते थे। अपने

द्वितीय पुत्र रत्न नन्हें महाराज के आगमन की खुशी में राजा भूपदेव सिंह जी ने रायगढ़ में गणेश मेले का आरंभ किया जो की अब यह चक्रधर सम्हारोह के रूप मे भारत का एक प्रतिष्ठि महोत्सव बन चुका है। प्रतिवर्ष ग्यारह दिवसीय इस समारोह में संगीत एवं साहित्य के बड़े से बड़े कलाकार अपनी प्रस्तुति देने के लिए उत्साहित एवं ललायित रहते हैं।

राजा चक्रधर सिंह जी रायगढ़ में अपनी स्कूली शिक्षा पूर्ण करके रायपुर के राजकुमार कॉलेज में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उनकी देख-रेख के लिए रायगढ़ सियासत के नीजि सचिव ठाकुर लक्ष्मण जी को नियुक्त किया गया था। लक्ष्मण सिंह जी संगीत के कुशल जानकार होने के साथ-साथ तबला व पखावज के कुशल वादक भी थे। राजा चक्रधर सिंह जी अपनी कॉलेज की शिक्षा के दौरान लक्ष्मण सिंह जी से तबले व पखावज की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, चूंकि संगीत कला उनको विरासत में ही प्राप्त हुई थी। उनके पितामाह राजा घनश्याम सिंह, पिता राजा भूपदेव सिंह, और अग्रज राजा नटवर सिंह संगीत के पारखी विद्वान थे। राजा चक्रधर सिंह जी के चाचा द्वय-पिलाल जी तबले के और नारायण सिंह पखावज के कुशल जानकार थे ,इन्हीं के सानिध्य में राजा साहब की संगीत की शिक्षा अपने उच्च स्तर की ओर अग्रसर हो रही थी।

और इसी तरह से राजा चक्रधर सिंह जी का रुझान संगीत की ओर बढ़ता चला जा रहा था। उनके बड़े भाई नटवर सिंह जी के देहांत के पश्चात सन् 1924 ई. को विधिवत रूप से राजा चक्रधर सिंह जी का राज्याभिषेक किया गया। परिवार की परंपरा का निर्वाहन करते हुए रायगढ़ के मोती महल में कला साधकों का निरंतर आना-जाना लगा रहता था। कई गुणिजन एवं विद्वान संगीतज्ञ बहुत दिनों तक रायगढ़ दरबार में रह कर कला एवं साहित्य के उत्थान एवं विकास के लिए निरंतर कार्य कर रहे थे। कला अनुरागी राजा चक्रधर सिंह जी कुशल शासक होने के साथ-साथ कला के संरक्षण व विकास के लिए चिंतित रहा करते थे। वह ऐसे कुशल हस्थ तलाश रहे थे, जिन्हें वह अपनी कला-धरोहर को सौंप सकें। इसी बीच प्रतिवर्षानुसार रायगढ़ में गणेश मेले में, छत्तीसगढ़ के प्रचलित लोक नृत्य गम्मत के नृत्य समूह में आए हुए एक कुशल नर्तक पर उनकी नजर पड़ी, राजा चक्रधर सिंह बहुत ध्यान से उस नर्तक की नृत्य चपलता, भाव भंगिमा व पद संचालन को देखकर अचंभित रह गए और तभी उन्होंने विचार किया की यह नर्तक ही हमारी कला-धरोहर को आगे बढ़ाने में सहायक योग्य है। यह लोक नर्तक आगे चल कर कथक नृत्य में कार्तिक राम के नाम से विख्यात हुए। कार्तिक राम जी के साथ-साथ ही उसी समय रायगढ़ दरबार में कल्याण दास महंत जी, बर्मन लाल जी, और फिरतू दास जी जैसे कुशल नर्तक शामिल हुए और राजा चक्रधर सिंह जी ने इन सभी नर्तकों को उस समय के ख्याति प्राप्त कला मनिषियों से संगीत एवं नृत्य की शिक्षा दिलाना प्रारंभ किया। जिसमें उस समय के ख्याति प्राप्त गुरुओं में-

कथक नृत्य मे स्वर्गीय पंडित शिवनारायण (जयपुर), पंडित जयलाल महाराज (जयपुर), स्वर्गीय पंडित शिवलाल, स्वर्गीय पंडित नारायण प्रसाद ,स्वर्गीय पंडित सुंदरलाल, स्वर्गीय पंडित मोहनलाल, स्वर्गीय, पंडित सीताराम, पंडित अच्छन महाराज, स्वर्गीय पंडित शंभू महाराज, स्वर्गीय पंडित लच्छू महाराज, पंडित सुखदेव महाराज, अलकनंदा देवी।

गायन में उस्ताद हाजी मुहम्मद, पंडित अनाथ बोस, पंडित नन्हें बाबू, प्यारे साहब,धन्नू मिश्र, उस्ताद नसीर खां, पंडित बद्री प्रसाद, भाई लाल खां, पंडित नारायण, पंडित बड़े रामदास जी,तबला उस्ताद अहमद जान थिरकवा, उस्ताद कादर बख्श, उस्ताद गुलाम हुसैन, उस्ताद हबीबुद्दीन, उस्ताद करामतुउल्ला खां, पंडित कंठे महाराज उस्ताद मुनीर खां, उस्ताद सादिक हुसैन, हरनारायण पंडित। जैसे विद्वान गुरुजनों के सानिध्य में कथक नृत्य की एक नई शैली का पल्लवन हो रहा था। जो वर्तमान समय में रायगढ़ घराने के नाम से विश्व विख्यात है।

राजा चक्रधर सिंह स्वयं भी रचनाशील व्यक्ति थे। इसलिए उन्होंने इन विद्वान गुरुजनों से स्वयं एवं अपने विद्यार्थियों को शिक्षित कर, अपनी एक नई शैली का निर्माण किया प्रकृति प्रिय राजा ने प्रकृति में विचरण करने वाले जीव, जंतु, प्राणियों, बादलों, बिजलियों, वनों के साथ-साथ नायक प्रधान, नायिका प्रधान, आभूषण प्रधान, तांडव प्रधान, लस्य प्रधान, शब्द प्रधान छंद प्रधान, मंत्र-तंत्र यंत्र प्रधान, जाति प्रधान, लय प्रधान, जोड़ा प्रधान, भाव प्रधान आदि अनेक रचनाएँ की हैं। राजा चक्रधर सिंह द्वारा रचित बंदिशों का मूल आधार ध्वन्यातमक,चित्रात्मक, काव्यात्मक और लयात्मक हुआ करता था। रायगढ़ घराने की बंदिशों को बोलने से ही उसकी ध्वनि से उत्पन्न लय में एक काव्यात्मक चित्र अंकित हो जाता है।

सही मायने में कहा जाए तो रायगढ़ घराना राजा चक्रधर सिंह द्वारा प्रणीत बोल बंदिशें का नर्तन है। ध्वनि विज्ञान को भाषा का मूल तत्व मानते हुए राजा चक्रधर सिंह जी ने अपनी बंदिशों का निर्माण कुछ इस तरह से किया है कि हर बंदिश अपनी कहानी स्वयं कहती है। इसी तरह रायगढ़ घराना अपनी एक और विशिष्ट बात के लिए कथक के अन्य घरानों से अपने आपको अलग करता है कि इस घराने में हर एक बंदिश का उसके स्वरूप को ध्यान में रखते हुए नामकरण किया गया है। ताकि उस बंदिश को एक पहचान के रूप में जाना जा सके जैसे दलबादल,

कड़क बिजली, चमक बिजली, दावानल, गजविलास, मत्स्यरंगावली, नागरंग, मत्तमयूर, रक्तपुष्पपी, वल्लभ, पुरंदर, भूतनाथ रसपंच्चानन, इंद्रजाल इत्यादि।

जैसे दलबादल इसके नाम से ही स्पष्ट है कि किस तरह से बादलों का समूह, आकाश में विचरता हुए अपनी गर्जना के साथ बिजलियों से दमकता हुआ प्रतीत होता है जो कि जन मानस को आनंदित भी करता है और भयभीत भी करता है। इस भाव को इस बंदिश के पणंत एवं नर्तन में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वहीं उनके द्वारा रचित बंदिश मत्स्यरंगावली जिसमें किस तरह से एक तालाब में मछलियों को तैरता हुआ देख तट के किनारे एक वृक्ष के ऊपर किलकिला पक्षी घात लगाए बैठा है और वह कितनी फुर्ती से मछली को एक झटके में उठाकर पेड़ के ऊपर ले जाता है और उसे पूर्णता खाकर निगल लेता है, इस बंदिश की जिस तरह से पणंत की जाती हैं एवं इसकी प्रस्तुति से ही दर्शकों के समक्ष चित्र उभर जाता है। इसी तरह से एक नायिका किस तरह से कुएँ में पानी भरने के बहाने अपने नायक से मिलने के लिए जाती है, वहाँ बादलों के घिर आने के साथ बिजली का चमकना उसे अपने प्रियतम से मिलने की याद दिलाता है यह पूर्ण चित्रण अमृत्तध्वनि बंदिश में आप देख सकते हैं। एक ही बंदिश में उन्होंने पूर्ण नव रस का जिस तरह से सुंदर बखान किया है, वहाँ अपने आप में ही एक अनूठा प्रयास है। प्रकृति को मानव जीवन का आधार बताया गया है, रायगढ़ घराने की बंदिशों में प्रकृति और मानव साथ-साथ चलते हैं और नृत्य में एकाकार हो जाते हैं। प्रकृति से ही मानव बहुत कुछ सिखाता है और वह प्रकृति को ही वापस लौटकर के इस धरती से मुक्त हो जाता है। यह रायगढ़ घराने की बंदिशें में पूर्ण रूप से देखा जा सकता है।

प्रयोग के साथ-साथ ही रायगढ़ में शास्त्र पर भी पूर्ण रूपेण कार्य हुआ है राजा चक्रधर सिंह द्वारा रचित चार मुख्य ग्रंथ जो इस घराने को और अधिक विशिष्ट बनाते हैं जो इस प्रकार हैं- नर्तनसर्वस्व, तालतोयनिधि, राग रत्न मंजूषा तथा मुराजपर्ण पुष्पकर।

1.नर्तनसर्वस्व: इस ग्रंथ में नृत्य के संपूर्ण अंगों का विस्तार से वर्णन किया गया है। पंडित कार्तिक राम जी अपनी पुस्तक 'रायगढ़ में कथक' में लिखते हैं कि आधुनिक युग नर्तनसर्वस्व कथक नृत्य का पहला शास्त्रीय और प्रामाणिक ग्रंथ है, इसमें नृत्य के संपूर्ण अंगों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ के आधार पर कथक रायगढ़ घराने का अस्तित्व भी कायम है। इसके निर्माण में पंडित जय लाल महाराज जी एवम् पंडित अच्छन महाराज जी जैसे दिग्गज कथक आचार्यों का सहयोग उल्लेखनीय है ,यह ग्रंथ लगभग 6 किलो वजन का है।

2.तालतोयनिधि : यह ग्रंथ अपने आप में एक अनूठा ग्रंथ है और अमूल्य ग्रंथ भी है, इसमें 1 मात्रा से लेकर के 380 मात्रा तक के तालों का चक्र सहित वर्णन है यह बहुत ही आकर्षक और लुभावना ग्रंथ है ताल की बारीकियों को बहुत सूक्ष्म तरह से इसमें दर्शाया गया है, इस ग्रंथ का वजन 32 किलो का है।

3.राग रत्न मंजूषा : जैसा कि इसमें स्पष्ट है कि इसमें भारतीय शास्त्रीय संगीत की विभिन्न राग रंगीनियों के विषय में विस्तार से लिखा गया है, इसमें लगभग 1200 राग रंगीनियों का वर्णन मिलता है, इसमें सभी रागों को बहुत ही सुंदर तरीके से चित्र के साथ प्रस्तुत किया गया है।

4.मुराजपर्ण पुष्पकर: इस ग्रंथ में कथक नृत्य के बोल बंदिशों, अंग, प्रत्यंग, उपांग, भाव आदि को बहुत ही खूबसूरत तरीके चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया हैं कथक नृत्य के कलाकार ज्यादातर इसी ग्रंथ की परण को अपने नृत्य में शामिल करते हैं।

वर्तमान में रायगढ़ घराने के सबसे वरिष्ठ नृत्य गुरु एवं रायगढ़ दरबार के अंतिम दरबारी नर्तक पदमश्री पंडित रामलाल जी जो कि अपनी 89 वर्ष की आयु में भी रायगढ़ घराने के प्रचार प्रसार में संलग्न हैं। आप पंडित कार्तिक राम जी के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपने अपने पिता के साथ मिलकर के मध्य प्रदेश सरकार द्वारा संचालित चक्रधर नृत्य केंद्र भोपाल में अनेक विद्यार्थियों को तैयार किया है। वर्तमान में रायगढ़ घराने के प्रमुख कलाकार जो कि इस घराने की शास्त्रीयता एवं शुद्धता को बरकरार रखते हुए कार्य कर रहे हैं उनमें से प्रमुख है, डॉ भगवान दास मानिक जी, सुनील वैष्णव जी, बसंती वैष्णव जी, भूपेंद्र बरेठ जी, डॉक्टर सुचित्रा हरमलकर जी, डॉ विजया शर्मा जी, अल्पना बाजपेई जी, मोहिनी मोघे जी, अनुराधा सिंह जी, उपासना उपाध्याय जी, प्रफुल्ल गहलोत जी, मोनिका बोहरे जी, डॉ मयूर पंडित जी, डॉ राखी दुबे जी, डॉ सृष्टि गुप्ता जी, डॉ आलोक श्रीवास जी, डॉली पेरिया श्रीवास जी, डॉ मानव महंत जी, सचि श्रीवास्तव जी, सुरभि परासर जी ज्योतिश्री वैष्णव जी हैं।

अंत में मैं रायगढ़ घराने की वरिष्ठ नृत्यांगना और इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ की पूर्व प्रोफेसर ज्योति बक्शी जी के शब्दों को स्मरण करता हूं कि रायगढ़ की बंदिशों द्वारा राजा चक्रधर सिंह 'नृत पक्ष' को ऐसा अप्रतिम सौंदर्ययुक्त अंतरिक्ष दिया है जहां लय वह ध्वनियों के श्रव्य सौंदर्य में प्रकृति की नैसर्गिक गुनगुनाहट है ,वह दृश्य सौंदर्य 'भावहीन' (नृत पक्ष)कहे जाने पर भी प्रकृति के पंचतत्वों से नि:सृत रूप, रस, गंध, शब्द व स्पर्श से संपादित है।

अगर हम यहां देखें की कथक नृत्य घरानों के स्तंभ पर खड़ा है तो आश्चर्य नहीं होगा क्योंकि घरानों की मौलिकता सौंदर्यता और विशिष्टता को बनाए रखते हुए कथक नृत्य और भी समृद्ध और विकसित हुआ है।

लेखक : वरिष्ठ युवा कथक कलाकार हैं।

नृत्य, आदिनृत्य और लोक नृत्य

वसंत निरगुणे

नृत्य मनुष्य की सृजनेच्छा का प्रथम सोपान है। आदिम जातियों के अध्येताओं ने उनकी परम्पराओं के सूक्ष्म अध्ययन से यह सर्वप्रथम निरूपित किया कि चित्रकला मानवीय भावाभिव्यक्ति का प्रथम उन्मेष नहीं है बल्कि भावावेग की अभिव्यक्ति का प्रथम मानवीय प्रयत्न नृत्य के माध्यम से हुआ। संगीत और भाषा के साथ नृत्य मानवीय अभिव्यक्ति के प्रयत्नों में सर्व पुरातन है। अनेक विद्वानों ने विश्व का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि अन्यान्य कलाओं का विकास क्रमिक रूप से होता गया, लेकिन नृत्य का जहां तक प्रश्न है, वह अपनी आदिम अवस्था में ही चरम उत्कर्ष पर पहुंचा पाया जाता है। डॉ. कर्ट शैख्स ने अपनी पुस्तक 'वर्ल्ड हिस्ट्री ऑफ डांस' में अत्यन्त प्रामाणिकता के साथ इस बात का समर्थन किया है। उनका कहना है- 'यह बात कुछ विचित्र सी लगेगी कि प्रस्तर युग के बाद नृत्यकला ने बहुत कम नया ग्रहण किया है। रचनात्मक नृत्य का इतिहास प्रागैतिहासिक काल से शुरू होता है।'

आदिम मानव नृत्य के चरम आनन्द के लिए अनेक विधियों-प्रविधियों का सृजन करता आया है। जीवन और मृत्यु से परे नृत्य एक ऐसी आदिम प्रबल अनुभूति कही जा सकती है, जिसने मानव के आन्तरिक और बहिर्जगत को आनन्द की लय दी और उसके साथ उसे वाद्य और संगीत के सौन्दर्य से समृद्ध किया है। भाषा, चित्र, मूर्ति और काव्य उसकी इसी सृजनेच्छा का परिणाम है। सुसाली के, लैंगर ने कहा है 'नृत्य वन्य जीवन का सर्वाधिक गम्भीर बौद्धिक व्यापार है। देश और काल से परे किसी अज्ञात लोक में सम्मुखीन होने का प्रयास है, एक ऐसी मानव धारणा है जो व्यक्ति जनातीत और जीवन और मृत्यु से परे होकर भी शेष प्रकृति से परिवेष्टित और पोषित है। आदिम जाति को प्रभावित करने वाले तत्वों में प्रकृति की सबसे अधिक अहम भूमिका रही है। नदियों, झरनों, पर्वतों, पशु-पक्षियों, पृथ्वी, सूर्य-चन्द्र वायु-प्रकाश की स्वाभाविक विकसित अनन्य शक्तियों से मानव पूर्व से अव्याहत परिचित रहा है। यही धारणाएं मनुष्य के धार्मिक चिन्तन में अतिमानवीय शक्तियों के रूप कल्पना का आधार रही हैं। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के इस मत से सहमत हुआ जा सकता है कि वस्तुत: नृत्य उन्हीं धारणाओं को सम्मूर्तित करने का प्रयास है, ये शक्तियाँ नृत्य द्वारा उत्पन्न नहीं की जाती हैं या

उत्पन्न होती हुई, अनुभूति नहीं होतीं बल्कि नृत्य क्रिया द्वारा उद्घोषित, समाहूत, प्रतिस्पर्धित या प्ररोचित हुआ करती हैं। नृत्य की अवतारणा में मनुष्य की मूर्त दैहिक गतिशीलता के साथ आदिम मानसिक चरम व्यवहारिकता और हार्दिक विकास के साथ अमूर्त उद्दाम उच्छवासों की केन्द्रीय संचार की पृष्ठभूमि रही है। आदिम जातियों में समूह नृत्यों की सर्जना उनके जीवन के प्रति सामूहिक जिजीविषा का परिणाम है। आदिम समाजों में सामूहिक उत्तरदायित्व उनकी धमनियों में अवशेष नृतत्वीय परम्परा का सर्वश्रेष्ठ आगम कहा जा सकता है। समूह में भी स्त्री और पुरुष का द्वैत आदिम समाजों में कभी विगलित नहीं हुआ है। यही समूह भाव आदिम समाजों के प्रत्येक कार्य सृजन में तीव्रता से परिलक्षित होता है। फिर चाहे नृत्य, गीत, चित्रकर्म या ईंट गारे से बनी अनगढ़ ग्रामीण गृह निर्माण कला हो।

सामूहिक उत्तरदायित्व और कर्तव्यपालन की मूल भावना की स्पष्ट छाप आदिम समूहों के प्रत्येक कार्यकलापों में आज भी देखी जा सकती है। सामूहिक नृत्यगान में उनकी गहरी रुचि के पीछे उसी आदिम सहअस्तित्व की प्रागैतिहासिक भावना का अवशेष है। आदिवासियों में मण्डलाकार आवर्ती नृत्यों की परिपाटी उसी प्रागैतिहासिक काल की देन है। प्रारंभिक मानव के पूर्व भी पशु-पक्षियों में उल्लास नर्तन हुआ करता था। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में मानव ने इन्हीं पशु-पक्षियों में पूर्ववर्ती नर्तक का अनुसरण करना सीखा होगा। उल्लास नर्तन के आकार की सहज कल्पना की जा सकती है, वह गोल घेरे में कई आवर्तों के साथ किया जाता होगा। एक मानव विज्ञानी का यह मत है कि आदिम जातियों के मण्डलाकार आवर्ती नृत्यों में मानव पूर्व के वन मानुष के गोलाकार नृत्य का प्रभाव है। इस तर्क से विलग नहीं हुआ जा सकता है कि मनुष्य विकास क्रम में प्रकृति के अन्य उपादानों और अपने पूर्ववर्ती जीवों से उनके जीवन के अनेक अभिप्रायों को ग्रहण करता आया है। स्त्री और पुरुष के अस्तित्व के प्रारम्भिक काल से ही दोनों की जैविक सहभागिता के साथ जीवन के

सौन्दर्य और कला सृजन की उत्कृष्ट लालसा का प्रादुर्भाव हुआ। बुभुक्षित मानव की उदर क्षुधा की निष्कृति तो वनस्पति, आखेट और अग्नि खोज में मिल गई थी, लेकिन लालित्य की प्यास मानव अपनी क्रियात्मक निष्पत्ति में ढूँढ़ने लगा था। परिणामस्वरूप उसकी इच्छा के अनुरूप आनंद का रसामृत नृत्य में उसने पा लिया था। प्रारम्भिक नृत्य में लय-ताल, शब्द और संगीत की उतनी उपस्थिति तो नहीं हो सकती थी, लेकिन उसमें आनन्द का मधुर अमृत तो था ही। इसीलिये यह ठीक है कि नृत्य आविर्भावी काल में ही चरम सीमा पर पहुंच गया था।

फ्रान्स थीस नामक जर्मन चिन्तक ने नृत्य को जड़ के गुरुत्वाकर्षण पर चैतन्य की विजयेच्छा का प्रयास बताया है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण प्रत्येक वस्तु पृथ्वी पर टिकी है. इस भार को नर्तक अपनी दैहिक गतियों से तीव्रता से हटाने की कोशिश करता है, जो नर्तक इसमें सफल होता जाता है, उसका नृत्य उतना ही क्षिप्र होता है, जिसकी कि दर्शक या नर्तक को तीव्र प्रतीक्षा होती है। गुरुत्वाकर्षण प्रत्येक वस्तु को नीचे की ओर खींचता है। नृत्य में उसका प्रतिरोध उल्लास करता है, इस प्रतिरोध के कारण कलाकार को सृजन थकान का अनुभव होता है। जड़ता को बार-बार तोड़ने की प्रबल उल्लास इच्छा ही कला सृजन का सार्थक सोपान होती है। वाद्य उस जड़ता और आकर्षण भार को अपनी तीव्र लयबद्ध ध्वनि से विगलित करता है, नृत्य और वाद्य की युति इसीलिये देखी जाती है।

भारतीय आख्यानों में नृत्य उत्पत्ति का आदिम उल्लास ताण्डव को माना जाता है। ताण्डव के जनक शिव हैं और शिव ताण्डव को रोकने का प्रयास पार्वती का 'लास्य' नृत्य है। आततायी त्रिपुर राक्षस के वध के बाद शिव उल्लसित होकर नाचने लगे थे, वे नाचते ही गये, ब्रह्माण्ड में भूचाल खड़ा हो गया। डमरू निरन्तर बज रहा था, जल, वायु, पर्वत, सूर्य-चन्द्र, पृथ्वी के सभी तत्व शिव के ताण्डव नृत्य से कम्पित हो उठे थे। यह शिव का निर्बाध और निरर्थक नृत्य था। इसे बाधित किया पार्वती ने लास्य जैसे सार्थक नृत्य सृजित करके। लास्य में अर्थ और सौन्दर्य था। शिव भूल ही गये थे कि विश्व की रक्षा के लिये त्रिपुर का संहार किया है, इसलिये ताण्डव में विश्व का मांगल्य तो था, लेकिन वे अन्तहीन, विश्रृंखलित और विध्वंसक होते जा रहे थे, इसलिये महादेवी पार्वती को सुसंयोजित ललित लास्य नृत्य की सर्जना करनी पड़ी, वरना विश्व में सौन्दर्य और मांगल्य नाम की कोई चीज बचती ही नहीं। नृत्य का अर्थ है शिव, शिव याने कल्याण। आदि नृत्यों में प्रारंभ से ही यह अर्थ ग्रहण किया जा सकता है कि उल्लास के साथ सौन्दर्य और मांगल्य के भाव नृत्य के साथ ही रहे हैं।

विश्व मंच पर प्रथम आदि नृत्य ताण्डव और लास्य के रूप में प्रकट हुए। भगवान शंकर के शिष्य तण्डु मुनि ने अनुकरण किया, वहीं से ताण्डव परम्परा चली। ताण्डव शिव की आन्तरिक मन: स्थिति का नृत्य है, उत्तेजना के ज्वार के कारण उनके अन्तर्विश्व में उथल-पुथल मचती चली गई थी, जिसने उन्हें समस्त बाह्य जड़ता को तोड़ने के लिए मजबूर कर दिया था। परिणामत: बाह्य भौतिक जगत के तत्वों में प्रकम्पन्न उत्पन्न हो गया था। जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, सूर्य-चन्द्र, आकाश अपनी प्रकृति, नियति की सीमा तोड़ने लगे थे। ताण्डव से पृथ्वी का चुम्बकीय तत्व भी असंतुलित होने लगा था। शिव के हाथ और पैरों में हलचल पैदा हो गई थी, उसमें नृत्य का मूल तो था लेकिन उनके हस्त, पद-संचलन और चेहरे की भंगिमाओं में क्रोध की भयंकर ज्वालाएं थीं, उस समय शिव नृत्य कला का सृजन नहीं कर रहे थे बल्कि निरन्तर निर्बाध उस सोये हुए जड़ भाव को जगा रहे थे, जो बाद में नृत्य का जनक सिद्ध हुआ। त्रिनेत्र शंकर यह भूल गये थे कि उनके पास एक तीसरा नेत्र अर्थात् एक ऐसा सुरक्षित शस्त्र है, जिससे ब्रह्माण्ड का अन्त हो सकता है, उस समय शंकर उस केन्द्रीय सोच की परिधि में तो पहुंचे थे, लेकिन पार्वती शिव के विनाशकारी कदम को अपनी प्रत्युत्पन्नमति से रोकने में समर्थ हुई थीं, वह था ताण्डव के प्रतिरोध में सृजित नृत्य लास्य। पार्वती ने दुर्गा काली का रूप धारण कर शिव के ताण्डव को उनकी छाती पर कोमल पाँव रखकर ध्वस्त कर दिया था। तब पार्वती ने लास्य नृत्य का सृजन किया था और नृत्य का भाव समझाकर शिव के ताण्डव को लय और ताल में संतुलित किया था। शंकर के ताण्डव का आदिम उल्लास क्या रहा होगा ? इसका इसी से अन्दाज लग जाता है कि जड़-चेतन दोनों में संवेदनशीलता की वह उत्ताल तरंगें उठ खड़ी हो गई थीं, जिससे सभी पदार्थ चैतन्य होकर शंकर की लय में नृत्य करने लगे थे। ऐसा प्रलय के समय ही होता है, इसका अनुमान देवताओं को रहा होगा। प्रलयंकर शिव की अबाधित और अपार शक्तियों के विस्फोट का देवताओं के अलावा किसी को अन्दाज नहीं हो सकता था, लेकिन वे सब अच्छी तरह से जानते थे कि हलाहल पीने वाले शिव के प्रत्येक कार्य की परिणति कल्याणकारी होती है। किसी सृजन की मूल इच्छा से शिव ने वह नृत्य किया था, वह अनायास उल्लास से निकली हुई निष्कृति थी, इसलिए उसमें रस, अलंकार, छन्द और संगीत की लय का सर्वथा अभाव था। फिर ताण्डव का नया अर्थ क्या हो सकता है ? पांचवें वेद नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि के समक्ष यह प्रश्न उठाया गया था कि नाट्य में ताण्डव को स्थान देने का क्या अर्थ है? तब भरत मुनि ने एक उत्तर दिया था -'मांगल्य'। इसका मतलब शिव के ताण्डव का एक निश्चित अर्थ तो था ही, वह था 'विश्व का कल्याण'

इसका अर्थ हुआ कि ताण्डव केवल पहले समग्र नृत्य नहीं था। लय ताल बद्ध शारीरिक गतियों को 'नृत्य' कहते हैं, जो नृत्य से पूर्व या पश्चात् की गई आंगिक चेष्टाएं होती हैं, जो शास्त्र से कम लेकिन इच्छा से अधिक प्रेरित होती हैं। नृत्य की वे अवधारणाएं नृत्य में आती हैं, जिसके आधार पर नृत्य का रूप खड़ा होता है। लय, शब्द, हस्तपद संचारी मुद्रा नृत्त है और हाथ पैरों नयनों का संचलन नाट्य है। ताण्डव में शिव एक या दो मुद्राओं का संचालन तीव्रता से कर रहे थे, लेकिन उसमें किसी प्रकार का वैविध्य और लालित्य नहीं था और न विश्राम था और न किसी प्रकार की लयताल थी, लेकिन पार्वती के लास्य ने ताण्डव को शास्त्रीयता प्रदान करने में कोई कसर नहीं रखी।

ताण्डव अति आदिम नृत्य है, वह जड़ता पर चैतन्य की विजय का प्रतीक है। नारी का दूसरा नाम है कोमलता। लास्य में जगत जननी पार्वती ने नारी सुलभ कोमलता और लालित्य का सृजन कर शिव के कठोर ताण्डव को संयमित करने की सार्थक कोशिश की थी। इसलिये ताण्डव शिव की तरह अनायास उद्भूत है, और लास्य सोद्देश्य, सार्थक और सायास सृजन-सोपान है, जिसमें छन्द, अलंकार रस और लयताल की समग्र गतिविधियां तो है ही भाव की संपूर्ण अभिव्यक्तियां भी मौजूद हैं। शिव सृष्टि के मूल हैं और पार्वती सृजन की ऊर्जा। स्वयंभू शिव तेजस्विता के पिण्ड हैं, पार्वती शक्ति का केन्द्र। कालिदास ने रघुवंश में 'वागर्थ सम्पतौ प्रतिपत्तये' कहकर शिव और पार्वती के इस आदिम रूप की व्याख्या की है। शिव ब्रह्माण्ड के प्रथम नर्तक हैं। आदिम समाजों में भी बहुत कुछ बदले हुए आदिम रूप में शिव की प्रतिष्ठा मिलती है। जनजातियों में शिव की कल्पना नर्तक के रूप में ग्रहित तो है ही साथ ही सृष्टि के सर्जक के रूप में भी है। जनजातियों में शिव का स्पष्ट नाम नहीं मिलता फिर भी मंडला के गोंडों का बड़ा देव बस्तर के मुरिया-माड़ियाओं के आदि देव लिंगोपेन, बैगाओं का नांगा बैगा और नंगी बैगिन, कोरकुओं के मूला गोंड और मुलई गोंडेन शिव और पार्वती के सदृश कोई आदिम देवता पूजित हैं। यह सच है कि शिव की अवधारणा जनजातियों में ब्राह्मण सभ्यता से सर्वथा भिन्न मिलती है। गोंडों और बैगाओं के देव जाति उत्पत्ति, कृषि वर्षा और जंगल के देवता हैं, उनका देवता सृष्टि का सर्जक है और पालक है, उनका देवता वाद्यों का निर्माता है और वादक है। बस्तर के मुरिया माड़िया धारणाओं में उसके देवता धरती के निर्माण करने वाले, वनस्पति उत्पन्न करने वाले देवता हैं। उनके देवता ने नृत्य, वाद्य और संगीत की प्रथम सर्जना की। आदिवासी मिथकथाओं में लिंगो और बड़े देव के विभिन्न सर्जक रूपों का विशद वर्णन मिलता है। अब प्रश्न उठता है कि शिव की या शिव जैसे मिलते-जुलते देवता की प्रतिष्ठा जनजातियों के बीच किस प्रकार हुई, इसका उत्तर संक्षेप में यह दिया जा सकता है कि शिव पहले युग पुरुष थे, जिन्होंने सृष्टि में नृत्य की प्रतिष्ठा की। आदिवासियों के प्रमुख देवताओं का वास वृक्षों में होता है और वे वृक्ष के आसपास अपना सामूहिक नृत्य आज भी करते हैं, नृत्य के देवता होने के कारण शिव जैसे देवता की प्रतिष्ठा जनजातियों में आदिम युग से देखी जाती है। आदिवासियों में नृत्य की कई मुद्राएँ, समूहन और पद संचलन पाषाणकालीन अवशेषों में आज भी देखी जा सकती हैं। लोक की ग्रामीण परम्पराओं और प्रथाओं में भी सुदूर अतीत पाषाण युगीन जड़ें आज भी दिखाई देती हैं। बहुत से ऐसे ग्राम देवता हैं, जिनका मूल स्वरूप विद्रूपतापूर्ण होते हुए भी आज उनकी प्रतिष्ठा ब्रह्मांड के देवी-देवताओं में हो गई है। आदिम समूहों में नृत्य के कारण शिव की प्रतिष्ठा का एक कारण तो है ही दूसरा महत्वपूर्ण कारण आदिम मनुष्य का अन्न संग्राही होना है। अन्न संग्रह में जिस श्रम शक्ति की जरूरत पड़ी थी, उसके लिये ऐसे आनन्द और आराम की आवश्यकता थी, जिससे आदिम मानव फिर से ऊर्जा प्राप्त कर सके। ऐसे देवता केवल शिव ही थे, जो कल्याण के साथ कलाओं के माध्यम से आनंद की सृष्टि करने वाले भी थे, इसलिये आदिम समूहों को शिव से तादात्म्य स्थापित करने में कोई कठिनाई नहीं आई और शिव उनके आदिम देवता बन गये। शिव पशुओं, जीव-जन्तुओं के भी देवता हैं, उनका नंदी समस्त गौवंश को उत्पन्न करने वाला है, इसलिये पशुपालक जनजातियों के शिव बहुत करीब पड़ते हैं, इसलिये पशुचारणिक जातियों में शिव की प्रतिष्ठा बाबा देव या बापजी देव के रूप में सर्वत्र पाई जाती है। भीलों के बापजी देव शिव का ही रूप हैं। मातृ देवी पार्वती का शिव से विवाह आदिम युग की दूसरी बड़ी घटना थी। मातृदेवी की प्रतिष्ठा आदिम समाजों में शिव से पूर्व ही प्रतिष्ठित थी, दोनों के मेल से विश्व में जो हलचल पैदा हुई, उसके कारण संसार का कायाकल्प ही हो गया। दोनों के मिलन से सृष्टि की वनस्पतियों की पुनर्प्रतिष्ठा हुई। भौतिक वस्तुओं का सांस्कृतिक महत्व होने लगा। शिल्पों की प्रतिष्ठा हुई। कलाओं की पुनर्भाविष्कृति हुई।

किसी समय शिव और विष्णु के स्वरूप को संयुक्त रूप से पूजा जाता था, पुरातत्व सामग्रियों में ऐसी मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जिनकी पूजा की जाती थी, जिसका आधा भाग शिव था और आधा भाग विष्णु का था। इस तरह की पूजा कुछ काल तक प्रचलित रही, लेकिन बाद में दोनों का अस्तित्व अलग-अलग हो गया। आदिम देवताओं में शिव और विष्णु को सम्मिलित किये जाने के कारण अन्य संग्रह करने वाली आदिम जातियां पहले से अधिक कृषि कर्म पर निर्भर हो गई और अन्न उत्पादन ही उनका लक्ष्य हो गया। यहीं से व्यवस्थित कृषि सभ्यता का विकास हुआ। कृषि सभ्यता के विकास के साथ ललित और शिल्प कलाओं का भी सर्वांग विकास होता गया। पेट की भूख के साथ मानव की मानसिक और आत्मिक भूख के साधनों का विकास हुआ। बस यहीं से आदिम नृत्य से लोक नृत्यों का प्रादुर्भाव हुआ। आदिम नृत्य का आरंभ गुहा मानव के काल में हो चुका था।

लेखक : जनजातीय विषय के अध्येता हैं।
संपर्क : 7 उमा विहार कोलार थाने के आगे, नयापुरा, भोपाल म.प्र.
मो. 9424030151

■

आलेख

सरगुजा अंचल के जनजातीय नृत्य ''करमा'' का गति परक संधान

डॉ. श्यामसुंदर दुबे

मेरी जीवन यात्रा के वन प्रांतरों में विस्तारित ऊवड़ खाबड़ पर मेरी चेतना के दीपाधार पर रखे मणिखंडों की उजास से जगर-मगर हो रहे हैं- मुझे आज भी आलोकित कर जाते हैं किसी प्रेरणादायी कौंध की तरह ! छप्पन वर्ष पूर्व मैं सरगुजा की ममता भरी गोद में पहुँचा था। अंबिकापुर के शासकीय महाविद्यालय में मेरी यह पहली पद-स्थापना थी। फिर लगातार चौदह वर्ष वहीं का होकर रहा। वहाँ के जंगलों में भ्रमण शील रहा-वहाँ के आदिवासी जन-जीवन में घुला मिला। वहाँ का विष्णु भोग चाँवल खाया। वहाँ की बोली-वानी में डूबा-उतराया। वहाँ से निर्वासित होकर अपने बुंदेलखंड में आया, किंतु सरगुजा मुझे हांट करता रहा तब मुक्ति के लिए एक उपन्यास लिखा 'सोनफूला' सरगुजा की यादों में रचा बसा। यह भूमिका इसलिए कि वहाँ के जन-जीवन को मैं ने पुस्तकों के माध्यम से नहीं जाना जो कुछ वहाँ के विषय में जाना, वह प्रत्यक्षानुभुति आधारित ही है।

समय-गति को स्मृति ही गतिज ऊर्जा देती है। स्मृति में गति अंतर्निहित है। एक गति वह है, जो समय का सत्यापन करती है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र के उदय-अस्त से स्थानिक आधार परजे मापी जाती है। दूसरी गति वह है जो चेतना के प्रवाह को वाक, क्रिया और रूप की बिम्वात्मकता में प्रकट होती है। इसे सांस्कृतिक प्रवहमानता की तरह माना जाता है। संस्कृति एक विकासशील प्रत्यय जरूर है, किंतु उसमें वह सब कुछ भी समाया हुआ है, जो अतिक्रमित होता रहा है। अर्थात संस्कृति में पीछे का छूटा विलुप्त नहीं होता, बल्कि वह नये में विलयित होता रहता है। इसी प्रक्रिया में इस सत्य को समझा जा सकता है कि आधुनिकता एक ऐसी विकसित अवधारणा है, जो अपनी जड़ों की ऊर्जा से आवेशित है। जो अधुनिकता छिन्नमूला होती है- उसमें जीवन गति की शाश्वत प्रक्रिया का अभाव रहता है। हमारा जनजातीय हिस्सा हमारी सांस्कृतिक जड़ों की पहचान का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। वह प्रगति की गति का माईलोमीटर है। मेरे भीतर जितना-जैसा सरगुजा समाया हुआ है, वह इस रूप में मुझे संस्कृति के उस आदिम मुहाने पर ले जाता है, जहाँ प्रकृति के संवेदनों और संकेतों को आत्मसात करता मनुष्य अपना सांस्कृतिक विन्यास कर रहा था। प्रकृति की गति में अपने को लय करता हुआ अपने जीवन की लय का संधान कर रहा था। नृत्य की लय इसी साझा होती गति का प्रत्यक्ष-अनुभव है। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हमारी विकसित नृत्य-परंपरा का स्रोत यही जनजातीय नृत्य हैं, जो सरगुजा जैसे आदिवासी अंचलों में सुराक्षित हैं।

आज के कत्थक, कुचीपुड़ी, छाऊ आदि नृत्यों की गति-भंगिमा, लयात्मकता, दृश्यात्मक अभिनेयता, ताल, मुद्रा आदि का विकास कला की प्रयोगशाला में अनेक अनुभवों से गुजरते हुए हुआ होगा। बनते-बनते ये शास्त्रीय चक्र में आकृतिवान हुए है।

नृत्य में जिस गति की चर्चा की जा रही है वह मात्र पाद-निक्षेप भर नहीं बल्कि संपूर्ण देह-भाषा, गति से ही निप्पन्न है। नृत्य मानवीय ऊर्जा का दैहिक उत्सर्जन है। यह उत्सर्जन भावों के प्रवेग के साथ गति और लय के रूप में अभिव्यक्त होता है। आंगिक संचालन एक सार्थक गति का परिणाम है। चलना, उठना बैठना, हस्त मुद्रायें और हस्त क्रियाएँ, सथा शरीर के विभिन्न अंगों का संचालन और भाव विचार के वेग का चाक्षुष प्रदर्शन देह-गति की ही दृश्यात्मकता है। मनुष्य के पृथ्वी पर जन्म लेने के साथ ही देह-गति का प्रदर्शन प्रारंभ हो जाता है, जबकि गर्भ में भी यह दैहिक गति अदृश्य रूप में भी विद्यमान थी। यह उसकी देह-भाषा है। प्रारंभिक अवस्था में यह गति मनोभावों के वेग का सीमित प्रदर्शन रही हो किंतु क्रमश: अपने परगित के अनुकरण में ये लयवद्ध हो विस्तारित होने लगी। प्रकृति के साथ संपूर्ण सृष्टि का गतिज प्रभाव जब दृश्य बिम्ब बनने लगता है तब नृत्य होता है। आभ्यांतर जगत की गतिज ऊर्जा और बाहय जगत की अपसरित ऊर्जा प्रणाली के अपसारण का एकाकार होना ही नृत्य की निर्धारक गति का आधार है।

इस तरह का विमर्श यहाँ इसलिए कि जनजातीय नृत्य की गति-लय प्रकृति के बहुत करीब है-या यौं कहिए कि आदिम इलाके की नृत्य

संरचनाएँ प्रकृति के रंगों, प्रकृति की गतियों प्रकृति की भाव-भंगिमाओं में घुलमिलकर ही मानवकृत निर्मितियों में अवरित होती हैं। शेर और हाथी की गति, सरई और महुआ के फूलों का टपकना वसंत, वर्षा और ग्रीष्म में प्रदर्शित वनस्पतियों का मूड और तदनुरूप रंगों की उजास में फर्क आना आदि ने मनुष्य के उस मन पर गहरा असर डाला है-जिस मन पर सम्यता की अधिक मोटी परते नहीं पड़ी थी। भूभौतिकी का भी गहरा असर जनजातीय कला-रचनाओं में प्रत्यक्ष होता दिखता है। मैं जिस सरगुजा की बात कर रहा हूँ वह सघन वनच्छादित भूभाग है। छोटे-छोटे धान के खेत, फैले-फैले उन्मुक्त से घर-द्वार और विस्तृत-सी बाड़ी। यह परिदृश्य सरगुजा के लोक नृत्यों में उभरता है। सरगुजा की व्युत्पत्ति सुरगूँजा से बतायी जाती है। वन की संघनता के कारण दूर तक गूँजता सुर, सुरगुजा की प्राकृतिक विशेषता है। इसका यह भी तात्पर्य है- कि इन जंगलों में निस्तव्धता समाई हुई है। कभी जब सरगुजा के खेतों में धान की फसल अपनी स्वर्णिम आभा में लहकती है तब देखने से लगने लगता है कि कोई ताल अपनी लहरों के लयाधारों में वर्तुल-वर्तुल होकर नत और उन्नत हो रहा मंद से तार और तार से मंद हो रहा है-अनारोही से आरोही हो रहा है। और आरोही से अनारोही हो रहा है।

विशेष क्षेत्र में प्रकृति की गत्यात्मकता भिन्न-भिन्न प्रकार की हो जाती है। पूर्वोत्तर पहाड़ी प्रदेशों में गति दलाँगों में अभिव्यक्त होगी तो समुद्र तरीय गति में उछाल होगा मैदानी इलाकों में गति समशील होगी। जल वायु की तासीर भी इस गति के रूपाकार बदलने वाली होती है। मैं केवल उन समुदायों के लिए ये तथ्य दे रहा हूँ जो अभी तक प्रकृति प्रेरित निश्छल जीवन जी रहे हैं। प्रकृति की लोच लचक और प्रकृति की लय ताल में ये समुदाय ही अपनी कला संगत बैठा पाते हैं।

प्रकृतिगत, स्थलीय वानस्पतिक, फसल परिवेशी आंतरिक उत्साही गतिविधियों की झलक सरगुजा के करमा नृत्य में प्राप्त होती है। यद्यपि यह एक अनुष्ठानिक नृत्य है, किंतु यह अब सामान्य प्रदर्शनकारी व्ययवस्था का अंग बन चुका है। यह उत्पादन और प्रजनन की अभिवृद्धि और इसके प्रति श्रद्धा-भाव प्रदर्शन का नृत्य है उत्पादन भूमि और जीवन की गति की निर्धारक अंत: चेतना से संबद्ध है भूमि उत्पादन चक्र का प्रमुख आधार है। तमाम उद्भिजों की जन्मदात्र, पोषाणकर्मी भूमि ही है। फसल आदि पुनर्चक्रीकृत होकर तमाम जीवन धारियों को गतिमय करती है। यह गति प्रजनत तंत्र से संभव होती हे। करमा उत्पादन और प्रजनन की स्वास्तिकामना की अभिव्यक्ति का आभार नृत्य हैं। यह मातृ शक्तियों की आराधना का नृत्य है। आदिवासी मूलत मातृ सत्तात्मक रहे हैं। यह आदिम सप्त मातृकाओं की अवधारणा का ही प्रसंग है। मातृ शक्ति ही क्रिया है-जीवन-जगत गति को केन्द्रीय चेतना है। करमा जीवन की गतिशीलता का नृत्य है।

सरगुजा धान का कटोरा है। भाद्रपद माह में धान के खेत पकने लगते हैं, शस्य-संपदा खेतों से घरों में आने वाली होती है-ऐसे ही अवसर पर करमा का आयोजन होता है। यह शस्य आगमन के उत्सव का नृत्य है

किंतु समग्रता में यह प्रकृति देवी की अभ्यर्थना भी है। भद्रपद शुक्ल एकादशी को करम वृक्ष की शाखा पृथ्वी में आरोपित करके उसके चारों ओर यह नृत्य किया जाता है। माना यह गया है कि जब तक यह शाखा पुन: पेड़ बनने की स्थिति में न आ जाये अर्थात शाखा में पेड़ बनने की संभावना बनने वाले नये कल्ले और धरती के अंदर उसकी जड़ों का विस्तार न हो जाए-तब तक 'करमा' चलता है। 'करमा' भाग्य की पूजा का भी इस रूप में एक सांस्कृतिक प्रयोजन है-वनस्पति की सतत वृद्धि का तो यह नृत्य-अनुष्ठानिक पर्व है ही कर्म में जीवन-गति का चक्रानुसंधान है, जबकि वानस्पतिक सर्जना में शाखा का पेड़ हो जाना भी वानस्पतिक पुनर्सर्जन है। इस रूप में करमा जीवन-गति के पर्यायों का पूजन प्रसंग है।

सभी कलायें गति का परिणाम और प्रत्यक्षी-करण हैं। जाहिर है वे गति को ही समर्पित हैं। किंतु जनजातीय लोक-नृत्यों में जो प्रकृत गति है-मैं उसकी बात कर रहा हूँ। इस तरह के लोक नृत्य एकदम प्रकृति की गतिलय से परिचालित हैं। उस गति में यद्यपि गति के कौशल का अध्यारोपण नहीं है - फिर भी वह गति के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती है। करमा के नृत्य में स्त्री-पुरूष अलग-अलग दल में रहते हैं। ये दल आमने-सामने जैसे अर्द्ध वृत्ताकार घेरे में होते हैं। दोनों दलों में प्रत्येक सदस्य एक दूसरे की कमर परस्पर हाथ से पकड़े रहते हैं-पुरुष दल एक अलग चेन बनाता है और स्त्री दल अलग चेन बनाता है। नृत्य प्रारंभ होता है तो दोनों दल एक दूसरे की ओर झुकते हुए आगे स्टेपिंग करते हैं। यह स्टेपिंग सीमित होती है। वापस ये अपनी यथा स्थिति में सीधे खड़े हो जाते है एक क्षण रूक कर ये पुन: झुकते हैं-और अब स्टेपिंग पीछे की ओर करते हैं फिर यथा-स्थिति में आते हैं, और बार-बार इस गति क्रिया को दुहराते हैं। मैं ने जब-जब इस नृत्य की इस गति-लय को देखा तब-तब मुझे लगा कि जैसे मैं धान के लहलहाते खेत पर बहती हवा के झौंके से धान के पौधों में जो एक साथ गति का आंदोलन होता है-वह करमा का ही अनुभव दे रहा है। करमा की स्टेपिंग स्मूदली होती है-एकदम सहज और नैसर्गिक! गति और विराम ये दोनों गति को लय देने वाले गुण हैं। ताल भी इसी की उपज हैं। यह प्रकृति का गुण है हवा चलते-चलते रूक भी जाती है। नृत्य में गति को लेकर डॉ. गौतम चटर्जी का कथन तीन आवर्तन के बाद नर्तकी ठहरेगी ही। धारणा के स्तर पर लगता है कि नृत्य का स्वरूप है गतिशीलता या गत्यात्मक लेकिन कल्पना में ही देखी जा

सकती है कि नृत्यांगना नृत्य करती हुई ठहरेंगी तभी आगे बढ़ेगी गतिशील हो सकती है। यह जो विराम है, इसमें गति का प्रवेग भले ही समुदित न हो, किंतु इसके अंतराल में भी गति का ऊर्जा का अदृश्य स्फुरण होता रहता है। करमा नृत्य में आगे और पीछे स्टेपिंग लेने के बीच जो स्थिर होकर क्षणार्ध के लिए खड़ा हो जाना है-यह विराम है। भरत मुनि ने प्रकृति जात इसी गति सिद्धांत को गति और स्थानक की तरह प्रस्तुत करके इसे शास्त्रीयता प्रदान की है।

नृत्य गायन, वादन का सहकार भी है। करमा में मादल, टिमकी और घुंघरू का प्रयोग वाद्य यंत्रों के रूप में होता है। गायन शोरगुल भरा नहीं रहता है। मंद से मंदतर होता हुआ तार पर पहुँचता है। इस संगीत-संरचना के मिजाज के अनुसार नृत्य की स्टेपिंग का वेग बढ़ता रहता है। इस संपूर्ण दृश्य में घने जंगल के बीच के एकांत में घुलते स्वराघातों का रहस्यमय-सा वितान बनने लगता है। बीच-बीच में जोर से किसी पक्षी की आवाज दल के गायकों में से कोई निकलता है तो जंगल का बोध तीव्रता से जागता है। आदिवासी परिधान सीप शंख की मालाऐं और सिर पर कलगी धारण करने का अर्थ है कि ये नृत्य अपने परिवेश में घुले रंगों को ही अभिव्यक्त कर रहा है। इस स्तर पर मैं यहाँ अपने एक अनुभव को साझा करना चाहता हूँ। अंबिकापुर के कॉलेज के आडोटोरियम में हम लोगों ने एक बार करमा नृत्य का आयोजन किया। इस हेतु अंतर्वर्ती क्षेत्र से नर्तकों वादकों और गायकों को आमंत्रित किया गया। नृत्य की मौलिकता से हम लोग प्रभावित हुए, किंतु जब करमा की मंडली के सदस्यों का अनुभव इस प्रस्तुति को लेकर हमने जानना चाहा तो उनका कहना था कि इस बिल्डिंग की दीवारों ने उन्हें घेर लिया है- यहाँ की लाईट में उन्हें नाचने में बाधा महसूस हुई और वे पूर्ण मगन-मन होकर नहीं नाच पाए। दरअसल उनका मंच तो खुला जंगल है। बहती हवा उनकी संगिनी है। कुहुकती मोर उन्हें उकसाती है और उनकी उन्मुक्ता जंगल में ही हिलोर लेती है। स्त्री-पुरुष की रागात्मक अनुभूतियों का अभिव्यक्तीकर कॉलेज के आडोटोरियम में संभव नहीं था यही तो नर्तक कह रहे थे।

करमा नृत्य में एक क्षण ऐसा आता है कि जो कमर में डाले हुए हाथ हैं, वे उन्मुक्त रूप से ऊपर उठा लिए जाते हैं। यह तब होता है जब नृत्य अपनी ऊँचाई पर रहता है धुनचढ़ जाती है और स्टेपिंग में आघूर्णन का क्रम आ जाता है। नृत्य-गति की यह स्वाभाविक उठान प्रायः सभी लोक नृत्यों में प्राप्त हो जाती है। यह प्रकृतिपरक वह उन्मुक्तता है जो सर्वत्र जंगल में समायी रहती है। करमा के लयाधार ही आदिम लयाधारों के स्रोत हैं। ये भी मनुष्य ने अनेक वर्षों के बाद प्राप्त किए होंगे-शारीरिक गतिविधियों को लोक ने धीरे-धीरे अपने प्रकृति-निरीक्षण परक अभ्यास और उसके अनुकरण की क्रियात्मकता को एक व्यवस्थित सिंफनी की तरह अनुभव कर जब इसको आत्मसात किया होगा-तभी नृत्य गति का विकास-क्रम प्रारंभ हुआ होगा।

लेखकः वरिष्ठ ललित निबंधकार, साहित्यकार हैं।
सम्पर्क : श्री चंडी जी वार्ड हटा, (दमोह) म.प्र.
मोबा. 9977421629

कला समय

आगामी अंक
अक्टूबर - नवम्बर 2025

प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास
इस विशेषांक की अतिथि संपादक

लोक, जनजातीय एवं शास्त्रीय वाद्यों पर केन्द्रित विशेषांक (भाग-दो)

अतिथि संपादक : प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास

दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में प्रोफेसर एवं भूत पूर्व डीन व विभागाध्यक्ष,
वाद्यों पर शोधपरक ग्रंथ की लेखिका तथा राजस्थानी वाद्यों की विशेषज्ञा

इस प्रतिष्ठापूर्ण विशेषांक हेतु वाद्य और वादक पर मौलिक आलेख, दुर्लभ छाया चित्र, विशेष पाण्डुलिपियाँ सादर आमंत्रित हैं। सामग्री प्राप्ति की अंतिम तिथि 15 अक्टूबर 2025 है।

- संपादक

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com मो.- 94256 78058

आलेख

जीवन का स्पंदन है नृत्य

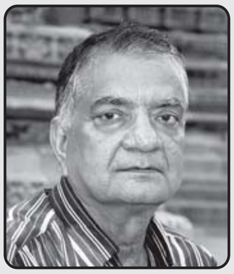

डॉ. देवदत्त शर्मा

कथा कहे सो कथक। लेकिन यदि कोई कथक स्वयं नृत्य की कथा वन जाए तो वह संगीताकाश में नृत्य सितारों के बीच प्रखर नक्षत्र की तरह स्थापित हो जाता है। फिर नृत्य ही उसकी भाषा, उसकी अभिव्यक्ति, पहचान और प्राण बन जाता है तथा नृत्याकाश में चन्द्रमा की तरह प्रभासित होने लगता है। चरण गिरधर चांद भी एक ऐसे कथक नर्तक हैं जिन्होंने न केवल अपनी वंशानुगत नृत्य परम्परा को आगे बढ़ाया बल्कि अपनी नृत्य प्रतिभा से नए कीर्तिमान स्थापित कर देश-विदेश में अपना नाम भी कमाया है।

चरण गिरधर चांद का जन्म गुलाबी नगरी जयपुर में 19 सितम्बर 1947 को नृत्याचार्य पंडित नारायण प्रसाद और श्रीमती सुंदर बाई के घर हुआ। उनका मूल निवास राजस्थान के चूरू जिले की सुजानगढ़ तहसील के गोपालपुरा गांव, जिसे द्रोणपुरा भी कहते हैं से है। इनकी सात पीढ़ियों ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी कथक के नए आयाम रचे, अत: परम्परा से कथक नृत्य जीन्स के रूप में इनकी रक्त शिराओं में समाहित होकर आया। यही कारण है कि आठवीं पीढ़ी के इस कलाकार ने तत्कार के साथ चलना सीखा और खिलौनों से खेलने की उम्र में ही पैरों में घुंघरू बांध लिए। घुंघरुओं का मधुर क्वणन उनके अन्तर्मन में गहरे समाता चला गया और बाल्यावस्था में ही उनके पांव घुंघरुओं की रुनझुन के साथ थिरकने लगे। यही कारण था कि औपचारिक शिक्षा में तो वे मात्र आठ जमात पास हैं किन्तु अंगुलियों में कलम पकड़ कर लिखने-पढ़ने के स्थान पर अपने पैरों से कथक के चपल नृत्य की जो अप्रतिम इबारत लिखी और उसे घुंघरुओं के अलंकार से सजाया, वह आज भी दर्शकों के मानस पटल पर अमिट रूप से अंकित है।

उन्होंने नृत्य की शिक्षा अपने पिता-गुरु पंडित नारायण प्रसाद से ली। नारायण प्रसाद जी के पिता पंडित हनुमान प्रसाद तथा उनके बड़े भाई पं. हरिहर प्रसाद जयपुर रियासत के गुणीजन खाने के कथक नर्तक थे और देवपरी के जोड़े के नाम से विख्यात थे। वे इतनी तेजी से नृत्य करते थे कि उनके पैर जमीन पर टिकते दिखाई नहीं देते थे। पं. हरिहर प्रसाद तांडव और पं. हनुमान प्रसाद लास्य नृत्य करते थे। श्रृंगार और रौद्र रस का अद्भुत समन्वय था उनके नृत्य में।

जब गुणीजन खाने बंद हुए तो कलाकारों को जीविकोपार्जन के लिए अन्यत्र जाना पड़ा। फलस्वरूप पं. नारायण प्रसाद ने कुछ समय के लिए अलवर और दिल्ली के गांधर्व महाविद्यालय में नृत्यगुरु के रूप में कार्य किया। चरण गिरधर चांद ने भी सन् 1961 से 1963 तक जोधपुर के संगीत कला केन्द्र, 1963 से 1965 तक मुरादाबाद के गंधर्व संगीत विद्यालय, सन् 1967 में दिल्ली के गंधर्व महाविद्यालय, सन् 1969 से 1970 तक चंडीगढ़ के प्राचीन कला केन्द्र और सन् 1971 से करीब एक दशक तक अलवर की कला भारती संस्था में कथक गुरु के रूप में कथक नृत्य सिखाया और भर्तृहरि में धूणे पर तपते अपने ज्ञानगुरु मस्ता बाबा घनश्याम नाथ के आशीर्वाद से उन्हें आईसीसीआर की तरफ से दक्षिणी अमेरिका के गुयाना शहर में कथक सिखाने के लिए भेजा गया। सरकार की तरफ से तो उन्हें तीन साल के लिए भेजा गया था किन्तु वहां उनका कार्य इतना सराहा गया कि वे पांच साल तक वहां रहे।

वहां से आने के बाद भारत सरकार ने उन्हें एमीनेंट आर्टिस्ट के रूप में दिल्ली के खेल गांव में मकान दिया और वे वहां रहने लगे। आगे चलकर उन्हें इंदिरा गांधी सेंटर फॉर इंडियन कल्चर की ओर से सन् 1988 में तीन वर्ष के लिए मॉरीशस भेजा गया। किन्तु वहां भी वे अपने नृत्य कौशल से साढ़े चार साल रहे। वहां उन्होंने 'आइये कथक सीखें' कार्यक्रम तैयार किया जो धारावाहिक रूप में टीवी चैनल पर प्रसारित हुआ। इससे उन्हें इतनी प्रसिद्धि मिली कि जब वे बाजार में निकलते थे तो लोग उनकी नृत्य मुद्रा बनाकर इशारा करते थे कि यह वही कलाकार है जो कथक सिखाता है। नृत्य सिखाने वे सुरीनाम भी गए।

सन् 1995 में वे सिंगापुर चले गए और सिंगापुर इंडियन फाइन आर्ट सोसायटी में कथक नृत्य सिखाने लगे। उसके उपरांत उन्होंने सिंगापुर की ही दूसरी संस्था नृत्यालय एस्थेटिक सोसायटी में नृत्यगुरु के रूप में कार्य किया और करीब पन्द्रह वर्षों तक कथक नृत्य सिखाकर उसका प्रचार-प्रसार किया। वहां उन्होंने कथक के अनेक बड़े-बड़े आयोजन किए जिससे कथक सीखने वालों की संख्या निरंतर बढ़ती चली गई। आगे चलकर उन्होंने कथक सिखाने की अपनी संस्था स्थापित की।

उन्होंने कथक में करीब एक दर्जन नृत्य नाटिकाएं तैयार की जिनमें ओमनम: शिवाय, आम्रपाली, त्रिनेत्र, घुंघरू, विश्वामित्र मेनका, कृष्णलीला, भस्मासुर प्रसंग, पंचतंत्र की कहानियों पर आधृत तथा भारत

दर्शन आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ नृत्यनाटिकाओं में तो पिचेहतर कलाकार मंच पर होते हैं। ये नृत्य नाटिकाएं अनेक देशों में प्रदर्शित की गईं। तभी उनके मन में एक नृत्यनाटिका

राजस्थानी में तैयार करने का विचार आया। अपनी कल्पना को मूर्तरूप दन के लिए उन्होंने 'ढोला मारू' नृत्य नाटिका तैयार की। कलाकारों की वेशभूषा जयपुर (राजस्थान) से तैयार करवा कर मंगवाई गई तथा उसमें शास्त्रीय एवं राजस्थानी लोक संगीत का समावेश किया गया। सिंगापुर में प्रदर्शित यह नृत्यनाटिका इतनी प्रभावी एवं लोकप्रिय हुई कि इसे देखकर कई विदेशियों ने नृत्य सीखने की इच्छा जाहिर की। फलस्वरूप उन्होंने नृत्य डेमोस्ट्रेशन देकर सैंकड़ों लोगों को नृत्य सिखाया। नृत्य नाटिकाओं के अलावा उन्होंने कथक नृत्य के अनेक 'शो' भी किए हैं जिनमें घुंघरू, पायल की झंकार, सोलह श्रृंगार, घुंघरू बाजे नूपुर बाजे तथा तराना तरंग आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

सिंगापुर रहते आपको अपनी माटी की याद नहीं आती? यह सुनकर वे भावविह्वल हो उठते हैं। नम हो आई पलकों को पौंछते हुए कहते हैं- 'मैं अपनी माटी की सौंधी सुगंध को कैसे भूल सकता हूं? वह तो मेरे प्राणों में रची-बसी है। राजस्थान की तो सदैव हिचकी आती रहती है। तीज-त्योहार, पहनावा और वहां का खान-पान विशेषकर जोधपुर की मावे की कचौरी, प्याज की कचौरी, मिर्ची बड़े, जयपुर के घेवर आदि का जायका सिंगापुर रहते हुए भी नहीं भूल पाता। इसी प्रकार मैं जब भी भारत आता हूं तो जयपुर, अलवर और अपने गांव जाने का प्रयास अवश्य करता हूं। लेकिन यह भी सच है कि रोजी-रोटी के लिए यह सब सहना पड़ता है। इसके अलावा विदेशों में कलाकार की जो इज्जत है, वह भारत में नहीं है। मैंने कथक को अपना जीवन अर्पित कर दिया। उसके प्रचार-प्रसार के लिए माटी से दूर हो गया। अनेक उपलब्धियां हासिल की लेकिन राजस्थान मेरी झोली से निकल गया।'

आपका उपनाम चांद कैसे पड़ा? वे बताते हैं कि उनसे पहले उनके चार भाई जीवित नहीं रहे। जब उनका जन्म हुआ तो परिवार के लोगों ने कहा कि घर में चांद आया है, बस तभी से उन्हें चांद कहने लगे। इसी प्रकार उनके छोटे भाई तेज प्रकाश तुलसी उनके साथ नाचते थे। कुछ लोगों ने नृत्य की इस जोड़ी को चांद-सूरज के नाम से पुकारना शुरू कर दिया। तुलसी का प्रसंग आते ही वे अतीत की स्मृतियों में खो जाते हैं। उनकी आंखें भर आती हैं। अपने को सम्हालते वे कहते हैं 'हम दोनों भाइयों ने अनेक स्थानों पर अपना युगल नृत्य प्रस्तुत किया। राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया तो हमारे नृत्य से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने रामेश्वर टांटिया से पांच सौ रुपए की राशि पुरस्कार स्वरूप दिलवाई जो उस समय एक बड़ी रकम मानी जाती थी।

जैसा कि आपने बताया कि आपके पिता नृत्य करते हुए एक ही समय में एक आंख से खुशी के भाव और दूसरी आंख से आंसू निकाल कर करुणा के भाव प्रदर्शित कर देते थे। क्या आपको भी यह महारत हासिल है? वे कहते हैं 'मैं अपने गुरु की उस ऊंचाई को तो नहीं छू पाया किन्तु उन्होंने मुझे जो सिखाया है वह अपने आप में अद्भुत है। कालिया दमन, गोवर्धन लीला, माखन चोरी, बड़ी-बड़ी परणें, तोड़े, टुकड़े जिनका कोई सानी नहीं है। मैं जिस तेज गति से बिना दूसरा पांव टिकाये एक पांव पर पांच-छह चक्कर सीधे लेता हूं उसी तरह उल्टा घूम जाता हूं। यह मेरे नृत्य की निजी एवं अनूठी विशेषता हैं। इसी प्रकार बड़ी-बड़ी परणों की स्पष्ट एवं तीव्र गति से प्रस्तुति, एक-एक बोल को स्पष्ट करते प्रभावी पद संचालन और भावों को साकार बनाती आंगिक मुद्राएं तो इतनी सजीव होती हैं कि लोग न केवल रसानुभूति से आनंदित हो उठते हैं बल्कि अचंभित भी होते हैं कि इतनी लंबी परण इतनी तीव्र गति से भी प्रस्तुत हो सकती है। त्रिनेत्र नृत्य नाटिका में कामदेव का भस्म होना तथा अलवर की कला भारती द्वारा प्रस्तुत शबरी के राम नृत्य नाटिका में रोमांचित कर देने वाली 'जटायु' प्रस्तुति को भी दर्शक आज तक नहीं भूले हैं।' इन्होंने तीन चार घंटे लंबी प्रस्तुति भी दी है और एक साथ सैंकडों चक्कर लेने में भी वे समर्थ हैं।

उन्होंने बताया कि लोग धन-दौलत के बंटवारे के लिए वसीयत लिखते हैं किन्तु उनके पिता ने अपनी सम्पत्ति का बंटवारा करने के लिए दो रजिस्टर बनाए। एक पर चरण गिरधर चांद तथा दूसरे पर तेज प्रकाश तुलसी लिखा। उनमें कथक के जो सबक लिखे वे एक-दूसरे से भिन्न थे। उनमें जो सबक लिखे उन्हें किसी दूसरे को नहीं सिखाया गया।

कथक के समूह नृत्य के संदर्भ में उनका मानना है कि उनकी एक कम्पोजीशन होती है। ठुमरी में तो भाव पक्ष खत्म नहीं होता किन्तु समूह में यदि हरेक कलाकार अपना श्रेष्ठ दिखाते हुए अंत में सब एक साथ सम पर आते हैं तो ठीक है अन्यथा भाव पक्ष कमजोर हो जाता है। इसी प्रकार दूसरे घराने की खूबसूरती को ग्रहण करने के वे पक्षधर हैं और कथक फ्यूजन में भी यदि खूबसूरती है तो वे इसे बुरा नहीं मानते। इसी प्रकार एक ही समय में नौ रसों को व्यक्त करना वे कलाकार का नृत्य कौशल मानते हैं। कोई ऐसा कार्यक्रम जिसे आज तक नहीं भुला पाये ? वे तपाक से बताते हैं-

सन् 1957 में वड़ोदरा में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन हुआ था। उस समय मैं दस वर्ष का था। उसमें नामचीन कलाकार थे। मेरा नम्बर रात के करीब दस बजे आया। छोटा होने के कारण मैं सो गया। नम्बर आने से पहले पिता मुझे ग्रीन रूम ले गये। मुंह धुला कर थोड़ा मेकअप किया और तिलक लगाया। पैरों में घुंघरू बांधे। स्टेज पर आया तो लोग हंसे कि दिग्गजों के बीच यह बालक ? मेरे पिता जितने दक्ष नृत्य में थे उतने ही तबला, पखावज वादन और गायन में निष्णात थे। उस समय तबले पर उन्होंने जो उठान बजाई और उस पर मेरा जो मनोहारी नृत्य हुआ तो लोग झूम उठे और गुणीजनों के मुंह से अनायास ही वाह... वाह... निकल पड़ा। इसी प्रकार संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर के उद्घाटन अवसर पर भी मेरा नृत्य बहुत सराहा गया तथा लोगों ने मुझे हाथों-हाथ लिया और पलकों पर बैठा लिया। मैं रातों-रात प्रसिद्धि के पंखों पर सवार हो गया। इसी प्रकार पेरिस के मंडपा सेंटर में मेरे नृत्य के बाद इतनी तालियां बजी कि मुझे चार बार मंच पर जाकर दर्शकों का अभिवादन करना पड़ा।

प्रयाग संगीत समिति से संगीत प्रभाकर तथा प्राचीन कला केन्द्र चंडीगढ़ से स्वर्ण पदक के साथ नृत्य भास्कर की उपाधि प्राप्त जग प्रसिद्ध जयपुर कथक घराने के कथक गुरु पंडित चरण गिरधर चांद को अनेक सम्मानों से विभूषित किया जा चुका है। इनमें सन् 1970 में सुर सिंगार संसद, मुम्बई का 'श्रृंगार मणि', सन् 1992 में राजस्थान संगीत नाटक अकादमी अवार्ड, सन् 2017 में हार्मनी एण्ड आर्ट्स सिंगापुर का लाइफ टाइम अचीवमेंट अवार्ड, वर्ष 2002 में नाट्यम मालिका सिंगापुर द्वारा नाट्यम मालिका, भारत कला अवार्ड, समर्पित एवं रचनात्मक कथक नृत्य के लिए बीजू पटनायक अंतरराष्ट्रीय शांति पुरस्कार-2022 प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार वर्ष 2014 में जयपुर की कल्पना संगीत विद्यालय समिति तथा जयपुर समारोह में तत्कालीन मुख्यमंत्री भैरोंसिंह शेखावत द्वारा सम्मानित किया गया। वर्ष 2023 में रंगशिल्प एवं गुलजार वायलिन अकादमी द्वारा जयपुर के रवीन्द्र मंच पर आयोजित एक कार्यक्रम में कथक नृत्य के क्षेत्र में विशेष योगदान के लिए तबला नवाज उ. काले खां अवार्ड प्रदान किया गया। नई दिल्ली के विज्ञान भवन में 18 सितंबर 2023 को आयोजित कार्यक्रम में संगीत नाटक अकादमी के अमृत सम्मान और 25 दिसंबर, 2023 को प्रधानमंत्री संग्रहालय, तीन मूर्ति दिल्ली में आयोजित एक कार्यक्रम में इंटरनेशनल अटल अवार्ड से विभूषित किया गया। इन्हें वर्ष 2006 में प्राचीन कला केन्द्र चंडीगढ़ द्वारा गुरु मदन लाल कोसर, गुरु शोभा कोसर अवार्ड तथा वर्ष 2018 में सुक्षेम द्वारा आयोजित सुजानगढ़ महोत्सव में सुजानगढ़ गौरव सम्मान से भी सम्मानित किया जा चुका है।

उन्होंने देश-विदेश के अनेक प्रतिष्ठित संगीत समारोहों में अपनी प्रभावी नृत्य प्रस्तुतियां दी हैं तथा दिल्ली के गंधर्व महाविद्यालय में उस पद पर कार्य करने का गौरव भी प्राप्त है जहां कभी उनके पिता पदस्थापित थे। उन्होंने जयपुर के जवाहर कला केन्द्र के उद्घाटन समारोह में भी तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा के समक्ष मुख्य कलाकार की हैसियत से नृत्य कर दर्शकों की प्रशंसा बटोरी। है

सरल स्वभाव और मृदु व्यवहार के धनी चरण गिरधर चांद आज जिस मुकाम पर हैं वहां वे किसी परिचय के मोहताज नहीं है। आज सिंगापुर में उनकी संस्था ट्रेनिंग एण्ड परफोर्मिंग आर्ट सेंटर के नृत्य गुरु व आर्ट डायरेक्टर हैं, वहीं जीईओ ग्लोबल ऑर्गेनाइजर के चेयरमैन हैं। सिंगापुर में कथक नृत्य के क्षेत्र में इनके उल्लेखनीय कार्य से प्रभावित इनके अतिरिक्त पांच अन्य जयपुर घराने के शिक्षक कार्यरत हैं और सैंकड़ों विद्यार्थी कथक नृत्य सीख रहे हैं। सिंगापुर की प्रसिद्ध नृत्यांगना श्रीमती रमणी कश्यप के साथ वे भारत व अन्य देशों में अपना नृत्य प्रदर्शन कर रहे हैं।

अब तक ये हजारों छात्रों को कथक नृत्य सिखाकर देश-विदेश में कथक पताका फहरा रहे हैं। इतना ही नहीं सिंगापुर में रमणी कश्यप, अदिति कश्यप, मॉरीशस में रेखा धीरमाल, अमृता, अन्ना पातेन, अमेरिका में नादिरा शाह और कनाडा में लुसींडा जैसी शिष्याएं कथक सिखा रही हैं वहीं भारत में अनीता श्रीवास्तव, निधि भार्गव तथा पुत्र राजेश चांद और दिनेश चांद कथक की पताका थामे हुए हैं।

लेखक: स्वर सरिता पत्रिका के संपादक हैं।
मो. 9413331989

प्रतिक्रिया

बजे सो बाजा... भावों की वाहवाही करने वाला वाद्य ! वाद्य हमारे गायक, नायक और सायक की पहचान होते हैं... संदेशों, आत्मिक आदेशों, देशों को भी पहचान देने वाले वाद्य देवी-देवताओं के अभिन्न आयुध हैं... वे जनजातियों से लेकर लोक समाज और अभिजात्य संस्कृति के अटूट हिस्से हैं। बिना बाजे के कोई रीत नहीं। बाजे सबसे अच्छे मीत, उनसे गीत, प्रीत और हमारे हित... ! 'कला समय' (द्वैमासिक, भोपाल) का वाद्यों पर बहुत सुंदर और संग्रहणीय विशेषांक आया है। वादकों सहित कलाकारों और आधिकारिक विद्वानों ने गंभीर और रुचिकर आलेखों से इसको कोश जैसा बना दिया है। संपादक श्री भंवरलाल श्रीवास जी ने अपनी संपादकीय में वाद्यों के संसार पर बहुत आत्मिक टिप्पणियां दी हैं। इस सुरीले सावनी अनुष्ठान के लिए बधाई और अभिनंदन...

– डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू'

नृत्य के चरणशीर्ष घुँघरू

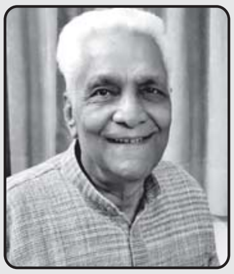

डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग

भारतीय वाङ्मय में गान के साथ-साथ नृत्य को भी मोक्ष-प्राप्ति का साधन माना गया है। द्वारिकामाहात्म्य में लिखा है-

यो नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैरत्यन्तभक्तित्तः ।
स निर्दहति पापानि जन्मान्तर शतैरपि ।।

अर्थात्-जो प्रसन्न चित्त से श्रद्धा और भक्तिपूर्वक भावों-सहित नृत्य करते हैं, वे जन्म-जन्मान्तरों के पापों से मुक्त हो जाते हैं।

नृत्य का आधार चरण हैं और चरणों की शोभा वे नूपुर या घुँघरू हैं जो हृदय में रसनिष्पत्ति करते हैं। गुप्तकालीन ग्रन्थ 'श्रृंगार हाट' में महाकवि श्यामल ने तो यहाँ तक लिखा है कि प्रियतम के ऊपर चलाए हुए विलासिनी के उस चरण की जय हो, जो आलते और झंकृत नूपुर से सजा हुआ काम का झण्डा है और जो सिर झुकाकर वन्दना करने योग्य है-

जयति मदनस्य केतुः कान्तं प्रत्युद्यतो विलासिन्याः ।
शिरसा प्रार्थयितव्यः सालक्तकनूपुरः पादः ।।

– श्रृंगार हाट, पादताडितक

भगवान् कृष्ण के नूपुरों की झंकार से गोपियों का चित्त अपने वश में नहीं रहता था और वे सारी मर्यादाओं को भूलकर, लोकलाज की चिन्ता न करती हुई, आत्मसमर्पण के लिए सहज ही प्रस्तुत हो जाती थीं। गदाधर भट्ट कृत 'महाराज की बानी' में इसी आशय का एक पद है-

बाजे रुनझुनुनु नूपुर झंकार .... ।
देखत गोपीजन वनराई मदन मुदित उनमाद ।

हितहरिवंश के अनुसार नूपुर-ध्वनि से प्रकृति और पशु तक मोहित हो जाते थे-

पुलिन पवित्र सुभग यमुना तट मोहन बेनु बजायौ,
कलकंकन किंकिंणि नूपुर धुनि सुनि खग-मृग सचु पायौ ।

कालिदास के समय में नगर-बालाएँ लाक्षारस (महावर) और नूपुरों से शरीर को सुसज्जित किया करती थीं।' नूपुर केवल नृत्य करते समय भावों को उद्दीप्त करके रस की सृष्टि करने का ही साधन न होकर तरुणियों के यौवन का प्रतीक भी था, इसीलिए महाकवि श्याम ने कहा है कि प्रेम की झडप में उठा हुआ, नूपुर से झंकृत, खिसके दुकूल से खुली जाँघवाला, मदविह्वल कामिनी का पैर सदा से ही विजयी है। एक स्थान पर नूपुर को मन की सूक्ष्म अभिव्यक्ति का साधन मानते हुए लिखा है कि प्रथम समागम में सकपकाया हुआ व्यक्ति कैसे आत्मनिवेदन कर पाता, यदि पैरों के स्पन्दन से उठी हुई नूपुर की झंकार न होती?

नूपुर-झंकार केवल सांसारिकों के हृदय को ही आकर्षित नहीं

करती, बल्कि समाधिस्थ व्यक्तियों का हृदय भी उससे विचलित हो जाता है। 'श्रीमद्भागवत' महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के 18वें अध्याय में वर्णन आया है-

तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणाय।
मानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधि योगेनामीलितनयननलिन।
मुकुलयुगलमीषद्विकच्यैव्यचष्ट । तामेवाविदुरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं।
दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुधैर्गतिविहारखीडाविनयावलोक सुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां।
कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निजमुखगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदान्धम-
धुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबरभाररशनां देवीं।
तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्यवशमुपनीतो जड़वदिति होवाच।

अर्थात्-पूर्वचित्ति की विलासपूर्ण, सुललित गतिविधि और पादविन्यास की शैली से पद-पद पर उसके चरणनूपुरों की झंकार हो उठती थी। उसकी मनोहर ध्वनि सुनकर राजकुमार आग्नीध्र ने समाधियोग द्वारा मुँदे हुए अपने कमल-कली के समान सुन्दर नेत्रों को कुछ-कुछ खोलकर देखा तो पास ही उन्हें वह अप्सरा दिखाई दी। वह भ्रमरी के समान एक-एक फूल के पास जाकर उसे सूँघती थी और देवता तथा

1. नितान्त लाक्षारसरागरंजितैर्नितम्बिनीनां चरणैः सनूपुरैः। – कालिदास
2. प्रणयकलहोद्यतेन स्रस्तांशुकदर्शितोरुमूलेन । जितमेव मदकलाया नूपुरमुखरेण पादेन ॥ – श्रृंगार हाट, पादताडितक
3. प्रथमसमागमनिभूतः कथमात्मनिवेदनं जनः कुर्यात् । पादस्पन्दनरभसो यदि न स्यान्नूपुरनिनादः ॥ –'श्रृंगारहाट', ईश्वरदत्तप्रणीत 'धूर्त्तविटसंवाद'

मनुष्यों के मन और नैनों को आह्लादित करनेवाली अपनी विलासपूर्ण गति, क्रीड़ा-चापल्य, लज्जा एवं विनययुक्त चितवन, सुमधुर वाणी तथा मनोहर अंगावयवों से पुरुषों के हृदय में कामदेव के प्रवेश के लिए द्वार-सा बना देती थी। जब वह हँस-हँसकर बोलने लगती तो ऐसा प्रतीत होता, मानो उसके मुख से अमृतमय मादक मधु झर रहा है। उसके नि:श्वासों की गंध से मदान्ध होकर भौरे उसके मुख-कमल को घेर लेते, तो वह उनसे बचने के लिए जल्दी-जल्दी पैर उठाकर चलती, वेणी और करधनी हिलने से बड़े ही सुहावने लगते, यह सब देखने से भगवान् कामदेव को आग्नीध्र के हृदय में प्रवेश करने का अवसर मिल गया और वे उनके अधीन होकर, उसे प्रसन्न करने के लिए पागल की भाँति 'हा' बोले।

नूपुर जहाँ अपनी मादक ध्वनि से काम को उद्दीप्त करने के साधन माने गए हैं, वहीं अनायास किसी-किसी स्थल पर किन्हीं विशेष परिस्थितियों में भय का संचार करने में भी वे समर्थ होते हैं। अश्वघोष के 'सौन्दरनन्द' में ऐसा ही एक सन्दर्भ आया है, जिसमें कवि ने कहा है-

प्रासादसोपानतलप्रणादैः कांचीरवैर्नूपुरनिस्वनैश्च।
वित्रासयन्तो गृहपक्षिसंधानन्योन्यवेगांश्च समाक्षिपन्त्यः ।।

अर्थात्-छत और सीढ़ियों पर पद-तल की ध्वनि से, करधनियों के स्वर एवं नूपुरों की झंकार से घर के पालतू पक्षि-समूह को भयभीत करती हुई एवं एक-दूसरे के वेग को तिरस्कृत करती हुई, वे वहाँ गईं।

अभिप्राय यही है कि नूपुरों से आबद्ध पैर लयाश्रित होकर ध्वनि के अनेक भेद उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में घुँघरू के अनेक पर्याय मिलते हैं, यथा-कंकण, नूपुर, घर्घरिका, क्षुद्रघण्टिका, क्षुद्रिका, मंजीर, पादमणि, कांस्यताल और मर्मरा इत्यादि। ये सभी नाम सार्थक हैं तथा अलग-अलग कालों में प्रचलित रहे हैं।

'अमरकोश' के मनुष्यवर्ग 6 के द्वितीय काण्ड में घुँघरू के आठ पर्याय पादांगद, तुलाकोटि, मंजीर, नूपुर, हंसक, पादकटक, किंकिणी तथा क्षुद्रघण्टिका मिलते हैं, यथा-

क्लीबे सारसनं च अथ पुंस्कट्यां श्रृंखलं त्रिषु।
पादाङ्गदं तुलाकोटिर्मजीरो नूपुरोऽस्त्रियाम् ।।
हंसकः पादकटकः किंकिणी क्षुद्रघण्टिका।
त्वक्फलकृमिरोमाणि वस्त्रयोनिः दश त्रिषु ।

'मैत्रायण्युपनिषत्' 6 10-12 में किंकिणी का उल्लेख इस प्रकार आया है-

अन्यया परे शब्दवादिनः श्रवणाड्गुष्ठयोगेनान्तहृदयाकाश शब्दमाकर्णयन्ति ।
सप्तविधेयं तस्योपमा। यथा नद्यः किंकिणी कांस्यचक्रकभेकविः कृन्धिका वृष्टिर्निवाते वदतीति ।

'शब्दकल्पद्रुम' में किंकिणी के पर्याय इस प्रकार गिनाए गए हैं- क्षुद्रघण्टिका, कंकणी, किंकिणिका, क्षुद्रघण्टी, प्रतिसरा, किंकिणीका, कंकणिका, किंकिणि, क्षुद्रिका और घर्घरी। नूपुर के पर्यायों में पादांगद, तुलाकोटि, मंजीर, हंसक और पादकटक नाम मिलते हैं। उद्भट के ग्रन्थ 'मार्कण्डेय' में नूपुर शब्द मिलता है, यथा-

'नूपुरौ विमलौ तद्वद्ग्रैवेयकमनुत्तमम्।'

'गीतगोविन्द' में घुँघरू के लिए मंजीर और किंकिनी शब्दों का प्रयोग मिलता है, यथा-

मुखरमधीरं त्यज मंजीरं रिपुभिव केलिषु लोलम्।
जुवती जुगल जुगल-प्रति माधो, करत विनोद विलासम् ।
बेनु मृदंग मंजीर, किंकिनी, क्वनित मधुर मृदु हासम् ।।

'महाभारत' में घुँघरुओं के लिए घर्घरी शब्द का प्रयोग मिलता है। घर्घर शब्द जिससे प्रगट हो उसे 'घर्घरी' या 'घर्घरिका' कहते हैं। धातुयुग से पूर्व पाषाणकाल में पत्थर के घुँघरू धारण करने का रिवाज़ अवश्य रहा होगा। पत्थर की ध्वनि घर्घर शब्द से ही उद्घोषित की जा सकती है। अतः सम्भव है कि घुँघरू का आदि नाम 'घर्घरी' हो।

कुम्भ ने लिखा है कि घर्घरिका वाद्य के अभ्यास को 'घर्घर' कहते हैं, जिसके 6 भेद होते हैं, यथा-पडिवाड, पडवाप (पडप), शिरपिटि (सिरपाट), अलगपाठ (अलगपाट), शिरभिर (सिरहिर) तथा तुलहर (खलुहुल)।'

'संगीतरत्नाकर' के अनुसार पैर के अग्रभाग का भूमि से लगा होना तथा एक अथवा दोनों एड़ियों से भूमि का निकुट्टन करना 'पडिवाट' कहलाता है। पादतल के द्वारा भूमि-निकुट्टन 'अपडप' कहलाता है। पादतल को भूमि से लगा हुआ रखें तथा पैर को क्रमशः आगे तथा पीछे खिसकाएँ तो उसे 'सिरिपट' कहते हैं।

दोनों चरणों को आकाश में पर्याय से कोमलतापूर्वक प्रकम्पित करना 'अलगपाट' कहलाता है। एक पैर सम अवस्था में रहे, दूसरा आगे को प्रसारित हो तथा उसकी जंघा का कम्पन किया जाए तो उसे 'सिरहिर' कहते हैं।

दोनों पैरों को भूमि पर स्वाभाविक स्थिति में रखकर जंघाओं का कम्पन करना भी 'सिरहिर' कहलाता है।

बाएँ पैर का अग्रभाग, भूमि से लगा रहे तथा एड़ी से भूमि का निकुट्टन किया जाए, अन्य पैर के अग्रभाग को भूमि से लगाकर दाहिनी दिशा से बाईं दिशा में भ्रमण करना 'खलुहुल' कहा गया है। इस प्रकार घुँघरुओं के विविध संचालन और अभ्यास का शास्त्रीय विवरण हमें उपलब्ध है, जिनकी परिभाषाओं से परिचित होना नर्तक का कर्त्तव्य है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में घुँघरू का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

षट्नूपुरे। केचितु पादांगदादिचतुष्कं चरणभूषणे नूपुर इति ख्याते। हंसकादिद्वयं रवशून्ये हंसाकृतिचरणभूषणे इत्याहुः। हंस इव कायति मधुरध्वनित्वात् हंसकः । कै शब्दे डः। हंसाकृतित्वात् हंस इव हंसकः इति वा। इवार्थे विकारसंघ इत्यादिना कः।

'राजनिर्घण्ट' ग्रन्थ में 'किंकिणी' शब्द का प्रयोग मिलता है, यथा-

1. तत्र घर्षरिकावाद्ये वहनिर्घर्घरो तमः। तस्य भेदाः षडेवात्र पडिवाडस्तदादिमः।
तश्च पडवापश्च शिरपिट्यपि संज्ञिता ॥ ततश्चालगपाठः स्यात्ततः शिरिभिराह्वयः। ततस्तुलहरश्चैति तल्लक्ष्म व्याहारेऽधुना ॥

किंकिणीस्वननिर्घोषो युक्तस्तोरणकल्पनैः ।

जैन-साहित्य में कुषाण-गुप्तयुग का 'अंगविज्जा' नामक एक प्राचीन ग्रन्थ है, जिसमें किंकिणी के लिए 'किंकिणिका' तथा 'खिंखणिक' शब्द मिलते हैं।

किंकिणी के अन्दर पूर्वकाल में उड़द के दाने डाले जाते थे, जिनसे कि उनमें शब्द हो।

खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर में पैरों में घुँघरू बाँधती हुई नायिका का एक सुन्दर पाषाण-शिल्प आज भी द्रष्ट्रव्य है।

आचार्य नन्दिकेश्वर प्रणीत 'अभिनय दर्पण' ईसा की दूसरी या तीसरी शती का लिखा हुआ ग्रन्थ है, जिसमें घुँघरू के लिए 'किंकिणी' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'किंकिणी' का लक्षण निर्धारित करते हुए ग्रन्थकार ने बताया है कि नृत्य करते समय नर्तकी अपने पैरों में काँसे के बने हुए जो आभूषण धारण करती है, उन्हें 'किंकिणी' कहते हैं। किंकिणी की बनावट सुन्दर तथा ध्वनि मधुर होनी चाहिए। उनकी बनावट चन्द्राकार हो और उन्हें एक-एक अंगुल के अन्तर पर पिरोया (बाँधा) जाना चाहिए। इनमें नीले रंग के धागे से बाँधकर मजबूत गाँठ देनी चाहिए। नर्तकी के दोनों पैरों में सौ-सौ अथवा दो-दो-सौ किंकिणियाँ (घुँघरू) पहनानी चाहिए

सन् 1127-1134 ई0 के लेखक महाराज सोमेश्वर ने 'पादघर्घरिका' का उल्लेख इस प्रकार किया है-

किंकिण्यः स्वर्णरचिता गुणगुम्भितविग्रहाः ।
नादवत्यस्सुरम्यास्ताः पादघर्घरिकाभिधाः ।।

अर्थात्-स्वर्ण की किंकिणियाँ भली प्रकार बनाई हुई रमणीक हों, सुन्दर नादवाली हों तो उन्हें 'पादघर्घरिका' कहते हैं। विनायक ने अपने ग्रन्थ में किंकिणी का लक्षण इस प्रकार किया है-

कैलासे तु सुवर्णं च रजतं देवमण्डले ।
कांस्यं च मर्त्यलोके तु नटस्सन्धारयन्सदा ।।
शतमेकं वामपादे दक्षिणे च शतं तथा।
नीलसूत्रेण बध्नीयान्नाट्यशास्त्रेषु निश्चितम् ।।
वामे हंसास्यकं बध्वा दक्षिणे खटकामुखम् ।
हस्तेन किंकिणीसूत्रं प्रथमं दक्षिणे पदे।
पश्चाद्वामे तु पादे च पृष्ठभागे तु बन्धयेत् ।।

अर्थात्-कैलास पर सुवर्ण, देवमण्डल में चाँदी तथा मर्त्यलोक में नट सदैव काँसे (की किंकिणियों) को धारण करे। बाएँ पैर में एक-सौ-एक तथा दक्षिण पैर में एक-सौ (किंकिणियाँ) नीले धागे से बाँधे। यह 'नाट्यशास्त्र' में निश्चित किया गया है। बाएँ पैर में 'हंसास्य' हस्त तथा दक्षिण (पैर) में 'खटकामुख' (मुद्रा) द्वारा (किंकिणियों को) बाँधे।

चौदहवीं शती के महाराजा वेम ने 'संगीत-चिन्तामणि' ग्रन्थ में 'क्षुद्रघण्टा' का लक्षण इस प्रकार दिया है-

क्षुद्रघण्टाः कांस्यमयी पुटद्वितयसंयुता ।
अन्तर्गोलयुता पृष्ठे सरन्ध्रकशिखान्विता ।।
सैव घर्घरिकेत्युक्ता प्रसिद्धा मंजुलस्वना ।
ता रज्जुगुम्भिता पादे कार्याः पेरणिनर्तने ।।

अर्थात् क्षुद्रघण्टा काँसे की बनाई जाएँ। इनमें दो भाग होते हैं। अन्दर गोलाई रहे तथा पीछे छिद्र-सहित शिखर हों। इसी को 'घर्घरिका' कहते हैं। यह बड़े मधुर शब्द से युक्त होनी चाहिए। पेरणि-नर्तन के समय इनको भली प्रकार रज्जु से पैर में बाँधे।

मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा कुम्भा ने 'क्षुद्रघण्टा' का वर्णन इस प्रकार किया है-

कृशानुनिर्दग्ध विशुद्धकांस्यसंभूतराजत्पुटयुग्मकप्राः।
कनिष्ठिकापर्वसमीकृतार्धप्रमाणदेहास्सघनास्समाश्च ।
कर्कन्धुकाबीजसमानपिण्डाः श्लक्ष्णा मनोज्ञाः परिवर्तुलाश्च ।
मण्डूकवक्त्रा कृतिवक्त्रदेशा गर्भे दधानाः किल लोहगोलाम् ।
शिखासु रन्ध्रद्वितयोपनीतबन्धार्थ रज्जूपचितोर्धदेशा।
स्युः क्षुद्रघण्टाः किल घर्घराह्वास्तास्ताः पुनर्घर्घरिकाभिधानाः ।।

अर्थात्-क्षुद्रघण्टा (क्षुद्राघण्टा) अग्नि द्वारा शुद्ध किए हुए काँसे से निर्मित तथा दो पलड़ों से युक्त हों। कनिष्ठिका उँगली के पोरुए के समान (उनके) एक पलड़े का (एक) भाग होना चाहिए। सघन तथा समानता भी (उनमें) हो। उनका आकार बेर की गुठली के समान होना चाहिए। वे चिकने, समान, सुन्दर तथा गोल होने चाहिए। उनका अग्र भाग मेंढक के मुख के समान होना चाहिए। उनके मध्य-भाग में लोहे की गोलियाँ होनी चाहिए। दो छिद्रों से युक्त उनकी शिखाओं में रज्जु बँधी हो, ताकि उनका आधा भाग उससे व्याप्त हो जाए। इन्हीं क्षुद्रघण्टाओं को 'घर्षरिका' तथा 'घर्घरा' कहते हैं।

शाङ्गदेव-प्रणीत 13वीं शताब्दी के ग्रन्थ 'संगीतरत्नाकर' में घुँघरू के लिए 'क्षुद्रघण्टिका', 'घर्घर', 'घर्घरिका' तथा 'मर्मरा' शब्द प्राप्त होते हैं। 'नूपुर' शब्द का प्रयोग 'संगीतरत्नाकर' में नृत्य के करण और चारी-विशेष के लिए किया गया है। लोक में यह करण विशेष रूप से प्रयुक्त होने के कारण 'घर्घरिका' अर्थात् घुँघरुओं के लिए 'नूपुर' शब्द प्रयुक्त होने लगा। घुँघरुओं की बनावट के विषय में आचार्य शाङ्गदेव ने कहा है-

तैक्ष्णगोलकगर्भाः स्युः कांस्योद्भवपुटद्वयाः ।।
सुधनाः सूक्ष्मजातीयबदरीबीजसम्मिताः ।
शिरः सुषिरविन्यस्तरजवः क्षुद्रघण्टिकाः ।।
ताश्च घर्घरिका लोके भाष्यन्ते मर्मरास्तथा ।
ताभिर्घर्घरभेदानां कृतिः पेरणिनर्तने ।।

– 'संगीतरत्नाकर', वाद्याध्याय

अर्थात्-काँसे के दो पलड़ों के मध्य में सूक्ष्म जाति के बेरों की

1. 'विश्वकोश', द्वितीय भाग, अलंकार के अन्तर्गत
2. सुस्वराश्च सुरूपाश्च सूक्ष्मा नक्षत्रदेवताः। किंकिण्यः कास्यरचिताः एकैकाङ्गुलिकान्तरम्॥
बध्नीयन्नीलसूत्रेण ग्रन्थिभिश्च दृढ़ पुनः। शतद्वयं शतं वापि पादयोर्नाट्यकारिणी ॥ -'अभिनय दर्पण'

गुठली के समान तीक्ष्ण लोहगोलक डाले जाएँ। उनके शिर पर सूराख हों, जिनमें रज्जु डाली जाए तथा वे घनीभूत हों तो उन्हें 'क्षुद्रघण्टिका' कहते हैं। लोक-व्यवहार में इन्हें 'घर्घरिका' तथा 'मर्मरा' भी कहते हैं। इन घर्घरिकाओं के भेदों का पेरणिनर्तन में प्रयोग किया जाता है।

18वीं शताब्दी के महाराज प्रतापसिंह देव कृत 'राधा-गोविन्द संगीतसार' में 'क्षुद्रघण्टा' का लक्षण इस प्रकार दिया गया है-

'अथ क्षुद्रघण्टा को लछन लिख्यते ।। याको नाम लौकिक में घुंघरा कहत हैं।। जहाँ काँसिकें दोय पुट। झारिवे की गुठलीमावे। इतने लीजिये ।। पीछे दोय पुटन कें बीच में लोह कोणां वा पाथर काँकरो घालि दोय पुटन को आपस में आवें तामें छोडीये वाँके ऊपर डोरा पोयवे को एक नाका लगाय दीजिये ।। सो याको नाम लौकिक में घुंघरा कहत हैं।। ये दस बिस तीस एक डोरा में पोयकें ।। नृत्य करती बेर दोऊ पायन में बाँधिकें। तालन में नाचिये अथवा कमर में बाँधिके नाचिये। इनमें झुण-झुंण शब्द निकलत है। सो घुंघरा जाँनिये ।। इति घण्टिका कहिये घुँघरा ताको लछन सम्पूर्णम् ।।'

राजस्थानी डिंगल-कोष, अवधान-माला में घुँघरू के 9 नाम इस प्रकार गिनाए गए हैं-

कटक (अरव इण बिध) अंगद (आख)। तुलाकोटि रमझोल (तिम) नेवुर नूपुर (नाँव), मंजीरक मंजीर (मण) हंसक (फेरि सुहाव) ।।

दक्षिण-भारत में घुँघरुओं को 'सलंगै', 'गेज्जम' तथा 'गेज्जै' कहते हैं। वहाँ 'गेज्जै' को नृत्य-व्यवसाय का प्रतीक माना जाता है। नृत्य-व्यवसायी स्त्रियों को जब प्रथम बार घुँघरू अर्थात् गेज्जै पहनाए जाते हैं, तो उस समय बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाता है। एक बार घुँघरू धारण करने के पश्चात् वह स्त्री जीवन-भर अपने व्यवसाय का त्याग नहीं कर सकती, ऐसा वहाँ माना जाता है। भजन गानेवाले भागवतार भी कर्नाटक में घुँघरू पहनते हैं। बड़े आकार के घुँघरू, जिन्हें आजकल 'घण्टियाँ' भी कहते हैं, दक्षिण में 'सिलम्बु' नाम से पुकारे जाते हैं। दक्षिण-भारत में पोंगल त्यौहार के समय गाय के पैरों में ये घुँघरू बाँधे जाते हैं।

इस प्रकार भारत के प्रत्येक प्रान्त में किसी-न-किसी रूप में घुँघरू जीवन के साथ जुड़े हुए अवश्य देखे जाते हैं। इनका मधुर नाद जहाँ मन को आकर्षित करता है, वहाँ भारतीय जीवन की कलात्मक अभिरुचि का परिचायक भी है। शायद ही ऐसा कोई भक्त कवि हो, जिसने घुँघरू अथवा उसकी झंकार के सौन्दर्य का उल्लेख अपने काव्य में न किया हो। कुछ प्रसिद्ध भक्त कवियों की ऐसी पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं-

चरन रुनित 'नूपुर' कटि 'किंकिनि', कंकन करतल ताल।
मनु तिय-तनय समेत, सहज-सुख, मुखरित मधुर मराल ।।

– सूरदास

पग 'घुँघरु' बाँध मीरा नाची रे।

– मीराँबाई

'नूपुर' रुनित कुनित मनि कंकन, जुवति-जूथ रस-रासि बढावै ।
सुरति देत मधुमत्त मधुप-कुल, एक ताल सबके जिय भावे ।।

– कृष्णदास

पाँइनि की पटकार मनोहर, पैंजनि की झनकार ।
रुनझुन 'किंकिनि-नूपुर' बाजत, संग पखावज तार ।।

– व्यास कवि

दोउ कर पकर जसोदा रानी ठुमकी पाय धरावे ।
घननन-घननन 'घुँघरु' बाजे झाँझरियाँ झमकावे ।।

– सूरदास-मदनमोहन

घन-घन घनए 'घुघुर' कत बाजए, हन-हन कर तुअ काता।
विद्यापति पद तुअ पद सेवक, पुत्र बिसरु जनि माता ।।

– विद्यापति

उगत सूयँ ज्योति भई कुलहिरी बनाऊँ।
पाय बाँधि 'घूँघरू' सु चालिबो सिखाऊँ ।।

– सूरदास-मदनमोहन

डम डम डम्फ डिमिक डिम मादल, रुनुझुनु 'मंजिर' बोल ।
'किंकिन' रनरनि बलआ कनकनि निधुबन रास तुमुल उतरोल ।।

– विद्यापति

बजत अनुसार दमदम मृदंग निनाद झमक झंकार 'किंकिनी' जान के।
नील नव जलद में तड़ित तड़फति मनो यों विराजत प्रिया पास गोपाल के ।।

– सूरदास-मदनमोहन

जुगनू उतै हैं, इतै जोति है जवाहिर की,
झिल्ली झंकार उतै, इतै 'घुँघरू' लरें।

– कवि तोष

चरंन 'घुँघरू' जन्त्र भुजन पर, नींकौ झेंमक जमायौ।
'व्यास' स्वामिनी धन-धन श्री राधे, रास में रंग रचायौ ।।

– व्यास कवि

जाइ जमुना तट पै काहू बट-छाँह माँहि,
'पाँसुरी' उमाहि कबौ बाँसुरी बजावें हैं।

– भ्रमरगीत

नग 'नूपुर' औ पहुँची कर-कंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये।
नव-नील-कलेवर पीत झगा झलकै पुलकें नृप गोद लिये ।।

– तुलसीदास (कवितावली)

बन्धुक-सुमन-अरुन-पद-पंकज, अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आये।
'नूपुर' जन मुनिवर-कल-हंसन्ह, रचे नीड़ दै बाँह बसाये ।।

– तुलसीदास

रमकनीय झमकिनी पियारी, 'किंकिनि' सब्द सुहाये।
चतुर्भुज प्रभु गिरिधर लाल संग भामिनि मंगल गाये ।।

– चतुर्भुजदास

'नूपुर' धुनि उपजाइ विमोह्यौ, संकर भयौ उदास।

कंकन 'किंकिनि' धुनि सुनि नारद, कीनौ कहूँ न बास ।।

– व्यास कवि

श्रीराग में कान्ह मुरली बजावें..
बजत 'नूपुर' धरत चरन अवनी चतुर ताल चर्चरी सो मन लावें।

– छीतस्वामी

नृत्यत 'नूपुर' बाँध के गावत लै करतार।
विमल हियो भक्तनि मिली तून सम गन्यो संसार ।।

– ध्रुवदास

निसंग थारतं अलप्य जापते प्रसंसई।
दरस्स भाव 'नूपुरं' इतन्न तान ने तई ।।

– चन्दवरदायी

'नूपुर' के सुरन के अनुरूप तानै लेत पग,
तलताल देत अति मन भाये री।

– केशवदास (रसिक प्रिया)

भरतनाट्यम्, कथक, कथकलि और मणिपुरी इत्यादि अनेक नृत्यों में आज 'घुँघरू' चरणशीर्ष होकर दिग्-दिगन्त का मन आह्लादित कर रहे हैं, यह हमारे लिए गौरव की बात है। घुँघरू नाद भारतीय अन्तर्मन का प्रतीकात्मक मन्त्र है, जो सृष्टि में व्याप्त अनाहत का सुखद रव है।

पुस्तक: संगीत निबन्ध सागर से साभार
लेखक: वरिष्ठ साहित्यकार, संगीतकार तथा संगीत पत्रिका के प्रधान संपादक और काका हाथरसी के पुत्र थे।

pnb
MERCHANT: KALA SAMAY
SCAN & PAY
कला समय: सहयोग राशि भुगतान हेतु क्यूआर कोड का उपयोग करे।

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं .... कला समय पत्रिका का .... एक वर्ष : 600/- रूपये, दो वर्ष : 1200/- रूपये, चार वर्ष : 2300/- रूपये, आजीवन : 10,000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। रजिस्टर्ड शुल्क रूपये 300/- प्रतिवर्ष सहित कुल रूपये .... ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर .... दिनांक .... संलग्न है।

नाम : ....

पता : ....
....

पिन : .... मो.: ....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशि:

(रजिस्टर्ड डाक शुल्क 300/- प्रति वर्ष अतिरिक्त)

वार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत) साधारण डाक
द्वैवार्षिक	:	1200 (व्यक्तिगत)	1400 (संस्थागत) साधारण डाक
चार वर्ष	:	2300 (व्यक्तिगत)	2700 (संस्थागत) साधारण डाक
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत) साधारण डाक

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016
- नमूना प्रति ₹100/- , एवं रजिस्टर्ड डाक शुल्क ₹50/-

–प्रबंध संपादक

कथक परंपरा का बदलता परिदृश्य

डॉ रमा दास

वैसे तो आज के डिजटल दौर पर खूब बहस होती है और इसकी कई खामियाँ भी गिनाई जाती हैं, लेकिन मुझे इससे एक बडी सहूलियत मिली. इसके माध्यम से देश- दुनिया के अलग-अलग कोने में रह रहे कलाकारों को देखने सुनने का मौका मिला। और इसी बहाने वो जानकारी मिली कि आजकल लोग क्या प्रस्तुत कर रहे हैं और उन्होंने प्रस्तुतिकरण की कैसी शैली अपनाई है।

इस क्रम में कई ऐसे कत्थक कलाकारों को देखा जो बिहार कभी नहीं आए कार्यक्रम करने। लेकिन चूँकि उनकी प्रस्तुतियाँ उपलब्ध हैं डिजिटल पटल पर तो उन्हें देख रही हूँ। ये विभिन्न राज्यों और भिन्न भिन्न भाषा भाषी देशों से हैं, लेकिन कथक नृत्य उन्हे एक सूत्र में पिरोये हुए है।

इन सबको देख कर ये महसूस हुआ कि आज की युवा पीढी में कथक नृत्य शैली को लेकर कितना आकर्षण है। उनके पोशाक और परिधान में बहुत विविधता है। लेकिन इससे अधिक गौर करनेवाली बात है कथक नृत्य के परंपरागत स्वरूप और ढाँचे के प्रति उनकी सोच और उसके प्रस्तुतिकरण में आसमानता। सभी एक-दूसरे से बिलकुल ही अलग लग रहे हैं।

स्पष्ट है कि आज के शास्त्रीय कथक नृत्य में कई नए आयाम विकसित हो गए हैं। सुर, ताल, लय, भाव से बिलकुल सजा-धजा लगता है सब कुछ। ये कहना गलत नहीं होगा कि हर कलाकार नेअपनी परिकल्पना से इसे समृद्ध करने की ईमानदार कोशिश की है। आज यह सम्पन्न दिखाई देता है, चाहे बोलों की सघनता हो या मुद्राओं का सुन्दर प्रयोग। बल्कि यह भी कहना सही रहेगा कि आज का कथक नृत्य सौन्दर्य बोध की दृष्टि से अति सुन्दर और ग्राह्य हो गया है। नृत्य में कुछ ऐसी चीजें जुड़ गई हैं कि यह आम लोगों को भी आनंद देता है और साथ ही विद्वान भी इसकी क्लिष्टता को समझ पाते हैं।

लेकिन इन सारी समृद्धियों के बावजूद मुझे आज के कथक प्रस्तुतिकरण में कई कमी महसूस हो रही है। मुझे याद आ रहे हैं साठ-सत्तर के दशक के कथक कलाकार और उनकी कथक प्रस्तुतियाँ।

इन दिनों अपनी उम्र के ऐसे पडाव पर हूँ मैं जब 40-45 वर्षों के मंचीय कार्यक्रम का अनुभव मेरे साथ चल रहा है। और उससे और अधिक लंबा अनुभव है देश भर के कत्थक कलाकारों को देखने-समझने का। बिहार की राजधानी, पटना में ही कथक नृत्य के सभी घराने, जयपुर, लखनऊ, बनारस और रायगढ के लगभग सभी कलाकारों को देखा है। पंडित बिरजू महाराज, दमयंती जोशी, रोशन कुमारी, सितारा देवी, गोपीकृष्ण, अलकनंदा, मधु मिश्रा से लेकर सुश्री उर्मिला नागर, वंदना सेन, माया चैटर्जी, पंडित दुर्गा लाल, प्रताप पवार और प्रिया पवार, सुनैना हजारीलाल, ब्रोजेन मुखर्जी, मधुरिता सारंग इत्यादि कलाकारों को इसी शहर में कई- कई घंटे कार्यक्रम देते देखा है। बल्कि सितारा देवी की दोनो शिष्याएँ, जयँती माला और प्रिया माला, पं कृष्णा महाराज, शाश्वती सेन, विभा दाधीच, गीतांजलि लाल, इत्यादि भी यहाँ खूब आए और पटना के कई मंचों पर कार्यक्रम देते रहे हैं।

इनमें से कइयों के साथ खूब मिलना - जुलना भी हुआ और बहुत लंबी बातचीत भी होती रही। दरअसल उन दिनों बिहार में शास्त्रीय संगीत- नृत्य समारोह बहुत होते थे और शहर का दशहरा और दीपावली पर्व तो इन्ही समारोहों की वजह से विख्यात था। देश के लगभग सभी कत्थक कलाकार यहाँ बार-बार आते थे। ऐसे कलाकारों से लगातार संपर्क बना रहा. इस बीच मैं स्वयं नलिन कुमार गांगुली से कत्थक सीख रही थी जो पंडित शंभु महाराज और पंडित अच्छन महाराज के शिष्य थे। बल्कि गांगुली बाबू ने पंडित जयलाल जी से भी मार्गदर्शन लिया था। अत: जयपुर घराने की भी कई चीजें थीं उनके पास। बाद के वर्षों में मुझे रायगढ घराने के गुरू पंडित कार्तिक राम और पंडित कल्याण दास महंथ से भी मार्गदर्शन मिला था। मुम्बई में हुए अपने हर कार्यक्रम के बाद मैं भोपाल जाकर पंडित कार्तिकराम जी से मार्गदर्शन लेती रही थी।

और जब मैंने कथक नृत्य में शोधकार्य करना शुरू किया तो चूँकि मेरे शोध का विषय था, 'कथक के प्रयोगधर्मी कलाकारों की विशेषताएं', तो इस सिलसिले में कई कलाकारों से मिली मैं और उनसे लंबी बातचीत के दौरान इस नृत्य परंपरा के प्रति उनकी सोच और विचार को जाना। इस दौरान बिहार के कोने कोने से लेकर देश के अलग- अलग राज्यों में अनगिनत कार्यक्रम किए मैंने और दूसरे कलाकारों को भी देखा। इस पूरी

प्रक्रिया में कथक नृत्य का एक खास स्वरूप मन में बैठ गया था जो इस शास्त्रीय नृत्य का एक बहुत ही सुंदर, समृद्ध, और संश्लिष्ट रूप था।

आज उस दौर के कार्यक्रमों और प्रस्तुतियों को याद करती हूं तो पाती हूँ कि जो शास्त्रीय कथक नृत्य सत्तर-अस्सी के दशक में प्रस्तुत किये जाते थे वे आज की प्रस्तुति से कितने भिन्न थे।

उन दिनो नृत्य में सरगमों की भरमार नहीं होती थी और न ही आरंभ में उठान प्रस्तुति करने की कोई परम्परा थी।

हस्तक मुद्राएँ भी उस समय निश्चित ही हुआ करती थीं। स्थानक के अतिरिक्त आमद में और टुकड़ों की एक निश्चित मुद्रा होती थी। बोलों के संयोजन से ही ये बात समझ में आ जाती थी कि यह आमद है और सम पर आने की मुद्रा से स्पष्ट हो जाता था कि यह टुकड़ा है या कि परन।

ये तो हुई कथक के आधारभूत स्वरूप की बातें। इनके अलावा इसके प्रस्तुति करण में जो कुछ खास बातें होती थीं उन दिनों, वे भी कथक के इतिहास का महत्वपूर्ण अंग है। साठ के दशक से लेकर अस्सी के दशक तक पटना में दिग्गज कथक कलाकारों के जिन मंचीय प्रस्तुतियों को देखा मैंने, उसकी कुछ खास बातें तो अभी तक भूली नहीं हैं।

आज डिजिटल पटल पर अनगिनत कलाकार हैं और उनकी प्रस्तुतियों की भरमार है, लेकिन कहाँ हैं कथक की वह शैली जब कलाकार मंच पर आते ही अपने मन से बोलों की झड़ी लगा देते थे?

किधर गया कथक प्रस्तुति में उपज का वह सौन्दर्य जो कलाकार तबला वादकों के लय-ताल के साथ लिपट कर एक अद्भुत स्वरूप मंच पर सृजित करते थे जो दर्शकों को बरबस खींच लेता था अपनी ओर। और भाव की उस अनंत सीमा पर ले जाता था जहाँ दर्शक ताली बजाना भी भूल जाते थे। आज कथक नृत्य के मंचीय कार्यक्रमों के उस अद्भुत क्षणो की कमी महसूस हो रही है।

वैसे आज का नृत्य देखकर अच्छा लगता है, परन्तु उस आनंदातिरेक की कमी खलती है। इस संदर्भ में मुझे याद आ रहा है 1974 में पटना के राजेन्द्र नगर इलाके में हुआ दशहरा का वह संगीत- नृत्य समारोह जिसमें शामिल हुईं थीं नृत्य साम्राज्ञी श्रीमती सितारा देवी और उनकी तीन शिष्याएँ। पहले तो तीनो शिष्याओं ने प्रस्तुति करण दिए और इसके बाद मंच पर आईं सितारा जी।

उनकी प्रस्तुति में एक ओर शिव का वो रूप था जिसने पूरे ब्रह्माण्ड को रचा, तो दूसरी ओर था भगवान श्रीराम का सुकोमल भाव। प्रसिद्ध भजन 'ठुमकि चलत रामचंद्र..' पर सितारा जी श्रीराम के बाल लीला पर ऐसा भाव दिखातीं थीं मानो मंच पर बालक राम राम साक्षात् अवतरित हो गए हों। इसके बाद बड़े-बडे चक्करदार बोल किए उन्होने और फिर छन्द, गत निकास का ऐसा सुन्दर संयोजन दिखाया उन्होंने कि दर्शक सम्पूर्ण कथक नृत्य से अभिभूत हो उठे थे।

बल्कि पारम्परिक शास्त्रीय नृत्य का एक रूप पद्मभूषण रौशन कुमारी की प्रस्तुति में भी अनेकों बार देखती रही हूँ। आरंभ में वे स्तुति करती थी और इसके तुरंत बाद वे पैरों से पेशकार प्रस्तुत करती थीं। यह पक्ष मुझे अत्यधिक पसंद था। उनके नृत्य की एक और विशेषता थी। वह थी 'भ्रमरी'। वैसे तो आज सभी ये करते हैं, मगर उनका अन्दाज बिल्कुल अलग हुआ करता था। उनके पद संचालन और हस्तकों में जो गठन और कसाव होता था, वो अब विरले कहीं देखने को मिले।

बल्कि इस प्रसंग में मुंबई की जयपुर घराने की नृत्यांगना, मधुरिता सारंग की चर्चा भी महत्वपूर्ण है। इन्हें मैंने 1978 में पटना के गोरिया टोली इलाके में हुए दशहरा समारोह में देखा था। उनके साथ तबला संगति के लिए मंच पर थे पद्मश्री विभूषित पं सामता प्रसाद उर्फ गोदई महाराज।

रात के दो बज रहे थे। पंडाल दर्शकों से खचाखच भरा था। पैर क्या तिल रखने की जगह नहीं थी वहाँ। मधुरिता जी मंच पर आईं और आरंभ की वंदना के बाद कुछ बोल किए तो गुदई महाराज जी ने फिर तबले का काम दिखाना शुरू कर दिया। मधुरिता जी ने घुँघरू से उसका जवाब दिया, लेकिन महाराज जी वहाँ रुके ही नहीं। स्पष्ट था कि मंच पर दो दिग्गज कलाकार आपस में उलझ गए थे। एक ओर मधुरिता सारंग जी घने चक्करदार बोल प्रस्तुत करतीं तो, दूसरी तरफ़ गोदई महाराज जी उन बोलों का शीघ्र ज़वाब देने से नहीं चूकते थे। फिर जब महाराज जी बोल बजाते तो, मधुरिता जी उसे शीघ्र ज़वाब देती थीं।

यह सिलसिला मंच पर घंटों तक चलता रहा। दर्शक तालियाँ बजाते रहे। बल्कि बीच -बीच में पंडाल में पीछे बैठे लोग उत्साह में कुर्सियों पर खड़े हो जाते थे। कथक प्रस्तुतिकरण का यह स्वत: स्फूर्त क्षण, यह सहज अभिव्यक्ति अब तो कहीं दिखती ही नहीं।

बल्कि ऐसे ही अद्भुत क्षण अक्सर देखने को मिलते थे जयपुर घराने की ही पद्मश्री विभूषित उर्मिला नागर जी के कार्यक्रमों में। सत्तर अस्सी के दशकों में हर साल उन्हें पटना के मंचों पर देखती ही थी। दशहरा महोत्सव में तो वो पटना के किसी न किसी मंच पर होती थीं, बल्कि दीपावली पर स्टेट बैंक परिसर में होनेवाले समारोह में वो अनिवार्य रूप से शामिल होतीं और उनके साथ तबला पर कभी होते लखनऊ के उस्ताद बल्लू खाँ तो कभी पं गोदई महाराज और पैरों के काम के बीच तबला और घुँघरू के ध्वनियों का जो तालमेल बनता था, वह स्मरणीय है। उन्होने पटना में अनगिनत कार्यक्रम किए। वो बीच बीच में बहुत सुरीले गीत सुनाती थीं और फिर उस पर भाव नृत्य जो रात 12 बजे से सुबह 4 बजे तक अनवरत चलता रहता था। नटवरी नृत्य और बोलों का जैसा सुन्दर संयोजन उनके नृत्य में था, वह अब प्राय: नहीं दिखता। लेकिन यहाँ एक सत्य यह भी है कि कला हमेशा से परिवर्तनशील रही है और इसकी धारा में प्रवाह हो, तभी यह स्वस्थ्य और हमेशा समकालीन रहेगा।

लेखिका : कथक कलाकार, निदेशक, कलात्रयी,
आसावरी, एन 9, प्रोफेसर कॉलोनी, मुन्ना चक, कंकडबाग,
पटना-800020. मो: 9523474337

■

पंजाब का संगीत और लोकनृत्य

डॉ. प्रिया सूफी

आदि काल से लोक कलाएं मनुष्य को उसकी मिट्टी से कलात्मक जुड़ाव प्रदान करती रही हैं। यह कलाएं मात्र कलाएं ही नहीं उस समय विशेष की कलात्मक, रचनात्मक, भावनात्मक एवम् सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति हैं जो उस समय विशेष की सांस्कृतिक विरासत को अगली पीढ़ी तक पहुंचाने में मुख्य भूमिका अदा करती है। यह प्राचीन परंपराएं हमारे देश के हर प्रांत को भांति -भांति से समृद्ध उन्नत व संपन्न करती हैं। पंजाब भी इस कलात्मक अभिव्यक्ति से अछूता नहीं है।

पंजाब की धरती पर प्राचीनतम सभ्यता सिंधु घाटी की सभ्यता मानी जाती है जिसमें मिले विरूपण साक्ष्य अथवा कलाकृतियां इस सत्य को उद्घाटित करती हैं कि इस मिट्टी की विरासत में केवल मूर्तिकला, पात्र , वासन, शिल्प, नक्काशी, मोहरें, आभूषण इत्यादि ही नहीं, बल्कि इन के साथ-साथ नाट्य मुद्राओं से सुसज्जित मूर्तियां भी मिली हैं। यह प्रतिमाएं पंजाब की कलात्मक विरासत में लोक नृत्य की सशक्त भूमिका को भी प्रकट करती हैं। इन मूर्तियों से स्पष्ट है कि लोक नृत्य लगभग पांच हजार ईस्वी पूर्व से पंजाबी जन जीवन का हिस्सा रहे हैं। भारत का उत्तर - पश्चिमी सीमांत प्रांत होने के नाते पंजाब हमेशा से राजनीतिक उथल - पुथल का शिकार रहा है। हर विदेशी आततायी, आक्रमणकारी इसी भारतीय प्रवेश द्वार से भारत आया और इस सोने की धरती को उजाड़ता चला गया। परंतु उजड़ने, बसने की इस खतरनाक प्रक्रिया में तमाम विसंगतियों के बीच पंजाबियत अपनी समस्त जीवंतता से प्रकट होती रही है।

कुषाण काल के संगीत संदर्भ इस भूमि से मिल जाते हैं। प्राकृत ग्रंथों में अंग विज्जा को कुषाण और गुप्तकाल की संधि का माना जाता है जिसमें संभवत: पहली बार बारामासा का वर्णन मिलता है। उसमें वसंत, फागुन आदि महीनों का जो चित्रण है, वह पूरी संगीतमयता का पोषक है। कहा गया है कि जब आम्र मंजरी निकलती है, कोयल शब्द करती है, उस समय गाने बजाने और हंसी खुशी के साथ स्त्री पुरुष आपानक प्रमोद में मगन होते हैं। जपा, इंदीवर, श्यामाक के फूलों से आंदोलित ऋतु का नाम वसंत है जिसमें मानव मस्त होकर नाचने लगता है।

वर्षाकाल में तो प्रकृति भी संगीत में मुग्ध होती है : दद्दुर मयूर गज्जित पडिरूवे पाउसं बूया। यह ग्रंथ संगीत के स्वर और संगत से निमित्त जानने पर विचार करता है। कुछ ध्वनिदार वाद्यों के निर्माण के लिए तब तांबा, काललोह, कांसलोह, हारकूट आदि का उपयोग होता था। तब संगीत के आयोजनों के लिए मंडल भूमि, यज्ञ पाटक, उठ्ठिय पट्टग, देवायतन आदि उपयोगी माने जाते थे।

संघोल के शिल्प को देखते हुए इन संदर्भों का अध्ययन सत्यापित होता लगता है। वहां नायकों को नायिका को उठाते हुए, नर्तन करने वाली को मुंडेर से देखना, कुहनी पर मटका रखकर दिखाना और मुख वाद्य यन्त्र को बजाना जैसे शिल्प उदाहरण संगीत कला की व्यापकता के सुंदर प्रमाण हैं। हमें यह समझना होगा कि कुषाण कला के अनेक शिल्प रूप आगे चलकर भारतीय मंदिर शिल्प में शामिल होते चले गए। परवर्ती काल की ऐसी अनेक मूर्तियां हैं जिनका मूल संघोल आदि की कला में देखा जा सकता है।

समस्त उथल -पुथल के बीच नृत्य इस उर्वरा भूमि की धड़कन रहे हैं। प्राचीन समय से ही पुरुष और स्त्रियों के लोक नृत्य प्रचलन में रहे हैं, परंतु एक साथ स्त्री पुरुष का नृत्य पंजाब में कम ही देखने को मिलता है।

इन लोक नृत्यों में गिद्दा, सम्मी, किकली इत्यादि स्त्रियों के नृत्य हैं, जबकि भांगड़ा, झूमर और मलवयी गिद्दा आदि पुरुषों के नृत्य रहे हैं। पंजाब की स्त्रियां देहयष्टि से मज़बूत, खूब लंबी और लावण्य से भरपूर होती हैं। उनके नृत्य भी उनके समाज में स्थान, परंपरा, विश्वास, रीति रिवाज और उनके कार्य कौशल को दरसाते हैं। पंजाब की लोक कलाओं के महत्त्वपूर्ण भाग को संभालने एवम् अगली पीढ़ी तक पहुंचाने का कार्य भार भी इन खूबसूरत पंजाबनों के जीवन का हिस्सा है।

औरत की मानसिकता, शौक, पहरावा और कौशल को यही लोक नृत्य उद्घाटित करते हैं। जबकि पुरुषों के लोक नृत्य उनकी शारीरिक सुडौलता, उनके जिंदादिल स्वभाव और साहस से भरपूर जीवन को व्याख्यायित करते हैं। आधुनिक समय में पंजाब के लोक नृत्य के रूप में केवल गिद्दा एवम् भांगड़ा ही प्रचलित व प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त सम्मी, किकली, झूमर और मलवयी गिद्दा भी कुछ हद तक अपना स्थान बना चुके हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी नृत्य हैं जो समय के साथ – साथ अपना मूल स्वरूप खो कर गिद्दे एवम् भांगड़े के कुछ स्टेप्स बन कर रह गए हैं। जिनमें लुड्डी, हुल्ले– हुलारे, सपेरा, घूमर और धमाल आदि ऐसे ही नृत्य हैं जो अब अलग नृत्य न रह कर केवल गिद्दे या भांगड़े की मुद्राओं के रूप में ही प्रयुक्त होते हैं।

लुड्डी

लुड्डी नृत्य अपनी मुद्राओं की चंचलता, लचक और मस्ती के कारण स्त्रियों का नृत्य माना जाता है। यह आमतौर पर सांझे पंजाब के उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों में अधिक प्रचलित है। लुड्डी पाना का अर्थ है: खुशी को प्रकट करना। दरअसल लुड्डी ढोल की ताल पर लचकीले अंदाज़ में नाचने का नाम है, जो किसी जीत की खुशी को मनाने के लिए नाचा जाता है। पंजाबी लोक समाज में किसी युद्ध, मुकद्दमें यहां तक कि किसी मैच इत्यादि को जीतने की खुशी को व्यक्त करने के लिए लुड्डी डालने का रिवाज़ आम है।

विवाह आदि की रस्मों के समय भी लुड्डी पाने का प्रचलन पंजाब में रहा है। देश के बंटवारे के बाद यह नृत्य भारत से अधिक पाकिस्तान में प्रचलित हो गया। पाकिस्तान के सांदल बार क्षेत्र में लोग झूमर और लुड्डी नृत्य करते हैं, जिसे लुड्डी डालना और झूमर घतना कहा जाता है। पंजाब के लोक नृत्यों में केवल लुड्डी ही ऐसा नृत्य है जो स्त्री पुरुष दोनों द्वारा नाचा जाता है, परंतु दोनों एक साथ यह नृत्य नहीं करते। बल्कि स्त्री पुरुष अलग अलग लुड्डी डालते हैं। आधुनिक समय में मंच अथवा सांस्कृतिक मेलों में स्त्री पुरुष एक साथ भी लुड्डी नृत्य करते देखे जाते हैं।

पाकिस्तानी क्षेत्र स्यालकोट और गुजरांवाला में लुड्डी भांगड़े के साथ ही डाली जाती है। भांगड़ा नृत्य लुड्डी की ताल से ही शुरू होता है।

लुड्डी में बजाई जाने वाली ताल एक ही प्रकार की होती है जो तोड़े के अंत में कभी तेज़ तो कभी धीमे बजाई जाती है। भांगड़े और लुड्डी में केवल इतना ही अंतर है कि भांगड़े में ढोल बजाने वाला जिसे पंजाब में ढोली कहा जाता है, वह भांगड़ा नृत्य करने वालों से थोड़ी दूरी पर खड़ा हो कर ढोल बजाता है, जबकि लुड्डी लोक नृत्य में ढोली नाचने वालों द्वारा बनाए गोलाकार घेरे के बिल्कुल बीच में खड़ा होकर ढोल बजाता है।

लुड्डी लोक नृत्य में अंग मुद्राओं की कोई खास बंदिश नहीं होती परंतु ढोल की ताल से भटकना बिल्कुल स्वीकार्य नहीं होता। आँखें मटकाना, कमर लचकाना, कंधे हिलाना और साथ साथ छाती के पास ताली बजाना और यह सब चक्कर के अंदर घूमते हुए मस्ती से झूमते हुए करना अलग ही आनंद देता है। और अगर जोड़ी में हो तो नाचते हुए सामने वाले को देख कर खुशी से मुस्काना, हंसना और रोमांटिक अंदाज़ से आंखों से इशारे करना इस नृत्य को और भी मनमोहक बना देता है। यह नृत्य मूक शब्दों में ऐसा संवाद करता है कि नृत्य करने वाले ही नहीं देखने वालों के हृदय के तार भी झंकृत हो जाते हैं। मुहब्बत, आपसी भाईचारे और अपनत्व का ऐसा संवाद जिसके लिए गीत के बोलों की जरूरत महसूस नहीं होती।

हालांकि आजकल बार क्षेत्र में लुड्डी नाचते समय मिर्जा, सस्सी पुन्नू और हीर रांझे की कहानियों से संबंधित गीत गाए जाते हैं। मालवे में स्त्रियां लुड्डी डालते समय बोलियां भी डालती हैं। इन बोलियों के विषय मुख्य रूप से इन घरेलू स्त्रियों के मन के भाव होते हैं। ज्यादातर इनमें खुशी और उल्लास की भावना होती है। एक बानगी देखिए:

असीं कठियां होके आईयां, रल लुड्डियां धमलां पाईयां।
वे साडे खेडन दे दिन चार, तूं साडे वल्ल वेख जरा।
वे मैं लुड्डी पई पवेनी आं यार, तूं साडे वल्ल वेख़ ज़रा।
शाला मेरा जीवे ढोला, वट्टां बंबल मैं खेसां दे,
कल्ली दा चित्त न लगदा, माहिया बिच परदेसां दे,
असीं माहिए गांवागे,
अज्ज साडे माहिए ने आउना, रल लुड्डियाँ पांवांगे।

पुरुष लुड्डी नृत्य करते हुए कोई गीत या बोली इत्यादि तो नहीं गाते, परंतु नृत्य की ताल व लय के अनुसार कुछ आवाज़ें और शब्द बोलते हैं जिससे नाचने वाले के पैर और ढोली के ढोल की आवाज़ में एकसुरता हो जाती है। जैसे:

ऐ.. ऐ.. ऐ...ऐ.. ऐ.. ऐ... आ....
हईशा.... ओ लुड्डी हईशा...
ओ बल्ले बल्ले बल्ले बल्ले बल्ले....
अशके... आ... लुड्डी...
शावा... ओए लुड्डी...
ओए होए लुड्डी...!

भांगड़ा

पंजाब में दो नदियों के बीच के क्षेत्र को दोआब कहा जाता है। भांगड़ा अपने मस्त अंदाज़ और प्रसन्नता प्रकट करने की विशिष्ठ शैली के कारण केवल पंजाब ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में अपनी पहचान बना चुका है। कृषक जीवन विशेषकर युवाओं का यह नृत्य कृषि के प्रत्येक पक्ष से संबंधित है। गेहूं की फसल काटने, बैसाखी पर्व और अन्य सांस्कृतिक उत्सवों में इस नृत्य का होना अनिवार्य है। कोई भी पंजाबी उत्सव इस नृत्य के बिना अधूरा है। ढोल की थाप के साथ केवल नाचने वाले ही नहीं बल्कि दर्शक दीर्घा में बैठे लोगों का उत्साह अद्भुत समय बांध देता है।

भांगड़ा लोक नृत्य में नर्तकों की पोशाक भी उनके निराले अंदाज़ के समान रंग -बिरंगी व कुछ हद तक भड़कीली भी होती है। नर्तक ढीले कुर्ते पर रंग- बिरंगी जैकेट और लुंगी जिसे पंजाब में चादरा कहते हैं पहनते हैं। सर पर मोरपंख के समान खिली हुई पगड़ी जिसे तुरले वाली पग्ग बोलते हैं, पहनी जाती है। इस पगड़ी को शमला भी कहा जाता है। इसके साथ गले में एक खास पुरुषों का हार जिसे कैंठा कहते हैं,पहना जाता है, और कानों में बाले पहनते हैं। पैरों में घुंघरू भी बांधे जाते हैं और हाथ की सबसे छोटी उंगली में रंग बिरंगे रूमाल भी बांधे जाते हैं। ढोल के साथ साथ तुम्बी, बांसुरी जिसे पंजाब में वंझली कहा जाता है, अल्गोजा और सारंगी और घड़े के सुर ढोल की थाप को और भी सुरीला बना देते हैं। ढोल की धीमी आवाज़ को कहरवा ताल कहा जाता है, जो चार मात्रा वाली होती है। परंतु इसका प्रयोग आमतौर पर लुड्डी नृत्य में किया जाता है। जबकि भांगड़ा में बजाई जाने वाली कहरवा ताल आठ मात्रा वाली अर्थात् तेज़ गति वाली होती है।

भांगड़े में नाचते समय घुंघरू लगा एक डंडा भी नृत्य की मुद्राओं के साथ प्रयुक्त होता है, इसके अतिरिक्त काटो अर्थात् एक लकड़ी के डंडे के ऊपर एक पक्षी सा बना कर उसके मुंह को खोलने, बंद करने के लिए धागा बंधा होता है जिसे ढोल की थाप के अनुसार लय में चलाया जाता है। और सांप या कैंची जो लकड़ी का बना एक यंत्र है जिसे भी लय में खोला और बंद किया जाता है।

भांगड़ा बोलियों के साथ डाला जाता है। सबसे पहले ढोली बोली डालता है और बोली के अनुरूप ही सभी नर्तक मुद्राएं बनाते हैं। फिर ढोली बोली के अंत में ढोल को थाप देता है और भांगड़ा शुरू हो जाता है। एक प्रसिद्ध बोली देखिए:

देस पंजाब दे मुंडे सुनींदे, हिक्कां रखदे तन्नियां,
कट्ठे होके पौन बोलियां, मुच्छां रखदे खड़ियां,
रल मिल के एह पांओंदे भांगड़े,
साहिंदे न किसे दियाँ तड़ियां,
ऐर गैर नाल गल्ल नी करदे, विआह के लिओंदे परियां,
बेलां धर्म दियां जुग जुग रहन हरियां... वेलां धर्म दियाँ...!

इस प्रकार यह लोक नृत्य पंजाब की जिंदादिली और शारीरिक सौष्ठव के प्रदर्शन का खूबसूरत अंदाजे बयां है।

लेखिका: पंजाबी, हिंदी और अंग्रेजी में नियमित लिखती हैं। कवि नंददास की कोशकला पर पीएचडी की है)
Dr. Priya Sufi
Smt. P. D. Arya mahila sr.sec. school Bahadurpur chowk
Hoshiarpur Punjab Pin-146001 Mob.9878612556

हमारी संस्कृति में आध्यात्मिक ग्रंथों का है विशेष महत्व : अशोक पांडेय

वरिष्ठ लेखक श्रीराम माहेश्वरी की पुस्तक 'भक्ति सिद्धि और राम' का लोकार्पण विश्व संवाद केंद्र में किया गया। मुख्य अतिथि पूर्व अध्यक्ष मप्र लोक सेवा आयोग अशोक पांडेय ने अपने उद्बोधन में कहा कि भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक ग्रंथों का विशेष महत्व है।'भक्ति सिद्धि और राम' पुस्तक में केवल आध्यात्मिक महत्व की बातें ही नहीं है, इसमें सामाजिक पहलुओं को भी समाहित किया गया है। अध्यक्षता करते हुए सप्रे संग्रहालय के संस्थापक संयोजक पद्मश्री विजयदत्त श्रीधर ने कहा कि रामायण, महाभारत और गीता भारत के महान ग्रंथ हैं। इनका पारायण करके मनुष्य आध्यात्मिक विकास कर सकता है। उन्होंने ग्रंथों की उपयोगिता बताते हुए कहा कि लगभग दो शताब्दियों पहले भारत से सैकड़ों मजदूरों को छलपूर्वक मारीशस, फिजी, त्रिनिदाद आदि अनेक दीपों में उपनिवेशों में काम करने के लिए ले जाया गया था। यह मजदूर अपने साथ तुलसी पौधा, गंगाजल और रामायण भी ले गए थे। भारतीय संस्कृति और अध्यात्म की इन तीनों महान विरासतों ने उन्हें जीवित रखा। उन्होंने बंजर द्वीपों को समृद्ध भी किया। विशिष्ट अतिथि माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के कुलगुरु विजय मनोहर तिवारी ने कहा कि भक्ति से सिद्धि प्राप्त होते ही व्यक्तित्व राममय हो जाता है। सारस्वत अतिथि प्रभुदयाल मिश्र ने सिद्धियों के प्रकार व उनके योग में महत्व का वर्णन किया। पुस्तक पर अपने विचार गीतकार ऋषि श्रृंगारी ने रखे। श्रीराम माहेश्वरी ने अपनी कृति की विषयवस्तु के संदर्भ में बताया कि 'भक्ति सिद्धि और राम' पुस्तक में भक्ति का परिचय, मानस में नवधा भक्ति, श्रीमद् भागवत में भक्ति, श्रीमद्भगवत गीता में भक्ति तथा पूज्य संतों की राम भक्ति का विवरण प्रकाशित किया गया है। स्तुति, उपासना और सिद्धि की व्याख्या की गई है। अगले अध्यायों में भगवान श्रीराम की कथाओं का संक्षिप्त वर्णन है। कार्यक्रम में स्वागत वक्तव्य अर्चना प्रकाशन के निदेशक ओमप्रकाश गुप्ता ने दिया। संचालन अखिल भारतीय साहित्य परिषद की महामंत्री सुनीता यादव ने किया।

आलेख

भगोरिया और नृत्य की हिलोरिया

डॉ. शोभा सिंह

मध्य प्रदेश की लोक संस्कृति का जीवंत उत्सव है भगोरिया। मध्यप्रदेश जिसे हिंदुस्तान का दिल कहा जाता है, अपनी समृद्ध लोक संस्कृति और आदिवासी परंपराओं के लिए विख्यात है। यहां की नर्मदा, ताप्ती और विंध्य की पहाड़ियां न केवल प्रकृति की गोद में बसी हैं, बल्कि संस्कृति की उस धड़कन को भी संजोए हैं, जो हर उत्सव में जीवंत हो उठती है। इन उत्सवों में भगोरिया नृत्य एक ऐसा रंग है, जो मध्य प्रदेश के आदिवासी जीवन की उमंग, प्रेम और स्वतंत्रता को उकेरता है। फाल्गुन की रंग-बिरंगी हवाओं में, जब होली का उल्लास चारों ओर बिखरता है, झाबुआ, धार, खरगोन और अलीराजपुर जैसे आदिवासी क्षेत्रों में भगोरिया का मेला सजता है। यह नृत्य केवल कदमों की थिरकन नहीं, बल्कि प्रेम की अभिव्यक्ति, संगीत की लय और सामाजिक बंधनों से मुक्ति का उत्सव है।

खरगोन में आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में जब धार से आए लोक कलाकारों के दल ने सुरंगे परिधान,पारंपरिक अलंकरण, चांदी/गिलट के गहने ,आकर्षक दागीने धारण कर पारंपरिक संगीत व अपने लोकवाद्यों की धुन पर उत्साहपूर्ण नृत्य प्रस्तुत किया तो कुछ क्षणों के लिए लगा कि विशाल सभागार और मंच किसी ग्राम्य हाट में परिवर्तित हो गया हो, जहाँ पर्व के आनंद में डूबा जनसमूह भगोरिया की उत्सवा लय पर थिरक रहा है।अपनी जनजातीय कलाओं से परिचित कराते ये अरण्य संस्कृति के वाहक कलाकार बेहद सरल और विनम्र हैं। लोकरंग में इनसे मिलकर पर्व का आनंद सहस्र गुना बढ गया। नृत्य प्रस्तुति के पश्चात उनसे संक्षिप्त संवाद हुआ। शहरी परिवेश से दूर प्राकृतिक सौंदर्य की धात्री वो श्यामला मुझे किसी पर्वतीय तरंगिणी सी निश्छल लगी। गहनों से सज्जित वो सारंगाक्षी अपनी सुंरगी लंबी बरौनियों से युक्त सजलता में तैरती अँखड़ियों को झपकाते मुझसे बात कर रही थी। जब मैंने 'कितनी सुंदर हो तुम!' कहा तो उसकी खिलखिलाहट ज्वार के दूधिया दानो सी बिखर गयी और उसके प्रत्युत्तर से मैं निहाल! एक गहरी स्मित कहीं भीतर तक उजास के चौक पूर गयी। सचमुच जिसके हृदय में सरलता है, संतोष है, हर्ष का सागर है वही दूसरों को आनंदित करेगा मुस्कान बांटेगा। वाद्य संस्कार उनसे सीखे समझे जा सकते हैं मांदल, थालीसर वाद्य, मुरली उनके राग साधना के उपकरण हैं। लोकप्रज्ञा ने राग को वर्ण का पर्याय बताया है भगोरिया पर्वोत्सव पर लोकधुनों से झरते रंगों की बौछार फागुनी उल्लास से भिगो गयी।

कल्पना करें उस मंजर को, जब सूरज की सुनहरी किरणें पश्चिमी मध्य प्रदेश की पहाड़ियों पर पड़ती हैं और हाट-बाजार मेले की रौनक में बदल जाते हैं। भील, भिलाला और अन्य जनजातियों के युवक-युवतियां अपनी पारंपरिक वेशभूषा में सजकर आते हैं। युवतियां रंग-बिरंगे घाघरे, चोली और चांदी के भारी आभूषणों—जैसे कानों में झुमके, गले में हार और कमर में करधनी—से सजी होती हैं। युवक धोती-कुर्ते, रंगीन पगड़ी और कंधे पर रंग-बिरंगा गमछा डाले नजर आते हैं। ढोल की गूंज, मांदल की ताल और बांसुरी की मधुर धुन के बीच नृत्य शुरू होता है, जहां समूह में गोल-गोल घूमते हुए नर्तक-नर्तकियां प्रकृति के साथ एकाकार हो जाते हैं। यह नृत्य होली से सात दिन पहले शुरू होता है और धुलेंडी तक (होली का अंतिम दिन) तक चलता है,

भगोरिया मेलों की सांस्कृतिक जड़ें गहरी हैं। किंवदंती है कि परमार वंश के राजा भोज के समय, दो भील राजाओं, कासूमार और बालून ने अपनी राजधानी भागोर में विशाल मेले की शुरुआत की। यह परंपरा धीरे-धीरे फैली और 'भगोरिया' के नाम से जानी गई। भगोरिया केवल नृत्य या मेला नहीं, बल्कि एक सामाजिक व्यवस्था भी है, नृत्य संगीत खान पान से सजा उत्सव है।

भगोरिया का प्राणतत्व उसका संगीत और गीत हैं। ढोल और मांदल की थाप, बांसुरी की मधुर धुन और घुंघरुओं की झंकार इस नृत्य को जीवंत बनाती है। मांदल, जो भील समुदाय का पारंपरिक वाद्य यंत्र है,

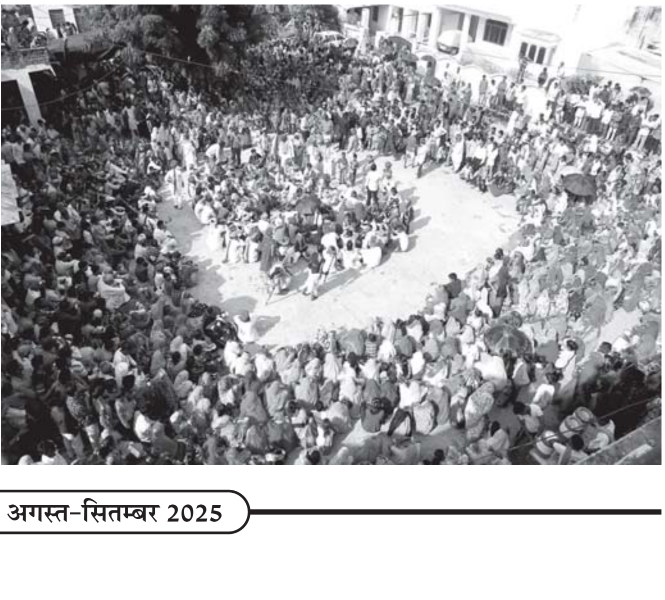

नृत्य को गति देता है, जबकि बांसुरी प्रेम की कोमल भावनाओं को उकेरती है। गीतों में प्रकृति, प्रेम और जीवन की सादगी झलकती है। ये गीत स्थानीय भीली और निमाड़ी बोली में गाए जाते हैं, जो सुनने में सरल किंतु भावनाओं से भरे होते हैं।

एक पारंपरिक रोचक भगोरिया गीत का उदाहरण:

हाय रे मोर सजनिया, भगोरिया में आइयो रे,
ढोल बाजे, मांदल बाजे, नाचो संग में नइयो रे।
गुलाल उड़े, फागुन छाए, प्रेम की बाती जलइयो रे,
मेले में मोर मन बस गया, तुझ संग जिया चलइयो रे।

इस गीत में प्रेमी की पुकार है, जो फागुन के मेले में अपने प्रिय को बुलाता है। ढोल-मांदल की थाप पर नाचने की ललक और प्रेम की स्वीकारोक्ति इस गीत में साफ झलकती है। ऐसे गीत भगोरिया की आत्मा हैं, जो नृत्य को भावनात्मक गहराई देते हैं। ये गीत प्राय: मौखिक परंपरा से चले आ रहे हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी गाए जाते हैं।

सांस्कृतिक महत्व और वैश्विक पहचान

भगोरिया केवल स्थानीय उत्सव नहीं रहा, बल्कि इसकी ख्याति अब वैश्विक मंचों तक पहुंच चुकी है। अबू धाबी और जर्मनी जैसे देशों में भगोरिया नृत्य के प्रदर्शन हो चुके हैं, जहां इसकी जीवंतता और रंगों ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध किया। यह नृत्य मध्य प्रदेश की लोक संस्कृति की विविधता को दर्शाता है, जहां गोंड, भील, भिलाला और अन्य जनजातियां अपनी परंपराओं को जीवित रखती हैं। भगोरिया प्रकृति से गहरा जुड़ाव दर्शाता है—महुआ की खुशबू, फागुन की हवा और वन्य जीवन की लय इसके हर कदम में समाई है।

आज के शहरीकरण और आधुनिकता के दौर में भगोरिया जैसी परंपराएं और भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं। यह न केवल मध्य प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर को संजोए रखता है, बल्कि हमें यह भी सिखाता है कि जीवन की सच्ची खुशी सादगी, प्रेम और सामुदायिक उल्लास में छिपी है। भगोरिया का मेला वह मंच है, जहां प्रेम की स्वतंत्रता, संगीत की लय और नृत्य की थाप एक साथ मिलकर जीवन को रंगों से सराबोर कर देते हैं। भगोरिया नृत्य मध्य प्रदेश की लोक संस्कृति का वह अनमोल गहना है, जो प्रेम, स्वतंत्रता और प्रकृति के साथ सामंजस्य का प्रतीक है। इसके गीत और नृत्य की लय में आदिवासी जीवन की सरलता और उमंग झलकती है। यह उत्सव हमें याद दिलाता है कि सच्चा आनंद सामाजिक बंधनों से परे, प्रकृति के साथ तालमेल में है। भगोरिया केवल एक नृत्य नहीं, बल्कि एक जीवन दर्शन है, जो हमें प्रेम और उल्लास के रंगों में डूबने की प्रेरणा देता है।

संपर्क : साधना सदन राधा कॉलोनी आनंद डेयरी के पास,
गोदरेज शोरूम गली, गुना, जिला गुना (म.प्र.) 473001
मोबा. 9981524344

कला समय प्रकाशन

• सुरूचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग •आकर्षक गेटअप
•नयनाभिराम पेपरबैक में...

- कला समय प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पांडुलिपियाँ आंमत्रित करते है- चयनित पांडुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तों के अनुसार किया जायेगा।
- जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक अनुदित, संपादित रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है। वे कम्प्यूटर पर साफ- साफ अक्षरों में कागज की एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ कला समय प्रकाशन, भोपाल से संपर्क करें।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद, चर्चा आदि में समन्वय करना।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुविधा में समन्वय करना।

- भँवरलाल श्रीवास
निदेशक

आप स्वयं पधारे या सम्पर्क करें...

0755-2562294, 9425678058
kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

आलेख

गरबा – बेहतर उपज की खुशी की परंपरा

– डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

महालय पक्ष पूरा होते ही नवरात्र की दस्तक हो जाती है। यह उन सभी दिव्य–देवियों को याद करने का अच्छा अवसर है जो कहीं न कहीं कृषि के साथ जुड़ी रही हैं और जिन्होंने अन्नौषध का अनुसंधान कर मानवीय जीवन को अपने पुत्र की तरह पाला, पोसा। इनमें 'शाकम्भरी' देवी का नाम ज्ञेय है जिन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सभी जीवों के जीवन के लिए शाक को उत्पन्न किया और अपना नाम सार्थक किया। मार्कण्डेय पुराण, शिवपुराण, देवी पुराण आदि में यह मान्यता आई है। देवी पुराण में देवियों के नामकरण के लिए पुरानी कथाओं का आधार ग्रहण किया गया है।

यह अवसर गरबा जैसे नृत्य का भी है। यह मूलत कृषि के साथ जुड़ा रहा है। कार्तिक की फसल के अच्छी होने की खुशी का इजहार कभी किसानों ने अपने सुरक्षात्मक दण्डों को टकराकर किया होगा। यह दण्डनृत्य कहलाया। प्राचीनतम नृत्तसूत्रों में इसको 'दण्डरास' या 'लगुड़ रासक' कहा गया है। गुजरात और कच्छ से लगे राजस्थान के क्षेत्र में इसका प्रारंभिक प्रचार रहा। विशेषकर कृषि उत्पादक जातियों में यह प्रचारित था। नाटकलक्षण रत्नकोश में हल्लीसक नृत्य के नाम से इसी का सुंदर परिचय आया है :

जिसमें सात, आठ या नौ स्त्री पात्र रहते हैं, कैशिकी वृत्ति मुख्य होती है, लय और ताल से आबद्ध संगीत की प्रचुरता होती है, एक अंक, एक मुख्य पुरुष पात्र रखा जाता है। इसकी भाषा संस्कृत नहीं होती। केलिरैवतक के नाम से जिक्र है जिसकी व्याप्ति साहित्य दर्पण (6, 307) और अलंकार संग्रह (9, 149) में है और भाव प्रकाशन में भी मिल जाती है। (गांधर्ववेद : श्रीकृष्ण जुगनू) निश्चित ही लोक में जन्मे नृत्यों ने विशिष्ट रूप में शास्त्रीय मान्यताओं का पथ ग्रहण किया है न कि शास्त्र से कोई परम्परा लोक में आई। लोक का शिष्ट विचार ही शास्त्र की प्रतिष्ठा का उपक्रम होता है।

महाभारत के परिशिष्ट 'हरिवंश' में यह संकेत मिलता है कि गुजरात स्थित रैवतक पर्वत के आसपास इस नृत्य का प्रचार था जिसको अहीर गोपालकों ने अपनाया और उस समुदाय में यह इतना लोकप्रिय हुआ कि श्रीकृष्ण, बलदेव आदि के लिए एक सुखद आश्चर्य ही हो गया। तब तक इसमें एक नवाचार भी हुआ था। यह शरदपूर्णिमा तक पूर्णता को प्राप्त करता रहा। हालांकि ब्रह्मवैवर्त पुराण कार्तिक पूर्णिमा की स्मृतियों को कई बार दोहराता है।

आज यह देवी के आराधना का सूचक नृत्य हो गया है क्योंकि इसके साथ घट या गरबा का कहीं न कहीं संबंध है जो धन–धान्य से हुई सम्पन्नता को दर्शाता है। उत्तर गुप्तकालीन 'देवीपुराण' में कलश को रखकर आराधना, नृत्त गीतात्मक जागरण का जिक्र आता है, यह आज अपने नवीन रूप में है किंतु इसके साथ मूल स्वरूप और भाव भी जुड़ा हुआ है।

ताल प्रयोग में शक्ति स्तवन :

शक्ति को सभी भूतप्राणियों की ऊर्जा के रूप में स्वीकार करते हुए प्रणाम करने की परंपरा बहुत प्राचीनकाल से ही सामाजिक स्वीकृति के रूप में रही है। ब्रह्मा यदि सृष्टि के निर्माता, विष्णु पोषक और शिव संहार के जनक रहे हैं तो शक्ति चराचर की आद्याधार के रूप में प्रणम्य है। शक्ति के अनेक स्तोत्र हैं जिनको प्राचीनकाल से ही अनेक तालों, लयों, रागों में गाया जाता है। मार्कण्डेयपुराण, देवीपुराण, देवी भागवत, महाभागवत आदि अनेकानेक शाक्त ग्रंथों में शक्ति के माहात्म्य के साथ–साथ उनके स्तोत्र, स्तवनादि मिलते हैं।

स्थल पुराण के रूप में प्रसिद्ध एकलिंगपुराण या एकलिंग माहात्म्य में पंचायतन स्तुति के अंतर्गत चण्डिका शक्ति की स्तुति है। इस स्वल्प ग्रंथ में एकलिंग मंदिर में पूजा–आराधना के लिए जिन स्तुति पदों का प्रयोग होता है, उनका संग्रह है। एकलिंगजी के निकट विंध्यवासिनी देवी का मंदिर है। एकलिंग माहात्म्य में उसकी महिमा बहुत बार आई है। विन्ध्यवासिनी देवी के निमित्त ही कदाचित इस स्तुति का प्रणयन हुआ है। यह ग्रंथ महाराणा कुंभा के काल (1433–1468 ई.) का है और कुंभाश्रित पंडित कन्ह व्यास द्वारा संपादित है। इसकी पंचायतन स्तुति का महत्व उसका तालों में गेय होने से रहा है। इसमें प्रथमत: गणेश स्तुति यतिताल, आदिताल और प्रतिमण्ठताल में है। सूर्य स्तुति अद्भुतताल, झंपाताल और मण्ठताल में है। नारायण विष्णु की स्तुति मण्ठ और द्रुतमण्ठताल में है। शिवस्तुति यतिताल, त्रिपुटताल और एकतालीताल में है। इसी ताल में

चंडिका-शक्ति स्तुति है।

श्रीभुवनेशि भवभयहन्त्री कुम्भमहीशोदय सुखकर्त्र।
चन्द्रकिरीटा रविरुचिरन्या सा जयतितीह सुदुर्गागम्या ॥2 ॥

इसी प्रकार जो जो निखिल संसार को धारण करने वाली और सकला होकर सुख की रचना करने वाली हैं जो जया और विजया की निकट सखी स्वीकारी जाती हैं। उन जया की जय हो जिनकी कृपा से राजा कुम्भा सुखी है। वह उनके निज हितों की वाहिका, मृगनाभिनखी (बीस भुजाओं वाली) हैं-

निखिलकलसकला सुखी रचितजया विजयातिसखी।
जयति जया नृप एष सुखी निजहित वहमृगनाभिनखी ॥3 ॥

जयमाला के रूप में स्तुत्य :

स्तुति में यह भी कहा गया है कि उनके वैभव में चम्पकमाला राजेश्वर की इच्छित श्रीजयमाला के रूप में हैं। वे भक्ति से विनम्रतापूर्वक स्मरण करते ही तत्काल समस्त आपदाओं का विनाश कर देने वाले स्वरूप की स्वामिनी हैं-

भाति विभास्वर चम्पकमाला कुम्भनृपेष्ट श्रीजयमाला।
स्मृतं तत्क्षणमेव हन्तिः सर्वापदो भक्तिविनम्रस्वरूपीणिः ॥4 ॥

इसी प्रकार वे गोधिका के आसन पर विराजमान रहती हैं, विचित्र गतिमयता वाली हैं। कुम्भा कृत गज-अश्व विजयिनी हैं। वे भुवनेशी, भवानी सदा ही नवीनतम रूप में संचरणशील हैं। हे शिवे ! तुम्हारी शरण लेता हूँ-

गोधिकयासन चित्रगतिं कुम्भकृतेभतुरंगजितिम्।
त्वां भुवनेशि ! भवानि ! नवे संचरणं शरणं हि शिवे ॥5 ॥

देवी की महिमा में कहा गया है कि जो देवी चण्डी रूप में शत्रु समूहों का विनाश करती हैं, वे राजा के राज्य के रूप में नवखण्ड पृथ्वी को अक्षुण्ण रखे। उन चण्डी देवी ने चढ़ आए असुरों का हनन किया है। अद्धुत भूतों के बीच वह पृथुल पराक्रमी सिद्ध हुई -

चण्डी खण्डीकृतरिपुखण्डा, कुम्भप्रोतावनिनवखण्डा।
मत्ताकृत्तासुरहतिचण्डा, भूतोद्धूतौ पृथुलविचण्डा ।॥6 ॥

जिन्होंने मधु-कैटभ का विनाश किया, जिन्होंने विचित्र रूप से महिषासुर का वध किया और जिन्होंने शुम्भ-निशुम्भ का नाश किया, वे कुम्भा के लिए सहायक बनी रहेंजो उमादेवी प्रमाण वाणी और पुराण वाणी में शर्वाणी कही गई हैं, वे सहायक हों। वे विश्वश्रेणी हैं और श्रीकुम्भा के लिए श्रेय की निःश्रेणी हैं -

या मधुकैटभमिश्रश्चित्रपदा महिषाशैः।
शुम्भशुम्भदुरंगा, साऽवतु कुम्भमभंगा ॥7 ॥
प्रामाणी पौराणी वाणी, योमा प्रोक्ता सा शर्वाणी।
यस्यामोता विश्वश्रेणी श्रीकुम्भश्रेयोनिश्रेणी ॥8 ॥

यह भी स्वीकारा गया है कि जो हिमालय की पुत्री हैं और दानवों का दलन करने वाली हैं, जो मधुमती की तरह मुदितमना हैं, राजा कुम्भा उनका पुत्र है। इसमें छंद की प्रयुक्ति अनूठी है-

हिमगिरितनुजा विदलितदनुजा
मधुमतिमुदिता कलशनृपसुता

अंत में यह कहा गया है कि जो कृष्ण आभा वाली (कालिका) हैं। जो मधु-कैटभ का अन्त करने वाली है, वह कुम्भकर्ण के लिए कृपा रूप है। जो लक्ष्मी स्वरूप हैं। जो महिषासुर का मर्दन करने वाली महाशक्ति हैं। धूम्रासुर का वध करने वाली शुभ स्वरूपा हैं। जो चामुण्डा हैं। चण्ड-मुण्ड को मारकर रुधिर से नहा लेने वाली हैं और वागीडिता हैं। जो दानव निशुम्भ और शुम्भ का वध करने वाली शार्दूलविक्रीडिता (सिंहारूढ़ा, यहाँ पर छन्द से आशय) हैं-

कृष्णाभा मधुकैटभान्तकनिभा कुम्भप्रसादप्रभा, या लक्ष्मी महिषापहाऽतिमहती धूम्राऽसुरघ्नी शुभा।
चामुण्डा क्षतचण्डमुण्डरुधिरोद्धूता च वागीडिता पायाद्धवस्त निशुम्भ-शुम्भदनुजा शार्दूलविक्रीडिता ॥10 ॥

तालों का सांगीतिक स्वरूप:

उक्त विवरण में एकाधिक छंदों में देवी की स्तुति की गई है। देवी के माहात्म्य को भी स्थल-स्थल पर लिखा गया है। इसमें जो तालादि आए हैं, उनका प्राचीनकाल से ही दक्षिण भारत में प्रचलन रहा है। वहां कीर्तन अर्थात् कृति का स्वरूप उत्तर भारतीय ध्रुपद से मिलता-जुलता है। ध्रुपद में जहां स्थायी, अंतरा, संचार और आभोग आदि चार धातु होते हैं, वहीं कीर्तन में पल्लवी, अनुपल्लवी के अन्तर्गत ध्रुव, अंतरा और आभोग आदि भाग पाए जाते हैं। कीर्तन में भी ध्रुपद की तरह पहले आलाप किया जाता है। इसमें संस्कृत, कर्णाटकी, तेलुगु और तमिल आदि भाषाओं का प्रयोग मिलता है। पन्नालाल मदन का मत है कि ताल पद्धति में लघु चार मात्राओं का होता है जो चतस्त्र जाति में 4, तिस्त्र में 3, मिश्र में 7, खंड में 5 और संकीर्ण जाति में 9 मात्राओं से संपन्न किया जाता है और इसी अर्थ में लघु की मात्रा को दक्षिणी तालों का निर्माता कहा गया है। यह प्रायः चार मात्रा का होता है और इसीलिए चतस्त्र कहा जाता है।

वहां पर तालों को मृदंगम् आदि वाद्यों से दर्शाया जाता है। इनमें खाली या शून्य मात्रा के लिए कोई चिह्न या स्थान नहीं होता अपितु हर विभाग की प्रथम मात्रा पर ताली का प्रयोग होता है। शून्य के लिए विसर्जतम् शब्द का उपयोग उचित माना जाता है। इसका प्रयोग सम के बाद की मात्राओं की गणना के लिए किया जाता है। प्रायः हाथ उठाकर मात्रा गिनने के लिए 'पताक विसर्जतम्', हाथ को बायीं ओर ले जाकर मात्राएं गिनने के लिए 'कृषय' और हाथ को दाहिनी ओर ले जाकर मात्राओं की गणना करने के लिए 'सर्पिणी' का व्यवहार होता है। इस प्रकार महाराणा कुंभा के काल में उत्तर भारत में दक्षिण के संगीत का कीर्तन के लिए प्रयोग एक अनूठा प्रयोग ही कहा जाएगा।

■

आचार्य शंकर की अचिन्तय लीला

डॉ. नर्मदा प्रसाद सिसोदिया

भैया! नेह-छोह से अनुस्यूत अतीत की अनुभूतियाँ तो नवनीत सृदश हुलसती हैं। हाँ, किसी ग्रंथ को पढ़ते-पढ़ते आँखों में सारे दृश्य संतरित होकर अपने पूर्ण आकार में विन्यस्त होने लगते हैं। महमहाती महारास की पुर्ननिर्मित की मधुरलय में हम रँजते भींजते अपने को धन्य पाते हैं। और यदि उस मधुरलय की किलकारी से घर का कोना-कोना सुभाषित होता हो तो वह घर तो उन मंगल स्मृतियों का साक्षी होगा ही। और वह घर इस बात का साक्षी भी होगा कि उस बालक ने उपनिषद, पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र, न्याय, सांख्य, पातंजल, वैशेषिक आदि अनेक शास्त्रों में प्रवीणता प्राप्त कर ली हो। हाँ, यदि पाँच वर्ष के बालक में इतनी प्रवीणता, कुशाग्रता आई हो तो परिवार में कैसी! खुशी रही होगी? और यह भी कि बालक के हृदय में दया, करूणा की हिलोर उपजती हो तो यह अदभुत बाल प्रवीणता तो तपे तपाये अनुभव जन्य व्यक्ति जैसी लगती हो तो यही कहा जा सकता है कि भैया! प्रारब्ध का परताप है।

हाँ, उन दिनों चारों ओर मतमतान्तरों का अंधकार छाया हुआ था। उपदेशक, अपने-अपने मतों का ही प्रतिपादन कर रहे थे। अपने-अपने मतों को ही श्रेष्ठ समझ रहे थे। भैया! संक्रमण, संक्रांति काल में अध:पतन की ओर अग्रसर हो रहा था समाज। ऐसे कलुषित समय में अनेक मतवादियों के मतों का संस्कार करने की आवश्यकता थी। हाँ, तीर्थो के शुद्ध विधान की जरूरत थी-भैया! इन्ही परिप्रेक्ष्य में कहा गया है कि जब भी संसार में धर्म की ग्लानि होती है तभी महापुरुषों का अवतरण होता है तो कहा जा सकता है कि ऐसे ही समय में धर्मपरायण शिवगुरु और विशिष्टा देवी को सदाशिव की कृपा से पुत्र शंकर की प्राप्ति हुई थी।

भैया! कैसी! कैसी! अदभुत मुलकती-पुलकती सुसह्य सरणियाँ हैं। हाँ, हवा के मृदुल झोंके झुरझुरी भरते हैं। विचार करें, हिया में स्मृतियाँ उजास भरती हैं कि नाने से बालक की रिगरिगी थमती नहीं है माँ के लुगड़े के पल्लू को पकड़कर संसार की महान विभूतियों की आँखों से मोती सरसे हैं। हाँ, इन्हीं में से एक बालक शंकर केरल की अलवाई नदी में स्नान करने जाता है। और संयोगत: मगर ने उनका पैर पकड़ लिया है यह अचिन्त्य लीला ही है कि बालक शंकर माँ से कहते हैं- 'माँ यदि तुम मुझे वैराग्य की अनुमति दे दो तो यह मगर मेरा पैर छोड़ देगा।' परीक्षा के इस कठिन समय में तत्काल माँ ने कहा- 'मैं आज्ञा देती हूँ तुम सन्यासी हो जाओ।' विभु की लीला घटी है कि मगर ने बालक शंकर का पैर छोड़ दिया। मानों यही कि युग प्रयोजन का समय आ गया हो।

भैया! मानों शंकर अपने आकार में ही पुर्ननिर्मित हो गये। और ऐसे निमग्न हो गये कि बिना किसी आचार्य के ही स्वयं ही अपने हाथों से बिरजा होम पूर्ण कर सन्यास ले लिया। और माँ से कहते है- 'कोपीन दण्डकमण्डल देकर आप अपने ही हाथों से सन्यासी के वेश में सजा दीजिएगा।' भला! विचार करें ऐसे मर्मान्तक दृश्य को देखकर कौन का हृदय अधीर नही होगा। पर! सहृदयता में साधरीकरण भी कृतकृत्य है। भैया! अर्न्तनिहित मन की अनन्त दशाएँ भी वर्णन से परे होती हैं। रोएँ-रोएँ सिहर उठते हैं कि आठ वर्षीय बालक शंकर के पीछे-पीछे जनसमुदाय चल रहा है। हाँ, जनसमुदाय ने अनुनय विनय करते हुए कहाँ था कि गाँव के बाहर कुटिया बना देते हैं। पर! बालक शंकर का दृण संकल्प तो कंकर-पत्थर पहाड़ पर्वत की कठिन डगर की ओर चल पड़ा था। पाठशाला में गुरुजी के मुख से इतना ही सुना था कि स्व्यं पतंजलि भगवान नर्मदा नदी के किनारे एक गुफा में सैंकड़ों वर्षों से तपस्यारत है। बस! इतना ही संकेत लेकर चल रहे हैं उत्तर दिशा में ओंकारनाथ की ओर। वन प्रान्तर नदी, पर्वत को उलाकते हुए दण्डकमण्डल धारी बालक शंकर दो माह में नर्मदा के दक्षिण तट ओंकारनाथ पहुँचे थे।

माटी की सुवास से मन प्राण भींग जाते हैं। ओंकारनाथ की मंगल ध्वनियाँ थपथपाती हैं सो थकावट भी थमथमा जाती है। सोहार्द का आदर्श हिल हिलोरे लेने लगता है। वात्सल्य की झूली अपने प्रारब्ध से तादात्म्य रचती है। बालक शंकर को ओंकारनाथ पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि गोविन्दपाद योगी यही पर अनेकों वर्षो से समाधिस्थ हैं। और यहाँ अनेक सन्यासी भी गोविन्दपाद के दर्शन के अभिलाषी हैं। तो मणि कांचन संयोग ही कहें कि बालक शंकर के गुफा के द्वार पर पहुँचते ही सैकड़ों वर्षो की प्रतीक्षा की घड़ी टूटी और अंधकार से युक्त गुफा प्रकाशित हो उठी। योगी की देह में हलचल हुई। बालक शंकर को गोविन्द पाद ने दर्शन दिये। पर! अलौकिकता तो यही हुई कि प्रतीक्षारत सन्यासियों को भी योगी के दर्शन सुलभ हो गये। और यही कि योगी गोविन्दपाद ने जान लिया था यह बालक शंकर का अवतार है। और यह भी दुलर्भतम है कि बालक शंकर के लिये ही समाधि का अवसान हुआ। फिर शुभ अवसर पर बालक शंकर को शिष्य रूप में ग्रहण किया। तत्पश्चात लगातार तीन वर्षो में क्रमश: हठयोग, राजयोग, ज्ञानयोग की शिक्षा प्रदान की। साधना से सम्पृक्त शंकर के हृदय में दिव्यज्योति का उदय हुआ।

और यही दिव्य संयोग ही कहें कि उन दिनों वर्षाऋतु के आगमन से निरन्तर फुहारों के आच्छादन से वृक्ष कि लताएँ सुशोभित हो रहीं थीं। नर्मदा की जलधारा जगबोला में रूपायित हो रही थी। एक दिन बाढ़ की जल राशि गुफा के द्वार तक आ गई थी। गुफा के द्वार पर जल राशि को देखकर बालक शंकर ने गुरुजी के ध्यान में बाधा न डालते हुए गुफा के द्वार पर कमण्डल

रखकर नर्मदा माई से पुकार लगाई सो भावों की मुक्तावस्था, सहृदयता ऐसी गहराई तो रचना का प्रणयन नि:सरित हो उठा–

'सबिन्दु सिन्धु-सुस्खलत्तरंग भंग रजितं,
द्विषत्सु पाप जात-जातकारि-वारि संयुत्तम।
कृतान्त-दूतकाल भूत-भीतिहारि-वर्मदे,
त्वदीय पाद पंकजं नमामि देवि नर्मदे।।'

यह कहना समाचीन है कि प्रार्थना से नर्मदा की बाढ़ शांत हो गई। बालक शंकर की अर्न्तदृष्टि आनंद की अनुभूति से उद्धृत हो गई। तदन्तर गुरुजी की आज्ञा पाकर बालक शंकर वाराणासी पहुँचते हैं। यहाँ से धर्मसंस्थापन का कार्य प्रारंभ हुआ फिर, ऋषिकेष, हरिद्वार से बद्रीकाश्रम पहुँचते है तो गंगा के गर्भ से विष्णु का विग्रह अल्प प्रयास से ही निकालने में सफल होते हैं। हिमालय की तपोभूमि के पर्यावरण के कष्ट कंटकों को सहन करते हुए बालक शंकर श्री क्षेत्र पहुँचे। यहाँ, पंचशिला राजराजेश्वरी, कसमर्दनी, चामुण्डा और महिषमर्दिनी ये पाँच सिद्धपीठों में तान्त्रिकों के साथ शास्त्रार्थ करके उनकी शंका का निवारण करके नरबलि की प्रथा को समाप्त कर दिया। हाँ, हिमालय की इसी तपोभूमि के तीर्थस्थानों पर आचार्य शंकर ने अद्वैत ब्रह्मतत्त्व की व्याख्या करके श्रद्धालुओं को आश्चर्य चकित कर दिया। और दुलर्भतम तो यह था कि ब्रह्मतत्त्व के व्याख्याकार तो युवा सन्यासी और व्याख्या सुनने नीचे बैठे श्रोता शिष्य वृद्धाजन थे। और यही कि धर्म संस्थापन की निरन्तर आवृत्तियाँ प्राय: पैदल चलकर ही हुई थी। हाँ, यह अविकल, निर्विकार नि:स्पृह प्रणयन जन-जन में समादृत हुआ। और मैं स्वयं लेखक 4 जून 2015 से 10 जून 2015 तक बद्रीविशाल के दर्शन करते हुए अभिभूत हुआ हूँ। कहा जाता है-' आचार्य के आगमन के समय मंदिर नारायण विग्रह से विहीन था, तब आचार्य शंकर ने नारद कुंड से विग्रह को पुन: निकालकर मंदिर में प्रतिष्ठा कराई। हाँ, अलकनंदा के संयोगी कुंड के तीव्र प्रवाह से नारायण विग्रह को निकाल कर मंदिर में पुनर्प्रतिष्ठा करने की अलौकिक घटना का चहु ओर स्वागत हुआ। तो भैया! बद्रीनाथ धाम के मंदिर परिसर में प्रतिष्ठित आर्चाय शंकर की सौम्य मूर्ति के आँखो-आँखों में दर्शन करते हुए आज भी पुलकित हो रहा हूँ।

यह विलक्ष्णता तो देखिए कि बालक शंकर की जन्मपत्री देखकर विद्वान ब्राह्मणों ने कह दिया था-' आठ, सोलह और बत्तीस वर्ष की आयु में मृत्यु योग है।' और यह भी कहा था कि तप के द्वारा मृत्युयोग बढ़ सकता है। और हुआ भी यही कि बालक शंकर के वैराग्य लेने के संकल्प के साथ ही आठ वर्ष से आयु सोलह वर्ष हो गई और इसी तरह महर्षि वेदव्यास के आशीर्वाद और देवइच्छा से आचार्य शंकर की सोलह वर्ष की आयु बत्तीस वर्ष हो गई थी।

और फिर वेदव्यास जी की आज्ञा सिरोधार्य करके ब्रह्मात्मविज्ञान की प्रतिष्ठा हेतु आचार्य शंकर कुमारिल भट्ट से शास्त्रार्थ करने प्रयाग धाम पहुँचे। पर! हुआ यह कि उस समय कुमारिल भट्ट तो प्रायश्चित स्वरूप तुषा के ढेर पर बैठै हुए थे। भद्रपाद ने कहा-' आप मेरे द्वारा जो कार्य कराना चाहते हैं उसे मेरे शिष्य मण्डन मिश्र से करा सकते है।' हाँ, विधि का विधान भी यही होगा सो आचार्य शंकर नर्मदा के तट पर मण्डन मिश्र के निवास पहुँचे थे। पर! घर का पता पूछने पर ज्ञात हुआ था कि- 'जिस घर में शुक और शुकी संस्कृत में बातचीत करते हों वही घर मण्डन मिश्र का है।' यहाँ आचार्य शंकर का शास्त्रार्थ कई दिनों तक चला और अंत में मण्डन मिश्र की पराजय हुई।

आचार्य शंकर की धर्म संस्थापनाएँ नाना विलक्षणताओं से अनुप्राणित हैं हाँ, हम यह भी जानें की श्रृंगेरी की यात्रा के समय उन्हें आत्म स्फुरण हुआ कि माँ उन्हें याद कर रही है आचार्य शंकर ने अपने सन्यास ग्रहण करते समय माँ को कहे वचन अनुसार माँ के अंतिम दर्शन करने कालड़ी पहुँचते हैं और माँ का अंतिम संस्कार सम्पन्न करते हैं। तो कह सकते हैं कालड़ी का परताप प्रणम्य है।

भैया अब यह उल्लेखनीय है कि आचार्य शंकर ने वेदों की प्रमाणिकता की पूर्णत: प्रतिष्ठा करते हुए हिन्दू धर्म के सभी मतवादों का संस्कार करके लोकजीवन को वेदानुरागी बनाया। और चार तीर्थो के समीप चार मठों की स्थापना का दुरूह कार्य सम्पन्न कराया यथा उत्तर में बद्रीकाश्रम के पास ज्योतिर्मठ। दक्षिण में रामेश्वर धाम के पास श्रृंगेरी मठ। पूर्व में जगन्नाथ धाम के पास गोवर्धनमठ। और पश्चिम में द्वारकापुरी के पास शारदामठ स्थापित किये गये। हाँ, यह भी सत्य है कि आचार्य शंकर अपना प्रयोजन सिद्ध करके महाप्रस्थान के लिये ईश्वरीय सत्ता में विलीन हो गये। और यह भी सत्य ही है कि आचार्य शंकर की धर्मसंस्थापनाओं की लोकलीला तो अपनी निरन्तरता में अमोघ है। कालजयी है।

यह अद्भुत किन्तु सत्य घटना लिखना चाहता हूँ-हाँ, भैया! आदि शंकराचार्य एकात्म यात्रा 2017 की जानकारी जुटाना चाहता था। भीतर की हुमक हुलस रही थी हाँ, हरदा जिले के नौसर गाँव में मेरी सुसराल के एक कच्चे कमरे में भोजन कर रहे थे कि मेरी निगाह सीमेन्ट की उजालदानी में चिपके कागज की ओर गई, मुझे लगा यह खिड़की हुमकारा दे रही है- चिपके पेपर में कुछ न कुछ है, बस! भोजन उपरांत चिपके पेपर के दो पेज निकाले तो लुदवुद और गदगद हो गया। बाप रे! बाप इसी पत्रिका अखबार के पेज में आचार्य शंकर की फोटो और एकात्म यात्रा 2017 की विस्तृत जानकारी प्राप्त हुई- 'आदि शंकराचार्य एकात्म यात्रा 19 दिसम्बर 2017 से 22 जनवरी 2018 तक सम्पूर्ण मध्यप्रदेश में जनजागरण और प्रतिमा हेतु धातु संग्रहण अभियान।' भैया! 35 दिवसीय इस यात्रा में 140 जनसंवाद, समूहगायन, चित्रकला, भाषण, आदि। और 19 दिसम्बर 17 को ओंकारेश्वर, उज्जैन, रीवा, अमरकंटक से प्रारम्भ होकर 22 जनवरी 2018 को ओंकारेश्वर पहुँची।

और अंत में प्रणम्य है आचार्य शंकर की ज्यार्तिमय वह गुफा जहाँ बैठकर उन्होंने अपने गुरु गोविन्दपाद से शिक्षा प्राप्त की थी। और यह भी कि मुझ जैसे अकिंचन ने, ब्रदीनाथ, रामेश्वरम, जगन्नाथपुरी, द्वारका जी, उज्जैन, ओंकारनाथ, महेश्वर, प्रयाग, काशी, पशुपतिनाथ, नेमीशारण्य, और दो बार नर्मदा परिक्रमा में जाना कि आचार्य शंकर का ज्योतिर्मय कर्म तन्मय भाव से जन-जन की अन्तरात्मा में समाया हुआ है।

लेखक: ललित निबंधकार हैं।
सम्पर्क : ऑफीसर रेसिडेंसी, कंचन नगर,
रसूलिया नर्मदापुरम (म.प्र.) मोबा. 9926544157

■

पूर्वोत्तर राज्यों के लोक एवं जनजातीय संस्कृति के नृत्य

आसाम : ढोलार-चोलना नृत्य

ढोल असमी लोक परम्परा का प्रसिद्ध वाघयंत्र है। असम के लोग दो तरह के ढोल का प्रयोग करते हैं। पहला बिहू ढोल और दूसरा शादी व्याह के अवसर पर प्रयुक्त होने वाला ढोल। असम के सभी लोक वाद्य यंत्रों में ढोल सर्वाधिक प्रसिद्ध वाद्य है, जो बिहू व शादी ब्याह के अवसर पर प्रयुक्त होता है। बिहू असम का महत्वपूर्ण पर्व है जिसमें बिहू ढोल प्रमुखता के साथ बजाया जाता है। जबकि शादी व्याह के अवसर पर वेडिंग ढोल (ओजा ढोल) बजाया जाता है। ढोल वादन के साथ-साथ नर्तक पारम्परिक गीतों को भी गाते हैं। ढोल वादकों को ओज़ा भी कहा जाता है।

आसाम : बिहू नृत्य

बसन्त ऋतु के आगमन के साथ ही रंगोली बिहू का पर्व नृत्य-गीत के साथ प्रारम्भ होता है। जब युवा स्त्री की भाँति प्रकृति कान्ति, सौन्दर्य एवं रंगों से परिपूर्ण हो उठती है, उस समय का वातावरण ऐसा होता है कि युवा लड़के एवं लड़कियां एक दूसरे को प्रेम के संसार में पदार्पण हेतु आमंत्रित करते हुये बिहू नृत्य प्रस्तुत करते हैं। रंगोली बिहू मात्र असमिया नव वर्ष पर ही प्रस्तुत नहीं किया जाता है, अपितु विवाह तथा बीजारोपण के समय भी प्रस्तुत किया जाता है। वास्तव में इस उत्सव की जड़ कृषि उत्पादन संस्कृति में ही समायी हुई है। बिहू नृत्य बसन्त के हर्षोल्लास एवं युवाओं के उमंग एवं उत्साह को अभिव्यक्त करता है। प्रकृति के शुद्ध सौंदर्य की सराहना में युवा लड़के एवं लड़कियां ढोल की पौरूषेय थाप, भैंस के सींग से निर्मित पेपा की मधुर धुन एवं अन्य लोक वाद्य यंत्रों के साथ श्रृंगारिक भावनाओं के गीत पर नृत्य प्रस्तुत करते हैं।

आसाम : भोरताल नृत्य

भोरताल पीतल का एक बड़ा मन्जीरा (ताल) होता हैं, जिसका उपयोग कीर्तन करते समय नृत्य करने के लिए किया जाता है। भजन गाते समय कभी-कभी लोग इस बड़े ताल को, जिसे भोरताल कहते हैं, हाथ में लेकर बजाते हैं। यह देवताओं के आह्वान का नृत्य है जिसे सन्त श्री नरहरी बूराभक्त के सत्रिय नृत्य से लिया गया है।

अरूणाचल प्रदेश : एराप नृत्य

एराप, अरूणाचल प्रदेश की गालो जनजाति द्वारा किया जाने वाला रंगारंग नृत्य है। यह नृत्य विवाह के अवसर पर वधू पक्ष के पुरुषों द्वारा न्यीदा (बारात) के स्वागत हेतु किया जाता है। नर्तक धरती पर योक्सा से थाप देते हैं, जो इस नृत्य की विशिष्टता है। यह मान्यता है कि ऐसा करने से बुरी शक्ति से वधू पक्ष की रक्षा होती है। नर्तकों अंग-संचालन एवं उनकी तीव्र गति से दर्शकों का मन मोहित हो जाता है।

अरूणाचल प्रदेश : जुज जाजा नृत्य

अरूणाचल प्रदेश की जनजातियों में सबसे बड़ी उप-जनजाति की निशि महिलाओं द्वारा यह पारम्परिक नृत्य-गान किया जाता है। यह 'जुज जाजा जमिन' नृत्य गीत निशि महिलाओं की कृषि कार्यों में विशेष भूमिका को प्रदर्शित करता है क्योंकि इस समय बीजारोपण से कटाई तक का कार्य किया जाता है। इस नृत्य का विशेष महत्व इसलिए भी है क्योंकि इस अवसर पर भूसे में से अन्न को निकाल कर भविष्य में उपयोग हेतु खलिहान (स्थानीय नासुंग) में रखने के लिए किया जाता है।

मिजोरम : सरलामकई/सोलकिया नृत्य

यह एक मनोहारी नृत्य है जो मिजोरम के दक्षिणी भाग में रहने वाले पावी और मारा समुदाय से सम्बन्धित है। इस नृत्य को पावी लोग सरलामकई और मारा लोग सोलकिया के नाम से जानते हैं। जब पुराकालमें जनजातियां आपस में युद्ध करती थीं, तब विजेता द्वारा शत्रु की खोपड़ी को प्रदर्शित किया जाता था। यह प्रदर्शन इस बात का संकेत होता

था कि मत्युपरान्त भी शत्रु की आत्मा विजेता के अधीन होती है। शत्रु की खोपड़ी लाने वाला समाज में, शासक एवं सम्मानित वर्ग द्वारा सम्मान का पात्र होता था। इसी अवसर पर सरलामकई नृत्य किया जाता है, जो स्पष्टत: युद्ध की जीत को प्रदर्शित करता है।

मिजोरम : चेराव नृत्य

चेराव मिजोरम का एक उल्लासपूर्ण व मनमोहक नृत्य है, जिसे पर्व-त्योहारों के अवसर पर किया जाता है। सामान्यत: यह नृत्य बांस नृत्य के रूप में जाना जाता है क्योंकि इसमें बांसों का उपयोग किया जाता है। दो समानान्तर बांसों के आपस में बजाने पर उत्पन्न हुए तालव लय के साथ विभिन्न पदसंचालन व स्वरूप में यह नृत्य किया जाता है। बांस की यह लकड़ियां अपने अन्तिम छोर पर दो आधारों के सहारे रखी जाती हैं। इन बांसों के आपस के टकराव से उत्पन्न लय इस नृत्य के आकर्षण हैं। महिला नर्तकियां पारम्परिक परिधानों से सुसज्जित होकर बांसों के तालपर नृत्य करती हैं। आश्चर्यपूर्ण कौशलता व समयबद्धता इस नृत्य की विशेषता है।

मणिपुर : थांग – टा (युद्धपरक)

युद्धकला पर आधारित मणिपुर का यह प्रसिद्ध लोकनृत्य है। मणिपुरी भाषा में 'थांग' का अर्थ तलवार और 'टा' का अर्थ भाले से है। इस प्रकार यह नृत्य तलवार एवं भाले के द्वारा युद्ध कौशल को प्रदर्शित करता है। इस नृत्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण रोमांच तब होता है जब दो युद्धरत नर्तक सौन्दर्ययुक्त रॉमाच के साथ युद्धकला का प्रदर्शन करते हैं।

मणिपुर : चेइनोल – जगोई (स्टिक प्रस्तुति)

यह नृत्य मणिपुर के युद्धकला पर आधारित 'थांगटा नृत्य' से उत्पन्न हुआ है। आकर्षण एवं रोमांच से युक्त इस नृत्य के नर्तक विविध आकार वाले तीन डंडों के द्वारा कुशल पदसंचालन के साथ इस नृत्य को सम्पादित करते हैं। प्रियदर्शिनी इम्फाल से इसमें महारत प्राप्त कलाकार है।

मणिपुर : लाई हरोबा नृत्य

यह मणिपुर का एक प्रसिद्ध लोक नृत्य है, जो पर्वो एवं त्यौहारों के अवसर पर इष्ट देवी एवं देवताओं के समक्ष किया जाता है। मणिपुर के प्राचीन संस्कृति की झलक इस नृत्य में दिखायी पड़ती है। देवी को प्रसन्न करने के लिए पुजारी एवं पुजारिनें इस परम्परा को अत्यन्त जटिलता के साथ सम्पादित करते हैं। इस नृत्य के माध्यम से सृष्टि की संरचना एवं सभ्यता के विकास को प्रदर्शित किया जाता है। लाई-हरोबा नृत्य समारोह कई दिनों तक चलता रहता है। मैबी, पुजारिनें इस नृत्य में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करती हैं।

मणिपुर : पुंग चोलम एवं ढोल चोलम

ढोन ढोलक चोलक नृत्य ढोल वादकों का निणुणता व कुशलता का अद्वितीय प्रदर्शन है। इस नृत्य की तीव्र गति से ढोल की थाप व तालों का लयात्मक स्वरूप इस कला का महत्वपूर्ण अंग है। यह नृत्य मणिपुर में होली पर्व से जुड़ा हुआ है जो सर्वाधिक कलाओं में से एक माना जाता है। यह नृत्य ढोल वादकों के अत्यन्त कठिन लय व ताल तथा अंग संचालनों के समन्वय के माध्यम से पहचाना जाता है।

नागालैण्ड : अकोक-खी (वार सेंगताम) नृत्य

वस्तुत: यह नृत्य नागालैण्ड के संगतम् आदिवासी समुदाय में प्रचलित है। महिला-पुरुषों का यह नृत्य 'अमांग मोंग' जैसे त्यौहारों के अवसर पर किया जाता है। इस अवसर पर लोग अपने इष्टदेव एवं अग्नि स्थल पर रखे तीन पत्थरों की पूजा करते हैं। इस नृत्य का सम्पादन मुख्यत: खुले मैदानों में पारम्परिक वेशभूषा के साथ किया जाता है।

नागालैण्ड : मूंगयान्ता नृत्य

यह कृषि नृत्य नागालैण्ड के लोहता जनजाति की महिलाओं द्वारा किया जाता है। इनकी मान्यता है कि कृषि, धन, वैभव और सम्पदा आपसी प्रेम और व्यवहार के समक्ष मूल्यहीन है। कृषिकर्म की समाप्ति पर 'लोहता नागा महिलायें अपने वर्षपर्यन्त परिश्रम को इस नृत्य-गीत के द्वारा उल्लास से मनाती है। तोखू एमॉग पर्व पर इस जनजाति की महिलायें, प्रेम व आशीर्वाद के लिए उमंग से पूर्ण होकर यह नृत्य करती हैं।

नागालैण्ड : पटकाई एल्युम्नी सिंगर्स

पटकाई एल्युमनी सिंगर्स, पटकाई किश्चियन कालेज, नागालैण्ड

के संगीत के अध्यध्यनशील, स्नातक छात्रों का समूह है, जो पश्चिमी शास्त्रीय, लोक संगीत, गॉस्पेल, ब्राडॅवे, पॉप तथा नागा की समृद्ध प्रस्तुतियां देते हैं। पटकाई एल्युमनी सिंगर्स वर्षों से बेहतरीन संगीतकारों के साथ प्रदर्शन करते हुए वर्तमान में लिपोक्माइ जुदिर के निर्देशन में कार्य कर रहा है। लिपोक्मार जुदिर ने संगीत संयोजन एवं संचालन में एशियन इन्स्टीटयूट ऑफ लिर्टजी एण्ड म्यूजिक (फिलीपीन्स) से स्नातक तथा शेफील्ड विश्वविद्यालय (यू.के.) से संगीत में परा-स्नातक की उपाधि ग्रहण की है। इन्होंने बतौर संगीत निर्देशक अलबंग, फिलीपीन्स के इण्टरनेशनल इवंजेलिकल चर्च तथा इग्लैंड के होल्म वैली सिंर्गस (वेस्ट यार्कशायर का सर्वश्रेष्ठ ग्रुप के साथ भी काम किया है। आप नागालैण्ड के प्रतिष्ठित मोकोक्यंग चासंल कॉयर के संस्थापक एवं निदेशक भी हैं। संगीत नाटक अकादमी के संस्कृति विभाग, भारत सरकार द्वारा वर्ष 2006 में आपको कोरल संगीत में रचनात्मक वर्ग में उत्कृष्ट योगदान के लिए उस्ताद बिस्मिल्लाह खान युवा पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

सिक्किम : घांटू नृत्य

यह नृत्य सिक्किम के 'गुरूंग समुदाय द्वारा संरक्षण प्राप्त एक परम्परागत लोकगृत्य है, जो इस समुदाय के बहुरंग जीवन को दर्शाता है। इस नृत्य का विशेष आकर्षण नतकों का तीव्र पद संचालन है। यह नृत्य गुरूंग समुदाय की युवतियों द्वारा पारम्परिक परिधानों एवं सिर पर विशेष प्रकार की टोपियों से सज्जित होकर सम्पादित किया जाता है।

सिक्किम : सिंघी छाम नृत्य

खैन-चेन जॉग्पा (कंचनजंगा) पर्वत विश्व की सर्वोच्च ऊंचाई वाले पर्वतों में तीसरे स्थान पर है। गुरु रिमपोछे (गुरु पद्मसम्भव) द्वारा इसे सिक्किम के रक्षक देवता के रूप में माना गया। यह विशाल पर्वत अपनी ऊँची चोटियों के साथ, जिन्हें पाँच-खजानों के नाम से जाना गया है, सम्पूर्ण राज्य की रक्षा करता हैं। आस-पास के पर्वतों के साथ यह हिम सिंह का रूप धारण करता है। हिम सिंह सिक्किम राज्य का एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रतीक है जो इस नृत्य को जीवन्तता प्रदान करता है। इस हिम सिंह का उल्लेख उनकी कथाओं में है। सिक्किम के लोगों का यह विश्वास है कि इस सिंह की एक झलक उनके लिए सौभाग्य का सूचक है।

सिक्किम : याक छाम्म नृत्य

सिक्किम की ऊँची पर्वतीय श्रृंखलाओं में याक का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। याक से दूध, घी, मक्खन एवं उसके ऊन से वस्त्र, कम्बल आदि दैनिक जीवन की वस्तुएं बनायी जाती हैं। शीत ऋतु की लम्बी अवधि में याक से प्राप्त वस्तुएं जीवनयापन का प्रमुख साधन भी हैं। इस नृत्य में नर्तक याक के मुखौटे धारण कर याक अभिनय करते हैं। नर्तक गीतों एवं पारम्परिक वाद्य यंत्रों की संगत पर नृत्य करते हैं।

त्रिपुरा : होजागिरी नृत्य

त्रिपुरी के पश्चात् रियांग त्रिपुरा की जनजातियों में द्वितीय स्थान रखते हैं। अन्य जनजातियों की भाँति रियांग की भी अपनी एक अद्वितीय कला संस्कृति है, जो इनके जीवन का अभिनन अंग है। रियांग समुदाय के नृत्य अन्य जनजातियों से भिन्न हैं किन्तु नृत्यों के विषय-वस्तु सामान्यत: मिलते-जुलते हैं होजागिरी नृत्य इस जनजाति का सर्वाधिक मनमोहक नृत्य है। इस नृत्य में कमर का ऊपरी हिस्सा एवं हस्त मुद्राएं सीमित होते हैं जबकि नृत्य के पद-संचालन आकर्षक होते हैं। नर्तकी अपने सिर पर बोतल में जलते हुए दिये को मटकी के साथ रखकर संतुलन बनाये हुए नृत्य करती है। अप्रैल माह में वार्षिक महोत्सव के दौरान वैभव की देवी 'मैंनुमा' से लोक कल्याण की याचना की जाती है। रियांग जनजाति का विश्वास है कि इस देवी को नृत्य और गीत द्वारा प्रसन्न रखने पर फसल अच्छी होती है और जीवन सुखमय रहता है।

त्रिपुरा : सगंराई -मोग नृत्य

सगंराई, त्रिपुरा का एक विशेष पर्व है। इस तीन-दिवसीय पर्व में मोग समुदाय के युवक-युवतियां सिर के ऊपर पवित्र 'विश ईल्डिंग ट्री' (कल्पतरू) रख कर घर-घर जाते हैं। इस उत्सव में संगीत और नृत्य दोनों होते हैं। समुदाय के वयोवृद्ध के मांगलिक घड़े में रखे हुए जल से स्नान करते हैं। घरों के प्रवेश-द्वार पर सुगंधित चन्दन का लेप लगाया जाता है तथा कच्चे नारियल का पानी प्रत्येक घर पर छिड़का जाता है। मुख्य पर्व के अवसर पर 'बोधि वृक्ष' की जड़ों पर सुगंधित जल डाला जाता है। पारम्परिक खुयांग के साथ नृत्य भी किया जाता है।

त्रिपुरा : हाइ-हाक नृत्य

हलाम समुदाय की सामाजिक एवं आर्थिक जीवन-शैली, इस

राज्य की अन्य आदिवासी जातियों की तरह, 'झूम' खेती पर निर्भर रहती है। कटाई के मौसम के अंत में मालसम लोग पारम्परिक रूप से देवी लक्ष्मी की पूजा करते हैं। इस शुभ अवसर पर वे अपना प्रसिद्ध हाई-हाक नृत्य का आनंद भी उठाते हैं। यह एक अति सुन्दर सामुदायिक नृत्य है। नृत्य की थाप में प्राचीन काल की परम्परा परिलक्षित होती हैं।

मेघालय : शाद-रेप नृत्य

शाद-रेप नृत्य महिलाओं तथा पुरुषों द्वारा खेतों में बुआई के समय किया जाने वाला नृत्य है। सारा दिन कठिन परिश्रम करने के बाद युवा पुरुष व महिलाएं शाम को एकत्रित होकर नृत्य-गान करते हैं और अपने पड़ोसियों और बच्चों को आनंदित करते हैं।

मेघालय : शाद मस्तीय नृत्य

मेघालय का 'शाद मस्ती' एक ऐसा नृत्य है जो हर वर्ष अप्रैल के महीने में अच्छी पैदावार के लिए ईश्वर को धन्यवाद स्वरूप किया जाता है। इस नृत्य में केवल अविवाहित कन्याएं ही भाग लेती हैं। पुरुषों में विवाहित पुरुष भी नृत्य में भाग ले सकते हैं।

यह नृत्य लोहिड़ी, पोगंल या ओनम के नृत्यों जैसा ही है जो कि अच्छी फसल की कटाई के बाद किये जाते हैं।

स्त्रोत : ओम्टेव 2011 उत्तर मध्यक्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार के कैटलॉग से साभार

बिड़ला संग्रहालय: गणेश जी के विविध स्वरूपों की प्रदर्शनी

गणेश चतुर्थी के अवसर पर जी.पी. बिड़ला संग्रहालय में लगाई गई गणेश जी की विशेष प्रदर्शनी का उद्घाटन पवन कुमार डालमिया निदेशक डाक सेवाएँ मुख्यालय भोपाल द्वारा किया गया। प्रदर्शनी में सेवानिवृत्त प्रधान जिला एवं सत्र न्यायाधीशगण योगेश कुमार गुप्ता एवं उमेश कुमार गुप्ता के समृद्ध संग्रह से श्रीगणेश के विविध स्वरूपों का प्रदर्शन किया गया।

नारियल से लेकर स्टोन आर्ट से बनी भगवान गणेश की प्रतिमाएं जीपी बिड़ला संग्रहालय में एग्जीबिट की गई हैं। भगवान गणेश पर आधारित यह विशेष प्रदर्शनी गणेश चतुर्थी के अवसर पर लगाई गई है, जिसका शुभारंभ पवन कुमार डालमिया, निदेशक, डाक सेवाएं (मुख्यालय), भोपाल द्वारा किया गया।

इसमें सेवानिवृत्त प्रधान जिला एवं सत्र न्यायाधीश योगेश गुप्ता एवं उमेश गुप्ता के संग्रह से भगवान श्रीगणेश के विविध स्वरूपों का आकर्षक भगवान गणेश के दुर्भभ प्रदर्शन किया गया है। इनमें मंडला डिंडोरी क्षेत्र के आदिवासी गोंड आर्ट, चितेरा

आर्ट और मधुबनी पेंटिंग में भगवान गणेश की पेंटिंग्स खास हैं। इसमें धनुर्धारी एवं विविध देव रूप सहित भगवान गणेश की अष्टविनायक प्रतिमाएं यहां देखी जा सकती है। इसके साथ ही फिजी, वियतनाम, इंडोनेशिया सहित विभिन्न देशों के

डाक टिकट, सिक्के एवं नोटों, डाक टिकटों, पेपर और 3 डी आर्ट में भगवान गणेश प्रदर्शित किए गए हैं। यह एग्जीबिशन 9 सितंबर तक चली, जिसे दर्शक सुबह 10 बजे से शाम 5 बजे तक निः शुल्क देखा।

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है। साथ ही समीक्षा दो पृष्ठों से अधिक की नहीं होना चाहिए। **-संपादक**

भारतीय शास्त्रीय नृत्य रूपों में पुरुष – देह

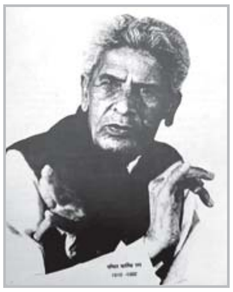

नृत्य को सामान्यत: स्त्रियोचित् और स्त्रिसाध्य कला के रूप में देखा जाता है, लेकिन हमारी नृत्य-परम्परा इस बात की साक्षी कि भारतीय नृत्य के समकालीन स्वरूप को गढ़ने और विकसित करने में पुरुष की देह और पुरुषोचित् सौन्दर्य-दृष्टि ने केन्द्रीय योगदान किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि पुरुष प्राय: सभी भारतीय नृत्यों में नर्तक और गुरु दोनों ही रूपों में शीर्ष पर रहे हैं। भारतीय कला के आद्यरूपाकारों में शामिल नटराज का मिथकीय रूप हमारी कला में पुरुष की बहुवाचक उपस्थिति को दर्शाता है। अन्य कलाओं के रसास्वाद के मामले में, कम से कम भौतिक स्तर पर, हम इन कलाओं के सर्जक से निरपेक्ष रह सकते है। हमारा काम यह जाने बिना चल सकता है कि हम जिस कलाकृति के समक्ष हैं वह किसी पुरुष कलाकार का सृजन है या स्त्री कलाकार का। यहाँ तक कि संगीत में भी संगीतकार की दैहिक उपस्थिति न्यूनतम होती है; हमारा ध्यान-अधिक-से-अधिक उसके कण्ठ या उँगलियों के संचालन आदि पर ही जाता है। लेकिन नृत्य के सन्दर्भ में यह बात नहीं कही जा सकती, क्योंकि इसमें न केवल कलाकार की दैहिक उपस्थिति अनिवार्य है, बल्कि यह देह ही है, जो अपनी ठोस, निरन्तर और गतिशील उपस्थिति से इस कला के अध्यात्म की, इसके सौन्दर्य की रचना करती है। वह नृत्य के दृश्य-प्रभाव को गढ़ने में निर्णायक है। नृत्य-कलाकार की देह उसकी कला का अनिवार्य अधिष्ठान है; वह इस कला के लिए शब्द भी है, स्वर भी है, रंग भी है, और रेखा भी।

नृत्य में देह की इस कदर निर्णायक उपस्थिति ही हमारा ध्यान इस भेद की ओर आकर्षित करती है कि यह देह किसकी है : पुरुष की या स्त्री की।

कथक नृत्य

पण्डित बिरजू महाराज

कथक के लिए प्रख्यात कालका बिन्दादीन घराने के शीर्षस्थानीय नर्तक और गुरु पण्डित बिरजू महाराज का जन्म 4 फरवरी 1938 को लखनऊ में हुआ। पण्डित बिरजू महाराज सुप्रसिद्ध कथक नर्तक श्री अच्छन महाराज के पुत्र और शिष्य हैं। अपने पिता के अलावा नृत्य का सघन प्रशिक्षण उन्हें अपने चाचा श्री शम्भू महाराज से प्राप्त हुआ । अद्वितीय नर्तक होने के साथ-साथ पण्डित बिरजू महाराज ठुमरी और ग़ज़ल गायन और तबला वादन में भी पारंगत हैं। पण्डित बिरजू महाराज दशकों से विभिन्न कला संस्थाओं से सम्बद्ध हैं, जिनमें संगीत भारती, भारतीय कला केन्द्र और दिल्ली स्थित कथक केन्द्र शामिल हैं। वे कथक केन्द्र के नृत्य निदेशक और गुरु रहें हैं। पण्डित बिरजू महाराज ने पिछले 4-5 दशकों में अनेक कुशल और प्रतिभाशाली नृत्यांगनाओं को प्रशिक्षित कर कथक नृत्य की अपने घराने की विशिष्ट शैली की देशव्यापी प्रतिष्ठा की है। उन्होंने अनेक नृत्य नाटिकाओं की रचना की है और उनके लिए संगीत तैयार किया है। पण्डित बिरजू महाराज को अनेक पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैं।

भरतनाट्यम् नृत्य

वी.पी. धनञ्जयन

भारतीय शास्त्रीय नृत्य की अकादमी भारत कलाञ्जलि के संस्थापक श्री वी.पी. धनञ्जयन विश्वविख्यात कलाकार श्रीमती रुक्मणी देवी अरुण्डेल के शिष्य हैं। कलाक्षेत्र नामक सुप्रसिद्ध संस्था में श्रीमती अरुण्डेल से शिक्षा प्राप्त करने के अलावा उन्होंने गुरु चन्दू पणिक्कर का भी सघन मार्गदर्शन प्राप्त किया है। भारत कलाञ्जलि के माध्यम से श्री धनञ्जयन ने राधामाधवम् अयिक्य भारतम्, शिवशक्ति वेल और चण्डालिका आदि अनेक नृत्य प्रस्तुतियाँ तैयार की हैं। उन्होंने लन्दन स्थित भारतीय नृत्य अकादमी के लिए रुडियार्ड किपलिंग के उपन्यास 'जंगल बुक' का भरतनाट्यम् बैले में रूपान्तरण प्रस्तुत किया है। पण्डित रविशंकर के साथ सहयोग करते हुए उन्होंने संगीत, नृत्य, मूकाभिनय और ऑपेरा की एक विशिष्ट संरचना 'घनश्याम' में भी भागीदारी की है। श्री वी.पी. धनञ्जयन को अनेक पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैं।

ओडिसी नृत्य

गुरु केलुचरण महापात्र

उत्कृष्ट नर्तक और नृत्य गुरु श्री केलुचरण महापात्र का जन्म । अगस्त 1926 को रघुनाथपुर, जिला पुरी (उड़ीसा) में हुआ। श्री महापात्र पुरी के पारम्परिक चित्रकारों की सुविख्यात परम्परा के गौरवशाली वंशज हैं। नृत्य की शिक्षा उन्होंने गुरु पंकज चरण दास से प्राप्त की। इसके पूर्व उन्होंने 9 वर्ष की अल्पायु से गुरु श्री मोहन सुन्दर देव गोस्वामी के रासलीला दल में काम करना आरम्भ किया, जहाँ उन्हें अभिनय, नृत्य, गायन, रूपसज्जा और कोरियोग्राफी आदि का अनुभव प्राप्त हुआ। बाद में वे कुछ समय श्री कालिचरण पटनायक की थियेटर कम्पनी में रहे और यहाँ पर उन्होंने मृदंग और तबला वादन का प्रशिक्षण प्राप्त किया। गुरु पंकज चरण दास से प्रशिक्षण

प्राप्त करने के बाद 30 वर्ष की उम्र में उन्होंने कला विकास केन्द्र, कटक में ओडिसी नृत्य के अध्यापन का कार्य आरम्भ किया और लगभग 15 वर्षों तक इस संस्था के साथ सम्बद्ध रहते हुए उन्होंने 'शकुन्तला', 'कृष्ण-कथा', 'गीतगोविन्द', 'मेघदूत' आदि अनेक नृत्य नाटकों की रचनाएँ की। गुरु केलुचरण महापात्र को अनेक सम्मान प्राप्त हुए हैं जिनमें केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार भारत सरकार का पद्मश्री और पद्मविभूषण सम्मान संगीत रिसर्च अकादमी कोलकता का आई.टी.सी. पुरस्कार ओर मध्यप्रदेश सरकार का 1988-89 कालिदास सम्मान शामिल हैं।

कथकली नृत्य

कलामण्डलम् गोपी

कलामण्डलम् गोपी का जन्म 30 मई 1937 को हुआ। श्री गोपी ने कथकली की आरम्भिक शिक्षा गुरु थेक्किनकट्टिल राबुन्नि नायर से प्राप्त की। बाद में वे केरल के कलामण्डलम् में विद्यार्थी के रूप में शामिल हुए जहाँ उनकी नृत्य कला को गुरु कलामण्डलम् पद्मनाभन् अय्यर और गुरु रमण कुट्टी नायर के मार्गदर्शन में परिष्कार प्राप्त हुआ। 1957 में उन्होंने कला मण्डलम् से स्नातक की उपाधि प्राप्त की और उसके तुरन्त बाद वे कलामण्डलम् में ही शिक्षक के रूप में नियुक्त हुए। 34 वर्ष तक इस संस्थान में प्रोफेसर आदि के पदों पर निरन्तर कार्यरत रहने के बाद वे पिछले प्राचार्य के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं। उन्होंने विभिन्न प्रस्तुतियों में रगमंगड, नल और बाहुक, भीम, अर्जुन और संथन गोपालम्, कर्ण और रुद्र आदि की सुप्रसिद्ध भूमिकाएँ निभायी हैं। कलामण्डलम् गोपी ने भारत और विश्व के अनेक देशों में नृत्य प्रस्तुत किया है। और उन्हें अनेक सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए हैं जिसमें 1987 का केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार शामिल है।

कुचीपुडी नृत्य

वेदान्तम् सत्यनारायण शर्मा

कुचीपुडी के शीर्षस्थानीय नर्तक वेदान्तम् सत्यनारायण शर्मा ने नृत्य की आरम्भिक शिक्षा अपने वरिष्ठ भ्राता श्री प्रह्लाद शर्मा से प्राप्त की। बाद में उन्होंने कुचीपुडी के महान कलाकार चिन्ता कृष्णमूर्ति के मार्गदर्शन में प्रशिक्षण प्राप्त किया। नृत्य के अलावा वेदान्तम् सत्यनारायण शर्मा कर्नाटक संगीत में भी पारंगत हैं और उन्होंने सिस्तु ब्रह्मइया शास्त्री से कर्नाटक संगीत का विधिवत् प्रशिक्षण प्राप्त किया है। सत्यभामा, उषा और मोहिनी आदि श्री शर्मा की विश्वविख्यात भूमिकाएँ रही हैं। वेदान्तम् सत्यनारायण शर्मा ने श्री तल्लापका अन्नम्माचार्या सारस्वत कलापीठम् की स्थापना की है और वे वेंकटरामा नाट्य मण्डली का अपनी प्रतिभा से निरन्तर संवर्धन कर रहे हैं। इसके अलावा श्री वेदान्तम् सत्यनारायण शर्मा नृत्य की अनेक अकादमियों और विद्यालयों में अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत् रहे हैं। 1985 में पेरिस में और 1986 में अमेरिका में आयोजित 'भारत महोत्सव' समेत उन्होंने विश्व के अनेक देशों में आयोजित नृत्य सभाओं में शिरकत की है। श्री वेदान्तम् सत्यनारायण शर्मा को संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार पद्मश्री, भारत कला प्रपूर्ण और मध्यप्रदेश सरकार का कालिदास सम्मान समेत अनेक पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैं।

कथक नृत्य

गुरु रामलाल

रायगढ़ के महाराजा चक्रधर द्वारा प्रवर्तित रायगढ़ घराने के अग्रणी नर्तक और गुरु पण्डित रामलाल महान् गुरु और नर्तक पण्डित कार्तिक राम के पुत्र और शिष्य हैं। गुरु रामलाल ने नृत्य की शिक्षा अपने पिता के अलावा पण्डित जयलाल महाराज और महाराजा चक्रधर सिंह से प्राप्त की। कथक के अलावा पण्डित रामलाल गायन में भी दक्ष हैं। गायकी की शिक्षा उन्होंने उस्ताद मोहम्मद खाँ और पण्डित कार्तिक राम से प्राप्त की है। एक लम्बे समय तक रायगढ़ में कथक और संगीत आदि की शिक्षा देने के बाद गुरु रामलाल 1981 से 1990 तक भोपाल स्थित चक्रधर नृत्य केन्द्र में सहायक गुरु के पद पर रहे। 1990 से 1992 तक खैरागढ़ विश्वविद्यालय में नृत्य विभाग के रीडर रहने के बाद वे चक्रधर नृत्य केन्द्र, भोपाल में गुरु के पद पर कार्यरत रहे हैं। गुरु रामलाल ने कथक की रायगढ़ शैली के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक कार्यशालाओं का निर्देशन किया है और चक्रधर नृत्य केन्द्र के माध्यम से अनेक सुयोग्य नृत्यांगनाओं को प्रशिक्षित किया है।

अस्ताद देबू

भारतीय और पाश्चात्य नृत्य शैलियों के बीच संवाद और अन्तर्क्रिया से नृत्य की एक नितान्त विशिष्ट और निजी शैली विकसित करने के लिए भारत और विश्व के अनेक देशों में प्रतिष्ठित अस्ताद देबू ने कथकली की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की है। उन्होंने मार्था ग्राहम नृत्य शैली का भी सघन प्रशिक्षण प्राप्त किया है। वूपेरताल डांस कम्पनी के श्री पीना बाउश और पिलो बोलस डांस कम्पनी के श्री एलिसन चीस के साथ काम करते हुए उन्होंने अपनी शैली का परिष्कार किया। उनके नृत्य के स्वरूप-संगठन में जापान और इण्डोनेशिया की अनेक नृत्य कम्पनियों के साथ काम करने के उनके अनुभव ने भी योगदान किया है। अस्ताद देबू ने जापान और थाइलैण्ड के राजपरिवारों, ग्रेट वाल ऑफ चाइना, एलीफेण्टा और खजुराहो में आयोजित नृत्य समारोहों समेत अनेक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर नृत्य प्रस्तुत किया है। उन्होंने पेरे कार्डिन द्वारा निर्मित बैले के लिए कोरियोग्राफी की है और वे बैंगलोरेट फ्रान्स में आयोजित इण्टरनेशनल कोरियोग्राफर्स कॉम्पीटीशन में शामिल हुए हैं। लन्दन टेलीविज़न के चैनल 4 ने उनके नृत्य पर केन्द्रित फिल्म तैयार की है।

स्त्रोत : भारत भवन में हुए पुरुष समारोह के (कैटलॉग के अंश) साभार

■

एक समृद्ध और विविध कला है भारतीय शास्त्रीय नृत्य

भारतीय शास्त्रीय नृत्य एक समृद्ध और विविध कला है, जो देश की सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह नृत्य शैली प्राचीन काल से चली आ रही है। इसकी कई विधाएं और इसमें विभिन्न क्षेत्रों की अपनी विशिष्ट नृत्य शैलियां भी शामिल हैं। शास्त्रीय नृत्य की उत्पत्ति प्राचीन काल में हुई थी, जब इन नृत्यों को देवताओं और देवियों की पूजा के लिए किया जाता था। उस दौर में नृत्य को एक पवित्र कला माना जाता था, जो लोगों को आपस में आध्यात्मिक और भावनात्मक रूप से जोड़ती थी।

भारत में कब हुई शास्त्रीय नृत्य की शुरुआत

बताया जाता है कि भारतीय शास्त्रीय नृत्य की शुरुआत भारत में लगभग 200 ईसा पूर्व हुई थी। यह नृत्य एक आनंदमय कला है, जो उत्साह भरती है। कई नृत्य प्रस्तुतियां देवताओं की कहानियों और अन्य ऐतिहासिक वृत्तांतों को पुन: प्रस्तुत करने के लिए भी नृत्यबद्ध की जाती हैं। नृत्य प्रदर्शन आमतौर पर त्योहारों, विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों में किए जाते हैं। इन शैलियों का प्रदर्शन करने वाले नर्तक पेशेवर होते हैं, जिन्होंने भारतीय शास्त्रीय नृत्य की शैली में सालों तक अध्ययन और अभ्यास किया होता है। प्रदर्शनों में नर्तक गीत या संगीत की लय पर नृत्य करते हैं। कथक जैसी कुछ शैलियों में पैरों को पटकने पर लयबद्ध प्रभाव बढ़ाने के लिए कभी-कभी टखनों में घंटियां भी पहनी जाती हैं। नर्तक प्रदर्शन में जिस पात्र का चित्रण कर रहे होते हैं, उसकी भूमिका निभाते हैं।

भारतीय शास्त्रीय नृत्य का महत्व

• सांस्कृतिक धरोहर: भारतीय शास्त्रीय नृत्य हमारी सांस्कृतिक धरोहर का एक खास और जरूरी हिस्सा है, जो हमें हमारी संस्कृति से जोड़ता है।

• आत्म-अभिव्यक्ति: यह नृत्य शैली हमें आत्म और भावनात्मक अभिव्यक्ति को व्यक्त करने के लिए एक मंच प्रदान करती है।

• भावनात्मक अभिव्यक्ति: इसमें भावनात्मक अभिव्यक्तियां शामिल हैं, जो दर्शकों को आकर्षित करती हैं। मन प्रसन्न करती है और साथ ही ऊर्जावान भी बनाती है।

भारतीय शास्त्रीय नृत्य के प्रकार

भारतीय शास्त्रीय नृत्य सांस्कृति धरोहर के साथ खुद को प्रस्तुत करने की एक खास विधा है। अलग-अलग नृत्य शैलियों में अलग-अलग भाव और मुद्राएं प्रस्तुत की जाती है। वैसे तो भारतीय शास्त्रीय नृत्य की कई शैलियां हैं, लेकिन यहां हम कुछ 6 प्रमुख शैलियों के बारे में बात करेंगे।

भरतनाट्यम

भरतनाट्यम एक पारंपरिक भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैली है, जो दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य में उत्पन्न हुई थी। यह नृत्य शैली अपनी जटिल हाथ और पैर की मुद्राओं, भावपूर्ण अभिव्यक्तियों और आकर्षक प्रस्तुति के लिए जानी जाती है। भरतनाट्यम में जटिल हाथ-पैर की मुद्राएं शामिल होती हैं, जो नर्तक की गति और लचीलापन को दर्शाती हैं और यही दर्शकों को आकर्षित करती हैं। भरतनाट्यम एक महत्वपूर्ण कला है, जो सांस्कृतिक धरोहर का एक हिस्सा है। यह नृत्य शैली न केवल हमें अपनी संस्कृति से जोड़ती है, बल्कि यह हमें आत्म-अभिव्यक्ति और भावनात्मक अभिव्यक्ति के लिए भी एक मंच प्रदान करती है। भरतनाट्यम में नर्तक अक्सर पौराणिक कथाओं और हिंदू धर्म से संबंधित कहानियों का प्रदर्शन करते हैं। इसकी कई अलग-अलग शैलियां हैं, जिनमें कलाक्षेत्र, वाझुवूर और पंडानल्लूर शामिल हैं।

कथक

कथक एक पारंपरिक भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैली है, जो उत्तर भारत में उत्पन्न हुई थी। यह नृत्य शैली अपनी तेज गति, जटिल पैर की मुद्राओं और भावपूर्ण अभिव्यक्तियों के लिए जानी जाती है। कथक में तेज गति एक महत्वपूर्ण तत्व होता है, जो नर्तक की गति और लचीलापन को दर्शाता है। कथक में ठुमरी एक महत्वपूर्ण तत्व है, जो नर्तक की भावनाओं और अभिव्यक्ति को दर्शाता है। इसमें तराना एक खास तत्व है, जो नर्तक की गति और लचीलापन को दर्शाता है। इसमें भाव भी है, जो नर्तक की भावनाओं और अभिव्यक्ति को दर्शाता है। कथक का इतिहास प्राचीन काल से जुड़ा हुआ है, जब यह नृत्य देवताओं और देवियों की पूजा के लिए किया जाता था। कथक नृत्य में तबला, हारमोनियम, सितार और अन्य वाद्ययंत्रों का उपयोग किया जाता है। कथक में ताल का बहुत महत्व है और नर्तक विभिन्न तालों में नृत्य करते हैं।

ओडिसी

ओडिसी एक पारंपरिक शास्त्रीय नृत्य विधा है, जो पूर्वी भारत के ओडिशा राज्य में उत्पन्न हुई थी। यह नृत्य शैली अपनी तरल गति, भावपूर्ण अभिव्यक्तियों और आकर्षक प्रस्तुति के लिए जानी जाती है। ओडिसी में तरल गति एक महत्वपूर्ण तत्व होता है। इसमें भावपूर्ण अभिव्यक्तियां शामिल होती हैं, जो दर्शकों को आकर्षित करती हैं। इस नृत्य कला में अभिनय एक महत्वपूर्ण तत्व होता है, जो नर्तक की अभिव्यक्ति को दर्शाता है। इसमें शरीर की त्रि-भंगी मुद्रा और 'चौक' (एक वर्गाकार मुद्रा) का उपयोग किया जाता है। इस नृत्य में 'मंगलाचरण' (प्रार्थना), 'बट्टु' (शुद्ध नृत्य), 'पल्लवी' (भावपूर्ण नृत्य), 'अभिनय' (कहानी-कथन) और 'मोक्ष' (अंतिम मुक्ति) जैसे तत्व शामिल होते हैं।

कुचिपुड़ी

कुचिपुड़ी एक पारंपरिक शास्त्रीय नृत्य कला है, जो दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश राज्य में उत्पन्न हुई थी। यह नृत्य शैली अपनी जटिल हाथ और पैर की मुद्राओं, अभिव्यक्तियों और आकर्षक प्रस्तुति के लिए जानी जाती है। इसमें हाथ और पैर की मुद्राएं शामिल हैं, जो नर्तक की गति और लचीलापन को दर्शाती हैं। कुचिपुड़ी की प्रस्तुति आकर्षक और मनमोहक होती है। यह नृत्य शैली सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो हमें अपनी संस्कृति से जोड़ती है और आत्म-अभिव्यक्ति के लिए एक मंच प्रदान करती है। यह आमतौर पर देवताओं के आह्वान से शुरू होता है, इसके बाद शुद्ध नृत्य, भावपूर्ण नृत्य और नृत्य-नाटक के माध्यम से कहानी कहने का क्रम होता है। इसे शास्त्रीय कर्नाटक संगीत के साथ किया जाता। इसमें एक विशेष प्रदर्शन होता, जिसमें नर्तक सिर पर पानी का बर्तन रखकर पीतल की थाली के किनारे पर नृत्य करते हैं।

Women posing on Kuchipudi plate and kalash on head

मणिपुरी

मणिपुरी नृत्य शैली पूर्वोत्तर भारत के मणिपुर राज्य में उत्पन्न हुई थी। यह नृत्य शैली अपनी तरल गति, भावपूर्ण अभिव्यक्तियों और आकर्षक प्रस्तुति के लिए जानी जाती है। इसकी प्रस्तुति आकर्षक और मनमोहक होती है। इसमें लय, भाव, अभिनय महत्वपूर्ण होते हैं। इसमें भगवान कृष्ण के जीवन की कहानियों को दर्शाता जाता है। इसमें संगीत वाद्ययंत्रों जैसे पुंग (ड्रम), ढोल और बांसुरी का उपयोग किया जाता है।

मोहिनीअट्टम

मोहिनीअट्टम दक्षिण भारत के केरल राज्य में उत्पन्न हुई थी। यह नृत्य शैली अपनी तरल गति, अभिव्यक्तियों और आकर्षक प्रस्तुति के लिए जानी जाती है। मोहिनीअट्टम में अक्सर हिंदू पौराणिक कथाओं, विशेष रूप से भगवान विष्णु के मोहिनी अवतार से जुड़ी कहानियों को दर्शाया जाता है। इसमें नर्तकी आमतौर पर सफेद या क्रीम रंग की साड़ी पहनती हैं, जिसके किनारे सुनहरे बॉर्डर से सजे होते हैं। इसमें कर्नाटक संगीत का उपयोग किया जाता है, और गायन आमतौर पर मणिप्रवालम में होता है, जो संस्कृत और मलयालम का मिश्रण है।

हस्त मुद्राः असंयुक्त मुद्रा

एक हाथ से बनने वाली कुछ विशेष मुद्राएँ

शरीर के अंग-प्रत्यंगों की विशेष स्थिति या चेष्टा मुद्रा कहलाती है। मुद्रा दो प्रकार की होती है भाव-मुद्रा (हृदय की भावनाओं की प्रतीक) और अनुकरण मुद्रा (अनुकार्य की रूपरेखा और स्वभाव को अंग- प्रत्यंगों द्वारा प्रदर्शित करती हुई कुछ विशेष मुद्राएँ)

हस्त मुद्रा: संयुक्त मुद्रा

दोनों हाथों से बनने वाली कुछ विशेष नृत्य मुद्राएँ

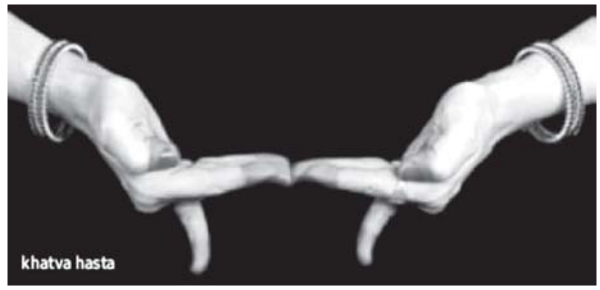

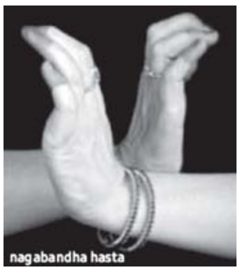

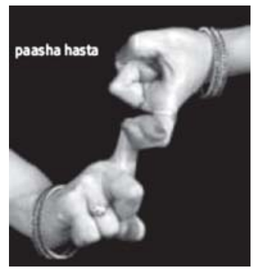

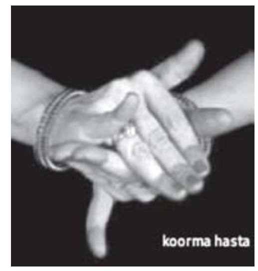

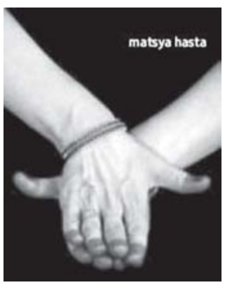

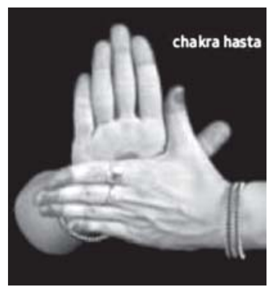

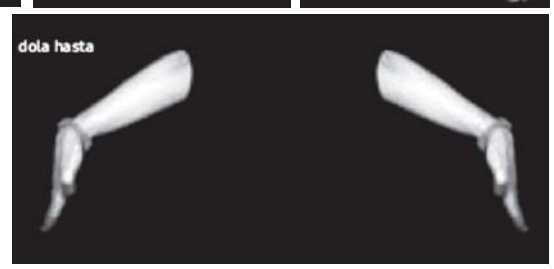

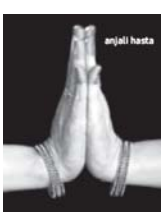

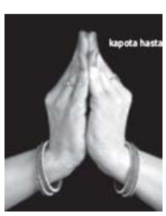

सभी छाया चित्र (नृत्य/हस्त मुद्राएँ)
सौजन्य: डॉ. लता सिंह मुंशी
प्रस्तुति: कला समय

शक्तिपात का प्रसाद है सौन्दर्यलहरी का अनुदित सौन्दर्य विधान....

पुस्तक विवरण-

पुस्तक शीर्षक : सौन्दर्यलहरी
लेखक : आचार्य प्रभुदयाल मिश्र
समीक्षक : डॉ. राजरानी शर्मा
प्रकाशन : विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
पृष्ठ : 128 + 4 = 132
मूल्य : ₹200/-

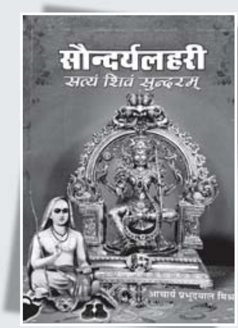

डॉ. राजरानी शर्मा

सौन्दर्यलहरी 'आदि शंकराचार्यकृत शतश्लोकात्मक स्तोत्र-काव्य है, जिसमें अद्वैत वेदांत और तंत्र का सुंदर समन्वय है, देवी त्रिपुरसुन्दरी के रूप, गुण और महिमा का वर्णन प्रधान है, तथा जिसमें भक्ति, श्रृंगार और अद्भुत रस का प्रवाह सम्मिलित है। शंकर की यह परा कृति मात्र काव्यकृति नहीं है क्योंकि इसका स्रष्टा '**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू :** ' का मानक है । इसका कवि शक्ति के सौन्दर्य का साक्षी भी है और दृष्टा भी । 'सौन्दर्यलहरी ' भारतीय मनीषा के अनिरुक्त वाक् का साक्षात् निदर्शन है व परम निकष है ।यह एक ऐसा ग्रन्थ रत्न है जिसे तंत्र सिद्धि व अद्वैत साधना के लिये अवगाहन किया जाता है, आध्यात्म के गहन अनुभव और अमूर्त संसार में भाव प्रवेश के लिये बारंबार पढ़ने पर भी दुरूह लगता है। हिन्दी अनुवाद की प्रवाही गति को माध्यम बना कर आचार्य मिश्र ने सौन्दर्यलहरी को अवगाहन करने का तन्त्र साधकों और साहित्य साधकों को सहज समाधान दिया है । परा के वैखरी में अनुगायन का सहज स्वरूप प्रस्तुत करते हुए आचार्य प्रभुदयाल मिश्र ने 'सौन्दर्यलहरी ' का काव्यानुवाद अद्भुत अनुष्ठानिक चेतना के साथ किया है । आचार्य प्रभुदयाल मिश्र जी ने जिस तेजस्विता, मंत्रात्मकता और प्रामाणिकता के साथ यह काव्यानुवाद किया है काव्यानुवाद कला के शब्द - शब्द को तोला - माशा - रत्ती के मानक के साथ तौलकर संस्कृत से हिन्दी में सुलभ करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है । तन्त्र दृष्टि और सौन्दर्य दृष्टि को समझने और पारलौकिक दृष्टि को लौकिक जनों तक सुगम कराने के उद्देश्य से सर्वप्रथम 2005 में काव्यानुवाद किया जिसकी लोकप्रियता का मानक यह कि 2012 में द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण और 2025 में तृतीय संस्करण प्रकाशित हुआ ।

आचार्य प्रभुदयाल मिश्र
लेखकः वरिष्ठ साहित्यकार,
प्रधान संपादकः
तुलसी मानस भारती

आदि शंकर की कृति का काव्यानुवाद करने से पूर्व भूमिका के रूप में आचार्य मिश्र कहते हैं ' सौन्दर्यलहरी श्रौत सिद्धान्तों का ही समर्थन करती है । वे सौन्दर्यलहरी में परिणामवाद का समर्थन करते हैं । इस तरह हमें सामान्य प्रश्न का भी समाधान उपलब्ध हो जाता है कि अद्वैत मत के प्रवर्तक ब्रह्मसूत्र के भाष्यकर्ता शंकर माया (शक्ति) की स्तुति किस प्रकार करते हैं। आदि शंकर के समय तन्त्र के माध्यम से अवैदिक पद्धतियों का प्रचार अपने शिखर पर था। महामाया शम्बर तंत्र, योगिनी जालशम्बर, भैरवाष्टक, बहुरूपाष्टक, यमलाष्टक आदि तन्त्रों के द्वारा भोग प्रधान उपासना मार्ग का प्रचार हो रहा था। मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, इत्यादि तान्त्रिक क्रियाओं द्वारा जनमानस को भ्रमित किया जा रहा था। इस विषम ऐतिहासिक परिस्थिति में आदि शंकर ने सकल पुरुषार्थ साधनभूत 'सौन्दर्यलहरी' के माध्यम से श्री विद्या तन्त्र को प्रकट किया। आचार्य मिश्र कहते हैं तन्त्र का ब्रह्म की माया न होकर ब्रह्म की अभिव्यक्ति है । इस अर्थ में एक तंत्रशास्त्री भौतिक संसार को आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ दोनों पद्धतियों से अध्ययन करने में समर्थ होता है। क्यूंकि संसार उसके लिये हेय नहीं है अतः वह सर्वत्र सौन्दर्य का साक्षात्कार करता है । तन्त्र की यह दृष्टि सौन्दर्यलहरी के संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।' गहन चिन्तन के पश्चात् काव्यानुवाद में प्रवृत्त होने से पूर्व आचार्य मिश्र स्पष्ट करते हैं कि 'वह अपनी मूल प्रकृति में तन्त्र भोग नहीं है । यह भोगानुभूति कराते हुए भी भोग का नकार ही है । इस ग्रंथ में श्रौत , योग और तंत्र सिद्धान्त का अद्भुत समन्वय हुआ है जिसमें ब्रह्म और जीव का एकत्व हुआ है । यह श्री विद्या प्रत्यक्ष राज राजेश्वरी त्रिपुर सुंदरी ही हैं ।'

आचार्य मिश्र स्वयं स्थापना देते हुए कहते हैं 'आनंद की इस तुरीयावस्था में परा का अनुगान वैखरी में होता है।'

शंकराचार्य की सौन्दर्योपासना का काव्यानुवाद के द्वारा अनुपान कराते हुए आचार्य मिश्र कहते हैं 'अद्वैत के इस परमाचार्य को इस साधन में भक्त का द्वैत , दैन्य व शिशुभाव सहज स्वीकार है । अनुदित शब्दों की बोधगम्यता दर्शनीय है –

'माता कह कब लाल महावर चरण तुम्हारे
प्रक्षालित जल विद्यार्थी बन पान करूँगा ,
वाणी मुख ताम्बूल सिक्त जिस रसधारा से
जन्मजात गूँगे में भी कविता उपजाती ॥'

सौन्दर्यलहरी संस्कृत के 25 मात्राओं के शिखरिणी छंद में रचित है , जिसे आचार्य प्रभुदयाल मिश्र ने 24 मात्राओं के हिन्दी रोला छंद के बंध में शब्द – शब्द समाहित कर लिया है । बिना गहन साधना के ये संभव नहीं । अनुवाद कार्य परकाय – प्रवेश के समान दुस्साध्य कार्य है जिसे अनुवादक मिश्र जी ने सुनियोजित विद्या और आध्यात्म के शिखर पर समाधि लगाकर पुनर्सृजन सदृश किया है। शुद्ध कविता में सिद्धि की सामर्थ्य सिद्धान्ततः सन्निहित रहती है। प्रकारान्तर से शुद्ध कविता अर्थात् रससिद्ध कविता और रस स्वयं में परिपाक की सत्वोद्रेक अवस्था ही है । एक तंत्रसिद्ध कृति के रससिद्ध रूपान्तरण में अनेक भाषिक युक्तियों का आश्रय दुष्कर है । सौन्दर्यलहरी की लहर – लहर में तंत्र और संस्कृत के आध्यात्म सिद्धांतों के साथ हिन्दी की लयात्मकता के तालमेल से आस्वाद और सौन्दर्यबोध द्विगुणित हो गया है !

अनेक उल्लेखनीय बिन्दुओं में एक यह बिन्दु महत्वपूर्ण है कि अनुवाद होते हुये भी समान संज्ञाओं, समान विशेषणों और समान क्रियापदों को प्रयोग किया गया है। संस्कृत शिखरिणी से हिन्दी के रोला छंद की मान्यताओं की सीमा में बँधे रहकर कवि ने अप्रतिम कार्य किया है जैसे... समान पद चयन के द्वारा सरल बनाकर 1. शकुन्ताधिप के लिये गरूड़ का चयन , 2. 'षण्णाम्युपरिकमलानां' के लिये षट् कमलों से ऊपर कला तुम्हारी लिखकर भाव बोध का मृदु चित्रण किया है । 3. महाशक्ति त्रिपुर सुन्दरी के अनेक पर्याय यथावत् प्रयोग किये हैं किन्तु संस्कृत से हिन्दी तक की काव्य यात्रा में भी काव्यानुवाद की सहजता का चमत्कार विद्यमान है ।

काव्यानुवाद में छंद परिवर्तन के साथ यदि समतुल्य शब्द और पदबंध मिल जाये तो बड़ी उपलब्धि मानी जाती है परंतु इससे भी आगे जाकर आचार्य मिश्र ने महाशक्ति के अधिकांश पर्यायों को शिखरिणी से रोला छंद तक की यात्रा में यथावत् प्रयोग कर पाया है यह आश्चर्यजनक है । 90 प्रतिशत तक शब्दों और पदबंधों को यथावत् प्रयोग कर पाने का कारण काव्य की अद्भुत क्षमता के साथ आदि शंकर के काव्य – मर्म और तत्त्व बोध पर अभूतपूर्व निष्ठा से अवगाहन ही है जैसे महाशक्ति ' शिव की अनघ आत्मा ' कहना , चिदानंदकारं के लिये ' चिदानंदधारा ' का प्रयोग , 'विश्व वपुषा ' के लिये विश्वरूप पदबंध का प्रयोग पारिभाषिकता की सजगता से रक्षा करना ही है । शब्दों को मृदु कलेवर प्रदान करने का पावन प्रयास है । अनुवाद प्रायः नीरस हो जाते हैं किन्तु यह पंक्ति सरसता की कसौटी है...

'भवत्राता अरुणा शिव की तू करुणा है' में अद्भुत लयात्मकता संरक्षित है। **'तनद्युति शिरीष, कुचतट कठोर प्रस्तर से' मृदूनि कुसुमादपि वज्रादपि कठोराणि** का ही रूपान्तरण किया है । कतिपय पर्याय काव्यात्मक पद – लालित्य के साथ विराटता के वैभव को सप्रयास बुनाबट में ले आये हैं जैसे – धरणिधरराजन्यतनये के लिये गिरिजा शब्द का प्रयोग छन्दानुशासन की मान्यता का कारण बना है । 'तुहिनगिरिणावत्सलतया के लिये दुलराया अत्यंत आत्मीय प्रयोग के साथ सहज प्रवाह का द्योतक भी है।' विराट् संकल्पनाओं की रक्षार्थ अनुवाद करते समय आचार्य ने अतिरिक्त सजगता और सामासिकता का परिचय दिया है जैसे 'बारह आदित्यों से आच्छादित स्वर्ण मुकुट ' को अभिधा में ही प्रयोग किया है । कहीं – कहीं तो इतनी अधिक समतुल्य शब्दावली है कि काव्यनुवाद निष्ठा से निर्वाह का आश्चर्य आनंद में बदल जाता है जैसे सरसिज भव को सरसिज भव ही रहने दिया है , 'अदभ्यपय केलि' को नीर –क्षीर न लिख कर केवल 'पय पानी' ही लिखा है । यह सावधानता ही इस काव्यनुवाद की लोकप्रियता का प्राणतत्त्व है ।

विराट और अलौककिता को अनस्पर्शित रखते हुये बिम्बविधान में पर्यायों को सजगता से चुन कर प्रयोग करना सौन्दर्यलहरी के काव्यानुवाद को आकर्षक बना गया है जैसे – महात्रिपुर सुंदरी शिव की पराशक्ति ही नहीं, आदिशक्ति की आराध्या और उनके ब्रह्म साक्षात्कार की परमावस्था भी हैं। इस तथ्य को आदि शंकर ने अद्भुत विराटता से प्रस्तुत किया है 'ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र और ईश्वर उनके पलंग के चार पाए हैं और शिव शंकर इसके धवल पट हैं। इस स्थिति में आद्याशक्ति का परिचय परब्रह्म महिषी के रूप में ही हो सकता है अतः इस छंद का सुंदर अनुवाद उत्कृष्टता का उदाहरण है –

'आगमविद् वाणी की देवी विधि पत्नी हैं
विष्णुप्रिया पद्मा, शिव भामिनि पार्वती हैं
तू तुरीय दुष्प्राप अपरिमित महिमा वाली
ब्रह्म राज्ञि, जग भ्रमित महामाया से तेरी ॥ '

आदि शंकर के त्रिगुणातीत मूर्ति के साक्षात्कार की भूमिका को यथावत् रूपायित किया है जिसमें वे निरे कवि न होकर उस ' देव – काव्य ' के द्रष्टा भी हैं जो न कभी नष्ट होता है न ही क्षीण ' न ममार न जीर्यते' (अथर्ववेद) अलौकिक अनुभूतियों को अनुवाद के धरातल पर लाने का प्रयोग गहन ध्यानावस्था में किया गया है । विशिष्टता इस बात की है कि ये भावानुवाद न होकर तत्वबोधपूर्वक किया गया निष्णात् प्रामाणिक काव्यानुवाद है ।

भाषिक औदात्य के कारण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच कर पूरी संचेतना के साथ अलौकिक रहस्यों की विराट् अमूर्त संकल्पनाओं को वैखरी में मूर्त कर पाये हैं । समाधि भाषा में साक्षात्कीकृत इस अप्रतिम कृति का , काव्यानुवाद कर्ता आचार्य मिश्र की शब्द – शब्द सजगता ही सहजता से उन अनुभूतियों के मेघाच्छन्न आकाश को पाठक के लिये निरभ्र और पारदर्शी बना पाई है । अनेक युक्तियों में सामासिकता , पदबंध निर्माण में

तात्विक– निर्णय और श्रुत्यर्थव्यंजनाओं का महत्वपूर्ण योगदान है ।

उदाहरण के लिये – जैसे पारंपारिक शिख – नख वर्णन में कवियों ने स्थूल सौन्दर्य पर अधिक बल दिया है जबकि आदि शंकर ने स्मित – दृष्टि, कृपा – कटाक्ष का सूक्ष्म मनोहारी वर्णन किया है और उसका चित्ताकर्षक काव्यानुवाद आचार्य मिश्र की कृति का शृंगार है...

'शिवप्रिया तुम्हारे तीन नेत्र नीलांजन से
तीनों वर्णों में अलग -अलग हैं आलोकित
ब्रह्मा हरि रूद्र आदि के उपरत होते ज्यों
नूतन रचना रत सत रज तम गुण तीनों ।'

परा शक्ति का यह चित्रण विराट् की संकल्पनाओं को शब्दानुभूतियों में उतारने का भागीरथ प्रयास ही है। और देखिये करुणार्द्रता का सटीक चित्रण

'पलकों के गिरते दुनिया का ही अंत न हो
आँखें इस शंका से तुम बंद न करतीं ।'

एक ओर माँ का करुणाकलित हृदय है तो दूसरी ओर वात्सल्य रस से ऊभ – चूभ वक्षस्थल का अवलंब माँगते भक्तमन का अप्रतिम चित्रण है –

'षणमुख और गणेश साथ में जिनके पीते
दुग्ध सिक्त स्तन माँ दुःख हरें हमारा'

इसमें स्कन्द का पर्याय षणमुख कहकर स्पष्टता का प्रसाद गुण सहज प्राप्त कर लिया है। अनुवाद की अनेक छोटी – छोटी युक्तियों से समग्र प्रभाव की युति सिद्ध हो सकी है । शब्द चयन की सोद्देश्यता ने चमत्कृत कर दिया है, मातृस्तन के वर्णन की उपमा तो आदि शंकर ने अतुलनीय दी ही हैं, उनका रूपान्तरण भी आचार्य मिश्र ने कुछ कम नैपुण्य से नहीं किया। द्रष्टव्य है –

'सुधासार माणिक्य कलश वक्षोज युगल
हे नगपति सुता हमारे मन संदेह न कुछ
षणमुख, गणपति कर पान जिन्हें अद्यावधि तक
हैं चिरकुमार दारा संग सुख सब अविदित। '

माणिक्यकुतुपौ के स्थान पर माणिक्य कलश और नगपतिपताके के लिये नगपति सुता पदबंधों का चयन ऐसा लगता है कि अनुवाद न होकर अनुगूँज सी रचना है। गिरिजा की नाभि को 'रति का क्रीडागंन और शिव नेत्र अभीप्सित सिद्धि द्वार' कहना कोई सामान्य अनुवाद न होकर वाणी की सिद्धि का पर्याय प्रतीत होता है । यह सत्य है कि शक्तिपात का प्रसाद ही है यह अनुदित सौन्दर्य विधान।

विराट् सौन्दर्य के इन्द्रियातीत रूप को साकार करने में ऊहात्मक चित्रों की झड़ी लगा दी गयी है । जैसे –

'चंद्रवदन सी तेरी स्मित चाँदनी पी
अतिरस से चोंच चकोरों की जड़ हो जाती
तब चंद्र किरण से अम्ल स्वाद की वे रुचि कर
स्वछंद निशा ज्यों काँजी का रस पीते ।'

अहा ! क्या चित्रण है जहाँ विराट् सौन्दर्य के आगे चंद्र किरण अम्लीय काँजी के स्वाद की उपमा पाती है । आदि शंकर की रससिद्ध कृति के सत्य निष्ठा से किये अनुवाद कार्य में आचार्य मिश्र ने तत्त्वबोध को प्रामाणिकता के साथ स्पष्टीकरण भी किया है ; इस युक्ति से साधकों को अवलंबन मिलता है और सिद्धि की राह निरापद हो जाती है, उदाहरणार्थ – पारंपरिक 'नख – शिख सौन्दर्य' वर्णन को आदि शंकर ने सौन्दर्यलहरी में साभिप्राय 'शिख – नख सौन्दर्य' वर्णन का क्रम दिया जिसका औचित्य बताते हुये आचार्य मिश्र लिखते हैं कि 'आदि शंकर कौलमत के स्थान पर समयाचार साधना को ही लक्ष्यगत रखते हैं । इसके साधकों को ऊपर के चक्रों पर ही ध्यान केन्द्रित करना चाहिये, नीचे के मूलाधार व स्वाधिष्ठान पर नहीं क्योंकि इससे सांसारिकता में अधः पतित होने की प्रबल संभावना रहती है, यही कारण है कि शंकर ने सौन्दर्यलहरी में मुकुट से आरंभ कर चरण – नख तक का सौन्दर्य वर्णन क्रम रखा है । उसी प्रकार आनंदलहरी में आज्ञा चक्र से प्रारंभ करके मूलाधार चक्र पर समापन किया है । स्पष्ट है कि आज्ञा चक्र का बेध हो जाने पर अन्य चक्रों का बेध स्वत : ही हो जाता है ।' 'श्रुतीनां मूर्धानो' पदबंध का अनुवाद 'श्रुति का शिरोमाल्य' करना लालित्य योजना का सहजसाध्य रूप ही है ।

आचार्य मिश्र की स्वीकृति भी है कि 'स्वाभाविक रूप से इस संस्करण में मूल के और निकट पहुँचने की चेष्टा की गई है' और यह आस्वाद्यता यह परिपक्वता शक्ति के स्रोत की सफल अनुसंधानात्मक यात्रा ही है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी अपनी संस्तुति में कहते हैं 'यह ग्रन्थ एक पहेली है, आगम, उत्तम काव्य, दर्शन, शास्त्र और ज्ञान का सागर व साधना पद्धति सभी कुछ एक साथ कदाचित् यही एक ऐसा काव्य है, जो मुक्तक और प्रगीत के अनुपम भाव सौन्दर्य व लालित्य के साथ महाकाव्य और महावाक्य भी बनता है।'

आचार्य मिश्र ने शक्तिपात साधना के माध्यम से रस सृष्टि का सहज अनुपान किया भी है और साधकों व सहृदयों को कराया भी है । बिना अलौकिक कृपा के ऐसा पुनर्सृजन ऐसा रूपान्तरण संभव नहीं जिसमें आध्यात्म के रहस्यों का प्रामाणिक प्रणयन है। भाषिक औदात्य सत्वोद्रेकमय भावजगत् का सजग सुरक्षा कवच बना हुआ है । मंत्रात्मक सामासिकता ने अनुवाद को प्रसादत्व प्रदान किया है । सादृश्य विधान की समतुल्य शब्दावली से ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि यह आगम की स्वतंत्र कृति ही है। आचार्य मिश्र ने तंत्र साधन में सुगमता की दृष्टि से यंत्रों और यंत्रों को मंत्र जाप से साधने का विधान देकर इस कार्य को लोकमंगल की बंदनवार सा मांगलिक भी उपयोगी भी बना दिया है।

निष्कर्ष यह कि इस काव्यानुवाद को अवगाहन करके आगम अगम नहीं रह जाता और तंत्र – यंत्र और मंत्र से साध्य है ऐसी आश्वस्ति होती है। प्रासादिक कृति के कृपापात्र अनुवादक के काव्य– मंत्रों तों साहित्यिक दृष्टि और साधना दृष्टि दोनों से नमन ।

लेखिका: स्वतंत्र लेखक, ग्वालियर हैं।
संपर्क: के. 67, पटेल नगर, सिटी सेन्टर, ग्वालियर मो. 9495339771

■

हाशिये पर होना बुरा नहीं, कचोटता है असमय का अँधेरा

पुस्तक विवरण-

पुस्तक शीर्षक	:	असमय का अंधेरा (काव्य संग्रह)
लेखक	:	सुरेश गुप्ता
समीक्षक	:	विनोद नागर
प्रकाशन	:	प्रथमेश प्रिंटर्स, दृष्टि एनक्लेव, बावड़िया कलां, भोपाल
पृष्ठ	:	96 + 4 = 100
मूल्य	:	₹100/-

विनोद नागर

कविता साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। कविता लिखना आसान है या कठिन? इसका जवाब प्राय: उस वक्त सामने आता है, जब कोई अकवि कवि बनने की राह पर अपना पहला कदम बढ़ाता है। कहने के लिये आप इसे किसी संवेदनशील व्यक्ति (चाहे वह किसी भी पेशे में हो) द्वारा सृजनात्मक अंत:प्रेरणा से नये क्षेत्र में हाथ आज़माने का सायास प्रयास भी कह सकते हैं या स्वयं स्फूर्त तात्कालिक भावाभिव्यक्ति भी।

जनसंपर्क विभाग में चार दशक की सुदीर्घ सेवा के दौरान सुरेश गुप्ता से मिलने-जुलने वालों को शायद ही कभी इस बात का अहसास हुआ हो कि निरंतर भागदौड़ और ऊहापोह की दैनंदिन व्यस्तता के बीच कभी यह शख्स अपनी कलम का उपयोग फ़ाइल पर टीप लिखने या हस्ताक्षर करने से इतर किसी और प्रयोजन से भी करता रहा होगा..! मगर हकीकत यह है कि आये दिन नोट पैड पर चलती कलम से किसी कार्यक्रम अथवा बैठक के नोट्स लेने के अलावा अनायास ही कई पंक्तियाँ आकार लेती चली गई, जिन्हें सार्वजनिक रूप से पढ़े जाने का अवसर अब सेवा निवृत्ति के उपरांत प्रकाशित उनके काव्य संग्रह असमय का अँधेरा के माध्यम से आया है।

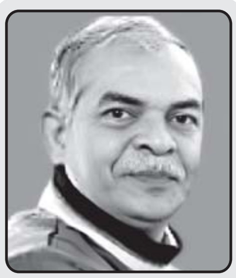

सुरेश गुप्ता
लेखक: पूर्व अपर संचालक जनसंपर्क विभाग म.प्र. शासन

पुस्तक का स्याह आवरण पृष्ठ सुरेश गुप्ता के हँसमुख मिलनसार स्वभाव की जनसंपर्कीय छवि से मेल नहीं खाता है, इसलिये उनकी कविताओं की तासीर को समझने के लिये अंदर के क़रीब 90 पन्नों पर ध्यान देना लाज़िमी है। कुल जमा 67 कविताओं में से अधिकांश के शीर्षक बिल्कुल छोटे किंतु सटीक हैं। पुस्तक के नाम को अनुप्राणित करती पहली कविता में ही कवि ने गंभीर सवाल उठाते हुए अँधेरे में समय को टटोला है- ''अँधेरे से किसी को भला क्या एतराज़ हो सकता है? रात लिखी ही है अँधेरे के नाम, जैसे सुबह, दोपहर, शाम दिन के नाम.. पर बहुत कचोटता है यह असमय का दिन का अंधेरा..।''

अर्चना (?) और मनु (?) को समर्पित पुस्तक में कवि ने न किसी साहित्यकार की लिखी प्रस्तावना की ज़रूरत समझी न भूमिका की। अलबत्ता कवर फ़्लैप पर कवि से चालीस साल से दोस्ती निभाते आ रहे कवि मित्र ध्रुव शुक्ल ने बेबाकी से खुलासा किया है- ''सुरेश ने अपनी ये कविताएँ न तो कभी मुझे सुनाई और न ही कहीं ये प्रकाशित हुई। गुपचुप रची इन छोटी-छोटी कविताओं को कविता संग्रह के रूप में पाठकों तक पहुँचाने का काम भी सुरेश ने नौकरी से निवृत्त होने के बाद ही किया..'' कस्बाई माहौल में गुजरे बचपन की यादों को उकेरती इन कविताओं में गाँव की सूखती नदी को देखकर उपजी वेदना भी है और दोस्तों से मिलने और बिछड़ने का आनंद व अवसाद भी। माता- पिता के होने और न रहने के सुख दु:ख का कोमल अहसास भी इन कविताओं में परिलक्षित होता है। मुख्य शीर्षकीय कविता में कवि का दो टूक नज़रिया 'असमय के अँधेरे में गहराती असमानता की अनुभूति अखरती नहीं है.. विरक्त भाव को दर्शाता है।

'कवि होने की बात' शीर्षक से पुस्तक के आमुख में ही सुरेश गुप्ता पाठकों को आगाह कर देते हैं कि उनकी इन कविताओं को काव्य रचना के प्रतिमानों पर तौला न जाये क्योंकि जिन गड्ड-मड्ड हालात और

मन:स्थिति में इन्हें अनायास ही रचा गया वहाँ कोलाहल भी था और तनिक नीरव शांति भी..! भला हो कवि-पत्रकार मित्र सुधीर सक्सेना का, जिन्होंने सुरेश गुप्ता को उनके व्यक्तित्व के इस पहलू को काव्य संग्रह के रूप में पाठकों तक पहुँचाने का की प्रेरणा दी।

काव्य संग्रह की दूसरी ही रचना का शीर्षक है- 'कविता, जिसे कोई नहीं पढ़ना चाहता' पर वास्तव में कविता सबको पढ़ना चाहती है। 'कविता बारिश में भीगना भी चाहती है और गर्मी में तपना भी..! उम्मीद कैसी..? किससे..? क्यों..? करने वाले ही जानते होंगे पूरी होगी या नहीं? उम्मीद को भी पता नहीं..!! रात ने एक दिन पूछ ही लिया दिन के अँधेरे से, मुझे क्यों करते हो बदनाम..? होना नहीं था पर हो रहा- पुल टूट रहे रिश्तों के.. राहों के..!! यह बानगी है सुरेश गुप्ता की 'अनगढ़' (?) कविताओं की।

'कहते हैं समय बड़े-बड़े ज़ख्मों को भर देता है पर समय जो ज़ख्म दे उनका क्या? रात का सन्नाटा पहले सुबह का हुआ.. फिर दिन का.. और शाम होते-होते पूरे दिन का..!! उन दिनों रातें जगाती ही नहीं रुलाती भी थीं; शुक्र था दिन में नींद आ जाती थी। बँधी मुट्ठी लाख की.. खुल गई तो खाक की.. पर मुट्ठी बँधे तो..! एक ही पेड़ के पत्ते और फूल.. पते झरे, गिरे, रुंदे पैरों तले.. फूल चुने गये माला में गूँथे गये..! यही है नियति का खेल..!! ये कविताएँ सचमुच पढ़ी जाने योग्य हैं।

अपने सहकर्मी मित्र मनोज पाठक को समर्पित कविता उसकी बात ही कुछ और थी में भाव विभोर कवि हृदय कह उठता है- 'साथ था तो हरदम अपने साथ होने की याद दिलाता था और अब जब नहीं है वो तो अपने नहीं होने की भी हरदम दिलाता है याद... एक अन्य करीबी दोस्त महेन्द्र गगन के लिये लिखी कविता-' मेरे लिये महेंद्र का होना कविता का होना था.. महफ़िल का होना था.. किताबों का छपना और कुमार गंधर्व का कबीर गायन / मेहँदी हसन की ग़ज़ल सुनना था.. कला संस्कृति की शामों में अनिवार्य उपस्थिति का होना था.. दोस्तों के दु:ख दर्द में शामिल होना था.. मेरे लिये महेन्द्र गगन का होना नेक इन्सान होने का उत्सव होना था.. रिक्त स्थान को टटोलने जैसी है।

''पेड़ नहीं चाहते बड़ा होना.. पेड़ों को मालूम है बड़ा होने का अर्थ है- कटना और सिर्फ कटना..'।'पिता की कुर्सी उनके न रहने पर पिता हो गई थी.. अब जब माँ भी नहीं रही; पिता की कुर्सी बेटे के कमरे में रखकर निश्चिंत हो गया हूँ.. अब बेटा ठीक मेरी तरह मेरे पिता की निगहबानी में है..।'' इस तरह की कविताएँ संवेदना के स्तर पर मन को छूने वाली हैं।' कोरोना शीर्षक से लिखी कविता आज भी दिल में टीस जगाती है- 'न हथियारों से.. न आग से.. न पानी से.. न तूफ़ान से.. हम बस मर रहे थे एक-दूसरे की साँस से..! साँसें जो जरूरी थीं ज़िंदा रहने के लिये: मरने के काम आ रही थीं..' या ''इस सब कुछ खर्च कर देने की होड़ वाले समय में अगर बचा सको तो बचा लेना थोड़े ग़म.. थोड़ी खुशियाँ.. थोड़ी संवेदना.. और सबसे बढ़कर अपना स्व और ईमान..' जैसी कविताएँ दिल को झकझोरती हैं। अंत में 'हाशिये पर होना उतना बुरा नहीं जितना समझा जाता है.. हाशिये की अपनी महत्ता है.. मुख्य धारा के तनाव से बचाव है.. यहाँ किसी की नज़र नहीं लगती.. नज़र को हाशिया उतना ही तुच्छ लगता है जितना मुख्यधारा को.. नैतिकता को तो हाशिये का पता भी नहीं मालूम.. वह तमाम तरह के अतिक्रमण और वर्जनाओं से मुक्त जो है..!'' शीर्षकीय कविता कुठाराघात करती मानवीय प्रवृत्तियों का प्रतिकार करती है।

23 अगस्त 1960 को माचलपुर, जिला राजगढ़ में जन्में.. खिलचीपुर में पढ़े-लिखे.. अस्सी के दशक की शुरुआत में भोपाल आकर नवभारत में नगर प्रतिनिधि के बतौर पत्रकारिता में पहला कदम धरते हुए सरकारी नौकरी में सहायक जनसंपर्क अधिकारी से अपर संचालक के ओहदे पर पहुँचने वाले सुरेश गुप्ता की सृजनात्मक उपलब्धियों को असमय के अंधेरे से उजाले में आने के बाद अब किसी और पहचान की दरकार नहीं है। है न..!

संपर्क: ए-503 प्रकृति ईडन, (आशियाना आँगन के पास) शाहपुरा थाना रोड, भोपाल-462039 मध्य प्रदेश

मोबा. 9425437902 ई-मेल: vinodnagar56@gmail.com

महापुरुष

● "मैं दुनिया की सब भाषाओं की इज्ज़त करता हूँ, परंन्तु भारत में हिन्दी की इज्ज़त न हो, यह मुझे सहन नहीं। मेरा आग्रह और कहना है कि हम अपनी सारी मानसिक शक्ति हिन्दी भाषा के अध्ययन में लगायें और यही समझें कि हमारे धर्मों में एक धर्म यह भी है।"

● हिन्दी भारत के लिए वरदान है।

●- आचार्य विनोबा भावे

कला समय
विज्ञापन प्रतिनिधि चाहिए

कला समय द्वैमासिक पत्रिका हेतु भारत के प्रत्येक जिले में कमीशन बेसिस पर विज्ञापन प्रतिनिधियों की आवश्यकता है। विज्ञापन संकलन में संलग्न अनुभवी व्यक्ति/संस्था कार्यालय समय में सम्पर्क कर सकते हैं। -संपादक

कार्यालय : जे 191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनीर, भोपाल- 462016 मो. 9425678058

सहभागिता की अपील

भारत को चाहिए भाषा-स्वराज : मातृभाषा अनुष्ठान

भाषा अस्तित्व, अस्मिता, स्वाभिमान और संस्कृति की द्योतक होती हैं। भारत भाषायी बहुलता वाला राष्ट्र है। इस महादेश को भावात्मक एकता और अखंडता के सूत्र में बांधने का काम ऋषियों और अन्य मनीषियों ने अभिव्यक्ति के जिन माध्यमों से किया है, उनमें भाषा प्रमुख है। भारतीय ज्ञान परंपरा के जितने भी महान ग्रंथ रचे गए हैं, उनके मूल भाव को लगभग सभी भारतीय भाषाओं में ढाला गया है। जन-जन तक पहुँचाया गया है। रामायण और गीता इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। सभी भाषाओं में इनके अनुवाद और भाष्य उपलब्ध हैं और समाज द्वारा अपनाए गए हैं। अपभ्रंश हो या संस्कृत, अनेक भारतीय भाषाओं का उद्‌गम इनमें मिलता है। मराठी का प्रादुर्भाव का दृष्टांत विलक्षण है। 79 वर्ष पहले प्रकाशित 'विक्रम स्मृति ग्रंथ' में भाषाविद् वि.भि. कोलते का शोध आलेख 'अवंति: मराठी का मायका' एक नया तथ्य प्रकट करता है। तमिल व्याकरण के रचनाकार ऋषि अगस्त्य माने जाते हैं। ऐसे तथ्य यह जतलाते हैं कि भारत में भाषायी बहुलता का मूल एकात्मता है। भारतीय भाषाओं में अपनापा और बहनापा है। इनमें न तो किसी तरह की प्रतिद्वंद्विता है और न ही प्रतिस्पर्धा का भाव है। स्थानीयता के प्रभाव से भिन्नता अवश्य दृष्टिगोचर होती है, परंतु वह दुराव का कारण नहीं बनती। मातृभाषाओं का महत्व प्रकारांतर से राष्ट्रीयता को सुदृढ़ आधार ही प्रदान करता है।

भारत की स्वाधीनता को संपूर्णता प्रदान करने के लिए भारत में भाषा- स्वराज अपरिहार्य है। 'अपनी भाषा पर अभिमान, सब भाषाओं का सम्मान' के सामंजस्यपूर्ण उद्घोष के साथ भोपाल से भारतीय मातृभाषा अनुष्ठान का राष्ट्रीय अभियान आरंभ हो रहा है। माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल की इस पहल को अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा का अनुमोदन और सहभागिता प्राप्त है। इसका मूल मंत्र है- 'संकल्प का विकल्प नहीं होता।' सर्वप्रथम मातृभाषाओं का सर्वोच्च सम्मान हो, और, लोक व्यवहार में मातृभाषाओं को गरिमापूर्ण स्थान मिले। मूल राजभाषा अधिनियम का अनुपालन हो। राष्ट्रीय राजभाषा के रूप में हिन्दी निर्विवाद रहे और हिन्दीतर भारतीय भाषाओं वाले राज्यों में उनकी अपनी भाषा प्रांतीय राजभाषा हो। बतौर राजभाषा अंग्रेजी का कोई स्थान नहीं हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में शिक्षा में भाषा विषयक प्रावधान बहुत स्पष्ट हैं। इसमें मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा तथा समुन्नत प्रादेशिक भाषाओं और हिन्दी में उच्चतर शिक्षा की व्यवस्था है। यह सभी भारतीय भाषाओं को महत्व और सम्मान देती है। राजनीतिक स्वार्थ और सत्ता के दुष्चक्र में भाषा के सवाल को जिस तरह उलझाया गया है, उसमें समाधान का मार्ग राष्ट्रीय संकल्प से ही निकल सकता है। भारतीय भाषाओं के बीच परस्पर सम्मान और सौहार्द्र से यह गुत्थी सुलझ सकती है। टालमटोल की रीति-नीति से गुत्थी और अधिक उलझ रही है। 'स्किल' के रूप में अंग्रेजी और अन्य प्रमुख विश्व भाषाओं के पठन-पाठन से कोई असहमति नहीं है। परंतु राजभाषा के रूप में अंग्रेजी कतई स्वीकार्य नहीं हो सकती। अपनी राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा होता है। विदेशी राजभाषा का होना गुलामी का कारक होता है। शिक्षा के माध्यम, प्रशासनिक काम-काज, संसदीय कार्य व्यवहार और न्यायालयों की भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग समाप्त किया जाना भारत की स्वतंत्रता को संपूर्ण बनाएगा।

भारतीय मातृभाषा अनुष्ठान के सूत्र इस प्रकार हो सकते हैं-

01. भाषा राष्ट्र की अस्मिता, संस्कृति की संवाहक और समाज का स्वाभिमान होती है। वस्तुत: भाषा समाज की सामूहिक थाती होती है। अत: समाज का ही दायित्व है कि वह अपनी भाषा के गौरव पर आँच न आने दे।

02. हर भारतीय अपनी भाषा पर अभिमान रखे। अन्य भारतीय भाषाओं का सम्मान करे।

03. राजभाषा का प्रावधान निम्नलिखित अनुसार कार्यान्वित होना चाहिए-

3.1 भारत की राजभाषा संविधान में मूलरूप से किए गए प्रावधान के अनुसार हिन्दी हो।

3.2 अंग्रेजी का राजभाषा के रूप में स्थान न हो।

3.3 सभी हिन्दी प्रदेशों की राजभाषा हिन्दी हो।

3.4 आठवीं अनुसूची में सम्मिलित अन्य समुन्नत भारतीय भाषाएँ अपने-अपने प्रदेशों की राजभाषा हों। ऐसे राज्यों में द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी का प्रावधान हो।

3.5 भारत सरकार के राजभाषा विभाग में सभी भारतीय भाषाओं के अनुवाद की दक्ष व्यवस्था हो। हिन्दीतर प्रदेशों से उनकी राजभाषा (मातृभाषा) में आने वाले पत्रों और सभी पत्रकों, प्रस्तावों, प्रतिवेदनों आदि के त्वरित और प्रामाणिक अनुवाद की प्रभावी प्रणाली विकसित की जाए। भारतीय भाषाओं के बीच संपर्क और संवाद के लिए यही माध्यम रहे।

3.6 सभी राज्यों में राजभाषा विभाग की स्थापना हो। उनमें हिन्दी और प्रमुख हिन्दीतर भारतीय भाषाओं के त्वरित और प्रामाणिक अनुवाद

की दक्ष प्रणाली विकसित की जाए।

3.7 अनुवाद की भाषा बनावटी न हो। सहज सामान्य भाषा का प्रयोग किया जाए।

3.8 बिन्दु क्रमांक 3.5 और 3.6 के क्रियान्वयन के लिए वित्तीय संसाधन का व्यवधान नहीं आए, इसके लिए यथा आवश्यकता बजट प्रावधान किए जाएँ।

3.9 प्रतिवर्ष 14 सितंबर को राजभाषा दिवस मनाया जाए।

04. नागरिक दैनन्दिन जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में अपनी मातृभाषा का प्रयोग करें। शुद्ध वर्तनी और सही उच्चारण पर ध्यान दें। अपनी भाषा के अंकों को व्यवहार में लाएँ।

05. जिनकी मातृभाषा कोई जनपदीय लोकभाषा हो, वे घर-परिवार और विवाह आदि सामाजिक कार्यों में उसी का प्रयोग करें।

06. भारतीय भाषाओं के बीच शब्दों का आदान-प्रदान बढ़ाएँ। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ परस्पर शब्दों की ग्राह्यता बढ़ाएँ। सबसे पहले ऐसे शब्द संकलित किए जाएँ जो समान रूप से भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त हो रहे हैं।

07. भाषाओं में शब्दों की आवाजाही सामान्य प्रक्रिया है। हिन्दी में सैकड़ों ऐसे शब्द प्रचलित हैं जो अन्य भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं से आए हैं। वे हिन्दी भाषा में रच बस गए हैं। अन्य भाषाओं में भी ऐसा हुआ है।

08. हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच श्रेष्ठ साहित्य का आदान-प्रदान बढ़े। अनुवाद के माध्यम से सभी भारतीय भाषाओं की उत्तम पुस्तकों का रसास्वादन हिन्दी पाठकों को सुलभ हुआ है। प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य को विशाल हिन्दी पाठक समाज मिला है। अखिल भारतीय पहचान मिली है।

09. शिक्षा का उद्देश्य और लक्ष्य ज्ञानार्जन होता है। शिक्षा मनुष्य को अच्छा मनुष्य, नागरिक को विवेक संपन्न उत्तरदायी नागरिक और सुसभ्य एवं सुसंस्कृत मानव बनाने का आधार रचती है। यह भाषा नीति व्यावहारिक और राष्ट्रीय हितों की पोषक हो सकती है-

9.1 प्राथमिक शिक्षा का माध्यम केवल मातृभाषा हो।

9.2 माध्यमिक विद्यालयों से विश्वविद्यालयों तक राष्ट्रभाषा हिन्दी का पठन-पाठन पूरे देश में हो।

9.3 जिन प्रदेशों की अपनी समुन्नत भाषाएँ हैं, वहाँ वही भाषाएँ शिक्षण का माध्यम हों। त्रिभाषा सिद्धांत के अनुरूप दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी पढ़ाई जाए।

9.4 हिन्दी क्षेत्रों में विशेष भाषा के रूप में विश्वविद्यालयों में किसी न किसी हिन्दीतर भारतीय भाषा का पठन-पाठन आवश्यक हो। प्रदेश शासन के अधीन आने वाले विश्वविद्यालय विशेष भाषा के रूप में किसी एक या अधिक भारतीय भाषा को चुनें। यथा तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड, बांग्ला, ओडिया, मराठी, गुजराती, पंजाबी, असमिया आदि। इस तरह हिन्दी क्षेत्रों में अन्य भारतीय भाषाओं को सम्मान दिया जाएगा, अपनाया जाएगा, तब उन भाषा क्षेत्रों में हिन्दी के प्रति रुझान बढ़ेगा।

9.5 हिन्दी प्रदेशों के अंतर्गत आने वाली लोकभाषाओं, यथा, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुंदेली, बघेली, मालवी, निमाड़ी, राजस्थानी, कुमाँउनी, गढ़वाली, हिमाचली, कौरवी, मध्यदेशी आदि; संबंधित लोकभाषा के क्षेत्र में आने वाले विश्वविद्यालयों में हिन्दी के एक विशेष प्रश्नपत्र के रूप में उनका अध्ययन आवश्यक हो। उनमें शोध का प्रावधान भी रहे।

9.6 ज्ञान-विज्ञान के वैश्विक संपर्क के लिए अँगरेजी भाषा का अध्ययन कराया जाता है। इसके साथ-साथ फ्रेंच, जर्मन, जापानी, रूसी, मंदारिन, अरबी आदि भाषाओं के शिक्षण की व्यवस्था रहे। परंतु विदेशी भाषाओं को केवल 'स्किल' के रूप में अपनाया जाए।

10. हिन्दी और भारतीय भाषाओं को रोजगार परक स्वरूप दिया जाए। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भाषा के रूप में ढाला जाए।

11. जिस तरह कम्प्यूटर में अंग्रेजी के 'स्पेल चैक' की व्यवस्था है, उसी तरह हिन्दी और भारतीय भाषाओं के लिए भी सही शब्द / वर्तनी की जाँच की प्रणाली सूचना प्रौद्योगिकी में विकसित की जाए।

12. सभी प्रदेशों में व्यापारिक और अन्य प्रतिष्ठानों पर लगाए जाने वाले नामपट पर सबसे ऊपर और प्रमुखता से उसी प्रदेश की राजभाषा में नाम अंकित किया जाना चाहिए। ओडिशा राज्य में ओडिया के प्रयोग के लिए दण्डात्मक अधिनियम लागू किया गया है। इसके उल्लंघन पर जुर्माना और सजा का प्रावधान है।

भाषा-स्वराज के समर्थकों और भाषा अनुरागियों से अनुरोध-

भारत में भाषा स्वराज के लिए सकारात्मक मातृभाषा अनुष्ठान की सार्थक परिणति भारतीय भाषा अनुरागियों के सक्रिय सहयोग पर निर्भर है। समाज का साझा पराक्रम बड़ी से बड़ी बाधा को दूर कर सकता है। आपके समर्थन और सक्रिय सहभागिता का हार्दिक अनुरोध है। स्थानीय स्तर पर सहयोगियों का समूह गठित कर कार्यक्रम निर्धारित कर लीजिए और कार्यान्वयन आरंभ करिए। इसके लिए संसाधन भी स्थानीय स्तर पर ही जुटाने होंगे। स्कूल और कॉलेज इस कार्यक्रम के लिए उपयुक्त और प्रभावी मंच / माध्यम सिद्ध होंगे।

कृपया अपनी योजनाओं और कार्यक्रमों की जानकारी और सुझाव निम्नलिखित ई-मेल/वाट्सएप/पते पर भेजिए। अपना नाम, वाट्सएप नंबर और ईमेल जरूर लिखिए।

- विजयदत्त श्रीधर
संस्थापक-संयोजक
माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान,
भोपाल- (म.प्र.) 462003
मोबाइल नं. 9425011467, वाट्सएप 7999460151
ईमेल - Sapresangrahalay@yahoo.com

■

काल गणना और वैदिक पद्धति हमारी वैज्ञानिक और सांस्कृतिक धरोहर है: डॉ. मोहन यादव

पश्चिम का समय जब तक था, तब तक था, अब भारत का समय आया है

मुख्यमंत्री निवास के नवनिर्मित द्वार पर विक्रमादित्य वैदिक घड़ी स्थापित की गई है जिसका सोमवार को मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने अनावरण किया। इस दौरान प्रदेश भाजपाध्यक्ष हेमंत खंडेलवाल, मंत्री कृष्णा गौर, सांसद आलोक शर्मा, विधायक रामेश्वर शर्मा और महापौर मालती राय मौजूद रहे।

विक्रमादित्य वैदिक घड़ी के अनावरण पर मुख्यमंत्री ने कहा

मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने सोमवार को मुख्यमंत्री निवास में विक्रमादित्य वैदिक घड़ी के अनावरण और उसके ऐप लोकार्पण कार्यक्रम को संबोधित करते हुए कहा कि भारत की अवधारणा में समय केवल घड़ी की सुइयों की चाल नहीं, बल्कि 'काल' है। महाभारत में भीष्म पितामह ने कहा, 'कालो हि दुरतिक्रमः' काल को कोई पार नहीं कर सकता। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा, 'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्त्प्रवृद्धः।' इस दृष्टि से विक्रमादित्य वैदिक घड़ी केवल उपकरण नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन का दर्पण है। भारत में समय कभी भी केवल सेकंड और मिनट तक सीमित नहीं रहा है। यहां दिन सूर्योदय से शुरू होता है और 30 मुहूर्तों में विभाजित होता है। हर मुहूर्त की अपनी विशेषता है; ब्रह्ममुहूर्त में साधना और ध्यान, दोपहर का समय कर्म के लिए, संध्या का समय उपासना के लिए। यह विभाजन महज गणना नहीं है, बल्कि जीवन को प्रकृति की लय से जोड़ने की एक वैज्ञानिक पद्धति है। यही कारण है कि हमारे सभी त्यौहार अंग्रेजी कैलेंडर पर आधारित न होकर चंद्र-सौर गणना और नक्षत्रों की स्थिति पर आधारित होते हैं। यदि भारतीय सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में झांके तो ध्यान में आता है कि उज्जैन को कालगणना का केन्द्र वर्षों वर्ष तक माना गया। सूर्य की छाया से समय की माप यहीं से होती रही। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने कहा कि समय की खोज भारतीय जीवन का अभिन्न हिस्सा थी। काल को देवता मानकर पूजना, महाकाल की संज्ञा देना और गीता में भगवान कृष्ण का स्वयं को काल कहना, यह सब बताता है कि समय को भारत ने केवल यांत्रिक गति नहीं, बल्कि ब्रह्मांड की नियंता शक्ति के रूप में देखा।

योग को विश्व स्तर पर स्थापित किया

आज की दुनिया उत्पादन, उपभोग और मशीनों की गति से संचालित हो रही है। पश्चिमी समय अवधारणा इसी मानसिकता की उपज है। लेकिन जव मानसिक तनाव, पर्यावरण संकट और जीवन का असंतुलन बढ़ रहा है, तब भारत का वैदिक दृष्टिकोण ही वास्तविक समाधान प्रस्तुत कर सकता है। यही कारण है कि मुख्यमंत्री मोहन यादव ने कहा है कि पश्चिम का समय जब तक था, तब तक था, अब पूर्व का समय आया है। 2014 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने योग को विश्व स्तर पर स्थापित किया। योग ने दुनिया को सिखाया कि जीवन का संतुलन केवल शरीर और मन के सामंजस्य से ही संभव है। अब वैदिक समय की पुनर्स्थापना यह संदेश दे रही है कि समय का सही अर्थ केवल उत्पादन या उपभोग नहीं, बल्कि और प्रकृति का सामंजस्य है। यही भारत का समय है, और यही पृथ्वी का समय।

भारत की आत्मा का प्रतीक है ये वैदिक घड़ी

इस आयोजन में मंत्रियों और जनप्रतिनिधियों के वक्तव्य भी इस सांस्कृतिक प्रवाह को पुष्ट करते हैं। मंत्री विश्वास सारंग ने कहा कि यदि यह घड़ी मंत्रियों को दी जाए तो वे इसे अपने घरों में स्थापित करेंगे। मंत्री कृष्णा गौर ने कहा कि मुख्यमंत्री निवास अब विरासत और विकास का साक्षी बन गया है और इस घड़ी ने हमें अपना स्वाभिमान लौटा दिया है। सांसद आलोक शर्मा ने इसे भारत के समय की पुनर्परिभाषा बताया। उज्जैन से आए 51 ब्राह्मणों की उपस्थिति ने इस आयोजन को केवल सरकारी कार्यक्रम नहीं रहने दिया, बल्कि उसे आध्यात्मिकता का रंग भी प्रदान किया। सच्चाई यह है कि यह घड़ी केवल भोपाल के मुख्यमंत्री निवास की शोभा नहीं, बल्कि भारत की आत्मा का प्रतीक है। यह हमें याद दिलाती है कि समय केवल बीतता हुआ क्षण नहीं, बल्कि संस्कृति का संवाहक और जीवन का आधार है। जब यह घड़ी कहती है कि 'भारत का समय ही पृथ्वी का समय है', तो यह उद्घोष केवल भावनात्मक नहीं, वास्तव में उस गहन ज्ञान का प्रमाण है जिसने भारत को युगों-युगों तक

विश्वगुरु बनाया। आज आवश्यकता है कि युवा इस परंपरा को समझे और अपनाएँ। जब वे जानेंगे कि समय को केवल सेकंडों और मिनटों में नहीं, बल्कि मुहूर्तों, तिथियों और ऋतुचक्र में भी देखा जा सकता है, तब वे अपनी जड़ों से जुड़ेंगे और विश्व को दिशा देंगे।

राजा भोज पर यूट्यूब सीरीज के फोल्डर और खगोल विज्ञान पर फिल्म सीडी का किया विमोचन

मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने दीप प्रज्वलित कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया। इससे पहले मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने मुख्यमंत्री निवास के नवनिर्मित द्वार पर विक्रमादित्य वैदिक घड़ी का मंत्रोच्चार के बीच अनावरण किया। इस अवसर पर शौर्य स्मारक से आरंभ हुई 'भारत का समय-पृथ्वी का समय रैली मुख्यमंत्री निवास पहुंची। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने रैली में शामिल युवाओं का स्वागत किया। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कार्यक्रम में विक्रमादित्य वैदिक घड़ी के ऐप का लोकार्पण, राजा भोज पर निर्मित यू-ट्यूब सीरीज के फोल्डर का विमोचन और खगोल विज्ञान पर केन्द्रत फिल्म की सीडी का विमोचन भी किया गया। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने वैदिक घड़ी के उपयोग को प्रोत्साहित करने का आहवान किया और उपस्थित युवाओं से मोबाइल में विक्रमादित्य वैदिक घड़ी ऐप भी डाउनलोड करवाया। मुख्यमंत्री डॉ. यादव को इस अवसर पर वैदिक घड़ी भेंट भी की गई।

मुख्यमंत्री निवास सभी प्रदेशवासियों की धरोहर

मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि मुख्यमंत्री निवास के द्वार पर विक्रमादित्य वैदिक घड़ी स्थापित की गई है। मुख्यमंत्री निवास केवल मुख्यमंत्री का नहीं, अपितु सभी प्रदेशवासियों की धरोहर है। प्रदेशवासियों द्वारा दिया गया अधिकार और लोगों का भरोसा ही हमारी सरकार का आधार है। भारतीय सस्कृति के अतीत के गौरवशाली पृष्ठों का प्रकटीकरण हमारा दायित्व है। इसी का परिणाम है कि हमारी कालगणना का केन्द्र उज्जैन है, परंतु कालगणना की पद्धति की जानकारी प्रदेश की राजधानी में हो, इसके लिए प्रयास करते हुए विक्रमादित्य वैदिक घड़ी की स्थापना भोपाल में की गई। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि वैदिक धड़ी के ऐप के माध्यम से हम अपने मोबाइल में वैदिक धड़ी का संचालन कर सकते हैं। उन्होंने उच्च शिक्षा और संस्कृति विभाग के इस आयोजन में योगदान की सराहना की। उन्होंने कहा कि हम आजादी के अमृतकाल में चल रहे है। पूरी दुनिया का समय बदल रहा है. पश्चिम के बाद अब पूर्व का समय आया है। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी अपने दृष्टिकोण को लेकर आगे बढ़ रहे है। भारत का मान-सम्मान बढ़ाने के लिए वे प्रतिबद्ध है।

भारतीय कालगणना में ऋतुओं के प्रभाव का विशेष महत्व

मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि यह हमारा सौभाग्य है कि सनातन संस्कृति के व्रत, त्यौहार अंग्रेजी कैलेंडर के आधार पर नहीं आते, उनकी गणना में ऋतुओं का प्रभाव शामिल है। सावन-भादो-कार्तिक माह का प्रभाव हम सब अपने जीवन में अनुभव कर रहे है। पूर्णिमा और अमावस्या का समुद्र पर प्रभाव ज्वार-भाटा से आंका जा सकता है, इससे हमारी तिथियों की सत्यता भी प्रमाणित होती है। मानसिक रोगियों पर अमावस्या और पूर्णिमा का प्रभाव चिकित्सा शास्त्र भी स्वीकार करता है। मानव शरीर संरचना में 70 प्रतिशत जल का अंश है, जो अमावस्या और पूर्णिमा पर प्रभावित होता है। इसी का परिणाम है कि मानसिक चिकित्सालयों को अमावस्या और पूर्णिमा पर विशेष सतर्कता बरतने के स्थाई निर्देश हैं। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि भारतीय शास्त्रों में समय की गणना सूक्ष्मतम स्तर तक की गई है। सनातन संस्कृति में सूर्योदय से सूर्योदय तक की गणना का विधान है। इस प्राचीन गणना में 30 मुहूर्त हैं। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि सनातन संस्कृति में विभिन्न सिद्धांतों पर विचार-विमर्श के लिए कोई बंधन या दंड नहीं है, जबकि कालगणना पर वैचारिक मतभेद के कारण मृत्युदंड देने का उद्धरण पश्चिम के इतिहास में मिलता है।

पंचांग भारतीय कालगणना की शुद्धता और सटीकता का है जीवंत उदाहरण

मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि खगोलीय अध्ययन के लिए सूर्य से बनने वाली छाया के आधार पर सूर्य की गति की गणना की गई। उन्होंने बताया कि भारत का केन्द्र उज्जैन है और उज्जैन का केन्द्र वर्तमान में डोंगला में स्थित है। डोंगला का प्रसंग भगवान श्रीकृष्ण और सुदामा से जुड़ता है। संभवत: डोंगला के इस महत्व से ही भगवान श्रीकृष्ण का आगमन हुआ था। पंचांग भारतीय कालगणना की शुद्धता और सटीकता का जीवंत उदाहरण हैं। पंचांग के विद्वान चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण, तिथि, नक्षत्र, वार, व्रत, त्यौहार और मुहूर्तों की जानकारी वर्तमान में भी त्वरित रूप से उपलब्ध कराते हैं।

सनातन संस्कृति को सहेजने की पहल सराहनीय और वंदनीय

खेल एवं युवा कल्याण तथा सहकारिता मंत्री विश्वास कैलाश सारंग ने कहा कि उस राष्ट्र का भविष्य ही सुरक्षित रहता है, जो अपने अतीत और संस्कृति को प्रतिबद्धता के साथ आत्मसात करता है। प्रधानमंत्री मोदी के नेतृत्व में देश में सनातन की ध्वजा चहुंओर लहरा रही

है। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने पिछले लगभग दो वर्षों में विकास और जनकल्याण के साथ सनातन संस्कृति को सहेजने की जो पहल की है, वह सराहनीय और वंदनीय है।

मुख्यमंत्री निवास विरासत का साक्षी बना : कृष्णा गौर

मंत्री कृष्णा गौर ने कहा- आज हमारा मुख्यमंत्री निवास विरासत और विकास का साक्षी बन रहा है। इस घड़ी के माध्यम से हमें अपना स्वाभिमान लौटा है। मैं युवाओं से कहना चाहती हूं कि भविष्य आपके कंधों पर टिका है। मध्यप्रदेश के युवा दुनियाभर में नाम रोशन कर रहे हैं। मुख्यमंत्री का संबल आपके साथ है और मुझे विश्वास है कि आप आगे बढ़कर प्रदेश और देश को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाएंगे।

आज नई परंपरा लिखी जा रही: आलोक शर्मा

भोपाल के सांसद आलोक शर्मा ने कहा कि आज से भारत के समय की नई परिभाषा लिखी जा रही है। उन्होंने कहा- जब हम मां की कोख में आते हैं तो ईश्वर प्रारब्ध पहले ही लिख देता है। मुख्यमंत्री जी ने वैदिक घड़ी लगवाकर वास्तव में भारत के समय की पुनस्थापना का ऐतिहासिक कदम उठाया है। हम सौभाग्यशाली है कि हमारा जन्म हिंदू संस्कृति में हुआ है। यह घड़ी हमें काल गणना की वैदिक परंपरा से जोड़ेगी।

वैदिक घड़ी और ऐप की विशेषताएं

विक्रमादित्य वैदिक घड़ी भारतीय काल गणना पर आधारित विश्व की पहली धड़ी है, जो भारतीय परंपरा, वैदिक गणना और वैज्ञानिक दृष्टि का अद्भुत संगम है। यह भारत की सांस्कृतिक धुरी बनकर वैश्विक भाषाओं, परंपराओं, आस्था और धार्मिक कार्यों को जोड़ने वाली महत्वपूर्ण कड़ी बनेगी। साथ ही विक्रमादित्य वैदिक घड़ी के तैयार किये गये मोबाइल ऐप में 3179 विक्रम पूर्व, महाभारतकाल से लेकर 7 हजार से अधिक वर्षों के पंचांग, तिथि, नक्षत्र, योग, करण, वार, मास, व्रत एवं त्यौहारों की दुर्लभ जानकारियां समाहित की गई हैं। धार्मिक कार्यों, व्रत और साधना के लिए 30 अलग-अलग शुभ मुहूर्तों की जानकारी एवं अलार्म की सुविधा भी है। प्रचलित समय में वैदिक समय (30 घंटे), वर्तमान मुहूर्त स्थान, जीएमटी और आईएसटी समय, तापमान, हवा की गति, आर्द्रता एवं मौसम संबंधी सूचनाएं भी लोगों को उपलब्ध करायी गई है। यह ऐप 189 से अधिक वैश्विक भाषाओं में उपलब्ध है। इसमें दैनिक सूर्योदय और सूर्यास्त की गणना तथा इसी आधार पर हर दिन के 30 मुहूर्तों का सटीक विवरण शामिल है।

विक्रमादित्य वैदिक घड़ी ऐप

विक्रमादित्य वैदिक घड़ी ऐप भारत की प्राचीन वैदिक काल-गणना प्रणाली को आधुनिक डिजिटल युग में पुन: स्थापित करने वाला एक क्रांतिकारी ऐप है। यह ऐप 30 मुहर्तों पर आधारित दिन-रात्रि चक्र, विस्तृत पंवांग और विक्रम सम्वत् कैलेंडर को एक ही स्थान पर लाता है। यह ऐप 3500 ईसा पूर्व से 4000 ईस्वी तक, 7500 वर्षों की जानकारी के साथ उपलब्ध है। यह ऐप आईओएस और एंड्रॉयड दोनों प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध है। इतना ही नहीं दुनिया की 189 भाषाओं में इसका उपयोग किया जा सकता है।

- क्यों ज़रूरी है वैदिक घड़ी ऐप
- यह ऐप भारतीय समय प्रणाली से जोड़ता है।
- यह 24 घंटे की औपनिवेशिक समय प्रणाली से मुक्ति देता है।
- भारत के सूर्य-आधारित कालगणना का पुनरुद्धार करता है।
- मानव शरीर और प्रकृति के बीच तालमेल बढ़ाता है।
- धार्मिक कार्यों, क्षत और साधना के लिए सही समय बताता है।
- यह ज्योतिष, वैदिक गणित और काल विज्ञान के शोधार्थियों के लिए उपयोगी है।
- भविष्य की वैश्विक समय प्रणाली के लिए एक आदर्श मॉडल है।

स्त्रोत : स्वदेश ज्योति से साभार

कला समय: बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

कला समय के इस रचनात्मक अनुष्ठान में आपका बहुमूल्य आर्थिक सहयोग पत्रिका के लिए जीवनदायी संजीवनी होगी।

मध्यप्रदेश के कण-कण में है सौंदर्य

डॉ. मोहन यादव

भारत का हृदय प्रदेश मध्यप्रदेश अप्रतिम सौंदर्य से समृद्ध प्रदेश है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मध्यप्रदेश सर्वाधिक सम्मोहित करने वाला राज्य है। इसके कण-कण में सौंदर्य है। जो एक बार आता है, यहां की स्मृतियों के सम्मोहन में बंधकर बार-बार आता है। मध्यप्रदेश में हर आयु के पर्यटकों को आकर्षित करने की क्षमता है।

पर्यटन के संबंध में दशकों पहले की अवधारणाएं अब समाप्त हो गई है। मध्यप्रदेश के पर्यटन ने अब उद्योग का रूप ले लिया है। हमारी नीतियों और दूरदर्शी निर्णयों से पर्यटन क्षेत्र का तेजी से विस्तार हो रहा है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि अर्थव्यवस्था में पर्यटन सर्वाधिक रोजगार उत्पन्न करने वाला सेक्टर है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में अनुत्य भारत का वैश्विक स्तर पर मान-सम्मान बढ़ा है। इसका सकारात्मक प्रभाव सभी राज्यों के पर्यटन उद्योग पर पड़ा है। देश का घरेलू पर्यटन बढ़ने से मध्यप्रदेश जैसे तेजी से बढ़ते राज्य को सीधा लाभ हुआ है।

मध्यप्रदेश के शांतिप्रिय नागरिकों के लिये सबसे ज्यादा खुशी की बात है कि मध्यप्रदेश अब वैश्विक पर्यटन नक्शे पर ध्रुव तारे जैसा चमक रहा है। हमारे पर्यटन की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह अत्यंत समृद्ध और विविधता से सम्पन्न है। साथ ही जिम्मेदार और सुरक्षित भी।

प्रदेश में पर्यटन की नई-नई शाखाएं उभरी है। प्राकृतिक पर्यटन हो पा सांस्कृतिक पर्यटन, आध्यात्मिक पर्यटन हो या वन्यजीव पर्यटन, ग्रामीण पर्यटन हो या रोमांचकारी पर्यटन, कृषि पर्यटन हो या फिल्म पर्यटन या नया उभरता हुआ चिकित्सा पर्यटन। इन सभी नये स्वरूपों के साथ मध्यप्रदेश की पहचान बहु आयामी पर्यटन प्रदेश के रूप में हो रही है।

प्रदेश में अब पर्यटकों की संख्या हर वर्ष बढ़ती जा रही है। गत वर्ष देश में सर्वाधिक पर्यटक मध्यप्रदेश में आए नैसर्गिक सौन्दर्य, वन्य प्राणी, धार्मिक स्थल, आकर्षक ऐतिहासिक विरासते और हरे-भरे वन हमारी विशेषता है। हमारे वन जीवित है। देश में सर्वाधिक वाद्य मध्यप्रदेश में हैं। चंबल सबसे साफ नदी है, जिसमें घड़ियालों का संरक्षण हो रहा है। नर्मदा मैया के दर्शन करने हजारों श्रद्धालु दूर-दूर से आते हैं। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की दूरदृष्टि से मध्यारदेश अब देश का एकमात्र चीता प्रदेश बन गया है। चीतों का परिवार पालपुर कूनों में फल फूल रहा है।

सांची खजुराहो और भीमबेटका जैसी विश्वविख्यात धरोहर हमारी वैश्विक सांस्कृतिक पहचान है। अब यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में ग्वालियर किला, बुरहानपुर का खूनी भंडारा, चंबल के पत्थर कला स्थल, भोजेश्वर महादेव मंदिर भोजपुर, रामनगर मंडला के गोड स्मारक और मंदसौर का धमनार भी जुड़ने की तैयारी में हैं। इसके अलावा नर्मदा परिक्रमा, गोड चित्रकला और भगोरिया उत्सव भी पर्यटन के नक्शे पर प्रमुखता से उभरे हैं। मध्यप्रदेश ऐमा अग्रणी राज्य बन गया है, जिसने सबसे ज्यादा 18 स्थलों को विश्व विरासत सूची में शामिल करने की पहल की है।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में केन्द्र सरकार के सहयोग से मध्यप्रदेश के पर्यटन को नई दिशा मिली है। केन्द्र का भरपूर सहयोग मिल रहा है। मध्यप्रदेश देश का पहला राज्य है, जहां इको सेंसिटिव जोनल मास्टर प्लान बनाने का काम शुरू किया गया और 27 राष्ट्रीय उद्यानों और वन्यजीव अभयारण्यों में से सतपुड़ा राष्ट्रीय उद्यान और बोरी वन्य जीव अभयारण्य में पूरा हो गया। हैरिटेज पर्यटन की कई परियोजनाएं शुरू की गई है।

प्रदेश में अधोसंरचना मजबूत होने, सड़क संपर्क में निरंतर सुधार होने और केन्द्र सरकार के सहयोग से रेल सुविधाओं के बढ़ाने से पर्यटन क्षेत्र और उद्योग को लाभ मिला है। इस क्षेत्र में निवेश निरंतर बढ़ रहा है। हाल में रीवा पर्यटन कॉन्क्लेव में तीन हजार करोड़ के निवेश प्रस्ताव मिले। पर्यटन स्थलों में सुविधाएं निरंतर बढ़ाई जा रही है। पीएम श्री पर्यटन वायु सेवा की शुरुआत हुई है। भोपाल, इंदौर, जबलपुर, रीवा, सतना और सिंगरौली के मध्य वायु सेवा का संचालन हो रहा है।

मध्यप्रदेश सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पुनर्जागरण के दौर से गुजर रहा है। इसी समय आध्यात्मिक पर्यटन भी निरंतर विस्तार ले रहा है। भगवान श्रीमहाकाल की नगरी उज्जैन और यहां श्री महाकाल लोक विश्वविख्यात है। पिछले साल सात करोड़ श्रद्धालुओं ने दर्शन किए। प्रदेश की जीडीपी में पर्यटन क्षेत्र के मोगदान में आध्यात्मिक पर्यटन भागीदारी को और ज्यादा सशक्त बनाने की तैयारी चल रही है।

ओरछा में भगवान श्रीराम का मंदिर है। यह विश्व का एकमात्र मंदिर है. जहां भगवान को राजा के रूप में गार्ड ऑफ ऑनर दिया जाता है।

यह अभूतपूर्व आध्यात्मिक घटनाक्रम है। यहां भगवान श्रीराम राजा की सरकार स्थापित है। ग्वालियर के ऐतिहासिक भव्य किले के संबंध में उल्लेख मिलता है कि भारत में पहली बार जीरो का लिखित इस्तेमाल कहा हुआ। ग्वालियर किले में नवीं शताब्दी के इम चतुर्भुज मंदिर में शुन्य का सबसे शुरुआती शिलालेख पर उकेरा हुआ प्रमाण मिलता है। इस मंदिर को दुनिया में टैंपल ऑफ जीरो के नाम से भी पहचाना जाता है। धार्मिक आयोजनों को नया स्वरूप दिया जा रहा है। बाबा श्री महाकाल की दिव्य सवारी को भव्य रूप दिया गया। रक्षा बंधन के त्यौहार और श्री कृष्ण जन्माष्टमी को सार्वजनिक रूप से प्रदेश के कोने-कोने में मनाया गया। धार्मिक महत्व के स्थलों में धार्मिक और सांस्कृतिक लोगो और स्मारकों का निर्माण आध्यात्मिक पर्यटन को नया आयाम देगा।

रविदास लोक सागर, रानी दुर्गावती स्मारक जबलपुर, देवी लोक सलकनपुर सीहोर, श्री रामराजा लोक ओरछा, जाम सांवली श्री हनुमान लोक पांढुर्ना, श्री पशुपतिनाथ लोक मंदसौर, श्री परशुराम लोक जानापाव महू, महाराणा प्रताप लोक भोपाल, भादवा माता लोक नीमच, रानी अवंतीबाई स्मारकं जबलपुर, मां नर्मदा महालोक अमरकंटक अनूपपुर, देवी अहिल्या लोक खरगौन और नागलवाड़ी लोक बड़वानी में किया जा रहा है। एक ओर जहां आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पर्यटन समृद्ध हो रहा है, वहीं दूसरी ओर फिल्म पर्यटन भी तेजी से बढ़ रहा है। फिल्म निर्माताओं को मध्यप्रदेश में आकर्षक सुविधाएं मिल रही हैं। कई प्रसिद्ध फिल्मों की शूटिंग मध्यप्रदेश में हुई है। इससे स्थानीय कलाकारों को फिल्मो में काम मिला। फिल्म यूनिट के सदस्यों को होम स्टे की सुविधाओं का लाभ मिला। होम स्टे की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। प्रदेश की ग्रामीण संस्कृति को देखने-समझने में होम स्टे अच्छी भूमिका निभा रहे हैं। फिलहाल 100 पर्यटन ग्राम विकसित किए गए है, जिनमें से 63 पर्यटन ग्राम विकसित हो चुके हैं। इनमें 470 से ज्यादा होम स्टे हैं। देश के पहले हैंडलूम गांव प्राणपुर को वैश्विक पहचान मिली है। गॉड, भील पेंटिंग और मांडना आर्ट जैसी जनजातीय कलाओं से पर्यटक परंचित हुए हैं। हमारा लक्ष्य है कि पर्यटन उद्योग का निरंतर विस्तार हो, ताकि पर्यटन की संभावनाओं को पूरी तरह रोजगार सृजन के लिये उपयोग किया जा सके। वर्ष 2024 में 13 करोड़ 41 लाख से ज्यादा पर्यटक प्रदेश में आये, जो एक रिकॉर्ड है। विदेशी पर्यटकों की संख्या और पेंच में आवागमन बढ़ा है। जिस भी बढ़ रही है। बांधवगढ़, कान्हा, पन्ना प्रकार मध्यप्रदेश ने आर्थिक निवेश के द्वार खोले हैं, पर्यटन क्षेत्र पर इसका सीधा प्रभाव पड़ा है। स्थानीय समुदाय की भागीदारी, उद्योग समूहों के सहयोग और राज्य सरकार की प्रतिबद्धता से पर्यटन का क्षेत्र मध्यप्रदेश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

लेखक : मध्यप्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री हैं।

समवेत

डॉ. देवेंद्र दीपक का शतायु कामना पर्व

19 अगस्त को दुष्यन्त कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय के राज सदन में डॉ. देवेन्द्र दीपक का शतायु कामना पर्व आयोजित किया गया। इस अवसर पर भोपाल की सभी साहित्यिक संस्थाओं ने डॉ. देवेंद्र दीपक का सम्मान किया। इस अवसर पर विशेष रूप से संस्कृति मंत्री मध्य प्रदेश शासन धर्मेन्द्र भाव सिंह लोधी, माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान के संस्थापक पद्मश्री विजयदत्त श्रीधर उनका अभिनंदन करने के लिये उपस्थित थे सभागार में उपस्थित सभी संस्थाओं के पदाधिकारियों और सदस्यों ने डॉ. देवेन्द्र दीपक के साहित्यिक अवदान को प्रणाम करते हुए इस आयोजन सफल बनाने में सहयोग दिया।

वरिष्ठ पत्रकार महेश श्रीवास्तव को स्टेट प्रेस क्लब द्वारा लाइफ अचीवमेंट अवार्ड दिया गया

वरिष्ठ पत्रकार महेश श्रीवास्तव को स्टेट प्रेस क्लब द्वारा किया गया। लाइफ अचीवमेंट अवार्ड को प्राप्त करने वे इंदौर नहीं जा सके इस कारण कार्यक्रम के मुख्य अतिथि रहे श्री दिग्विजय सिंह और क्लब के अध्यक्ष ने उनके घर आकर लाइफ अचीवमेंट अवार्ड प्रदान किया।

अनुरोध

सभी लेखकों एवं पुस्तक समीक्षकों से निवेदन है कि 'कला समय' के लिए भेजे जाने वाले आलेख अधिकतम 3 पृष्ठ तथा पुस्तक समीक्षा अधिकतम 2 पृष्ठ की ही मान्य होगी।

-सम्पादक

लक्ष्मीनारायण पयोधि की शहनाई वाद्य पर कविता

लक्ष्मीनारायण पयोधि

23 मार्च 1957 को जन्मे पयोधि की साहित्य-साधना उनके मूल निवास-क्षेत्र बस्तर के भोपालपटनम् से आरंभ हुई। 'सोमारू' और 'लमझना' जैसी चर्चित काव्यकृतियों सहित 21 काव्य संकलन, 02 काव्यनाटक, कथा-संग्रह, बाल साहित्य एवं जनजातीय जीवन-संस्कृति और भाषाओं आदि पर कुल 56 पुस्तकें शामिल हैं। वे लोकप्रिय मासिक बाल पत्रिका 'समझ झरोखा' के संपादक और जनजातीय संस्कृति और भाषाओं के अध्येता के रूप में प्रतिष्ठित रहे हैं।

संपर्क: ए-1, लोटस, स्प्रिंग वैली, कटारा हिल्स, बागमुगलिया, भोपाल - 462043 (म.प्र.)
मोबा. 8319163206
Email: payodhiln@gmail.com

मुरारी की शहनाई

सुनी नहीं कभी मुरारीलाल ने
बिस्मिल्ला खाँ की शहनाई
सुनी भी हो कभी रेडियो पर
तो फ़र्क़ नहीं कर पाया
अपनी और एक उस्ताद की
शहनाई के स्वरों में

मुरारी जब भी बजाता शहनाई
सुमरता पड़ापेन [1] को
साथ-साथ याद करता
पिता को
फिर उनके पिता को
फिर और... और पितरों को
एक-एक कर
जिनके हाथों से होकर आयी
शहनाई उसके हाथों में

मुरारी जब भी उठाता शहनाई
महसूस करता पुरखों का स्पर्श
उसकी उंगलियों में
उतरने लगता
पुरखों की
सिद्धियों का पुण्य प्रभाव

हर फूँक के साथ
मुरारी की साँसों से
अवतरित होते सुर
और वह डूबता जाता
नयी धुनों के सृजन में

वन कुसुमों की सुगंध जैसे
महमहाते स्वर शहनाई के
फैलते जाते दिगन्त में
मुग्ध करते जंगल को

जब कभी गूंज उठती
मुरारीलाल की शहनाई
संपन्न होता।
देवताओं का अनुष्ठान
जब भी उठीं
स्वर-लहरियाँ शहनाई से
थिरक उठे छोटे-बड़े दरख़्त

आनंदित गोण्डों के कंठों से
फूट पड़े ढाड़ी करमा [2] गीत
बिरहा [3] और सैला [4] में
मगन हो गया गाँव

मुरारी को ज्ञान नहीं
राग-रागिनियों का
नहीं जानता वह
सुर और ताल का शास्त्र
नहीं सुनी उसने कभी
उस्ताद की शहनाई

सिखाया नहीं
किसी गुरु ने
ठीक से बजाना

पिता को देखा
स्वयं से सीखा
अपना उस्ताद
खुद है मुरारीलाल

अपने इलाक़े में प्रख्यात
दूर-दूर तक जोड़ नहीं
शहनाई में मुरारी का
मानता
डिण्डोरी [5] ज़िला

शहनाई कलाकार : मुरारीलाल

अपने सुरों के साथ
शहनाई के घाव लेकर
उत्तर से दक्षिण
और पूरब से पश्चिम तक
घूम आया मुरारीलाल
दिल्ली के दिल में भी
कभी तो गूँजेंगी प्रतिध्वनियाँ
मुरारी की शहनाई की
कभी तो
स्तब्ध रह जायेगा ब्रह्माण्ड
आरण्यकी स्वर लहरियों से

1. गोंडों के सबसे बड़े देव, शिव 2. करमा नृत्य-गीत का एक प्रकार 3. नृत्य-गीत की शैलियाँ 4. एक नृत्य शैली 5. मध्यप्रदेश का एक गोंड जनजाति बहुल जिला।

वीरेश मधुकर - महान कलाकार, देशभक्त, स्वतंत्रता सेनानी

प्रो. सुधा अग्रवाल

भारत को स्वतंत्र कराने में ज्ञात-अज्ञात जिन अनगिनत वीरो ने अपना सहयोग दिया, जीवनोत्सर्ग किया उनकी नि:स्वार्थ सेवा, त्याग और जिजीविषा की प्रशंसा में शब्द असमर्थ एवं कम पड़ते हैं। तत्कालीन वातावरण एवं देश को स्वाधीन करने में 10-12 वर्ष के बच्चे भी सक्रिय एवं सहयोगी होकर अपना-अपना योगदान यथाशक्ति - यथामति दे रहे थे। उत्तर प्रदेश के प्रमुख नगर मेरठ से ही सन् 1857 में अंग्रेजी सत्ता से विद्रोह की चिंगारी लगी थी, उसी मेरठ में श्री अभिमन्यु कुमारजी के घर में 23 दिसम्बर 1935 को पुत्र जन्म हुआ जिसका नाम उन्होंने रखा 'वीरेश'। पूत के पाँव पालने में ही दिखाई दे जाते हैं। यथा नाम तथा गुण को चरितार्थ करते बालक वीरेश बचपन से ही बहुत स्वाभिमानी और साहसी थे। बाल्यावस्था से ही बड़े भाई अशोक के साथ जनसंघ की प्रात: कालीन व्यायाम, प्रभात फेरी और समूहगान आदि में सक्रिय भाग लेना तथा देश को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने का जज्बा उनमें कूट-कूट कर भर गया था।

केवल 10-12 वर्ष की आयु में ही वीरेश भाई अपनें गायन तथा उत्साही कार्यों से संघ की सभाओं में बहुत लोकप्रिय हो गये थे और दो-तीन बार बड़े भाई अशोक व अन्य कार्यकर्ताओं के साथ गिरफ्तार होकर जेल की हवा खा चुके थे। सन् 1947 में भयंकर उथल-पुथल व स्वतंत्रता के आन्दोलनों में विस्थापित व भुगत भोगियों के शिविरों में जाकर सहायता करना, भजन तथा देशभक्ति के गीतों द्वारा निराश, निराश्रितों की सहायता करना तथा उत्साहित करना वह बड़ी लगन से करते थे।

15 अगस्त 1947 को देश स्वतंत्र हुआ, खूब जश्न मनाए गये देश में प्रसन्नता, आत्माभिमान तथा नव बयार की लहर छा गई। लेकिन देश का विभाजन हुआ, हजारों लोग बेहद गरीबी, बीमारी और हताशा से ग्रस्त हुए। जिनकी तन, मन तथा धन से सहायता सभी देश प्रेमियों ने की । भैया उसमें असीम उत्साह से भाग लेते थे।

कुछ बड़ा होने और शिक्षा प्राप्ति से ज्ञानवर्धन होने पर ज्ञात हुआ कि हमारे देश का एक हिस्सा अभी भी - गोवा स्वतंत्र नहीं है तथा पुर्तगालियों के आधीन है। देश में यह चेतना जागृत होने लगी तो फिर भाई वीरेश को भी नया लक्ष्य मिल गया। अनेक शहरों में फिर से क्रान्ति की ज्वाला

प्रज्वलित होने लगी। आजादी के दीवानें गोवा को औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्र कराने हेतु वहाँ जाते और पुर्तगालियों के अत्याचार सहते । वीरेश भाई ने मेरठ में इस क्रान्ति की अलख जगाई। ऐ मेरे वतन मेरी जिन्दगी-तेरे सजदे में मेरी जान रहे, ये दिल की तमन्ना है आखिरी, तेरी माटी में ही मिल जाऊ पर जगमें सदा तू महान रहे ।।

इस प्रकार जीवनोत्सर्ग की तीव्र आकांक्षा के सात सेनानियों का दल तैयार किया । यह सम्भवत: सन् 1952-53 की बात है मैं तब बहुत छोटी थी। यह पहला दल था जिसनें रात के समय जंगलों - जगलों से जाकर सीधे पंजिम पहुंचकर पुर्तगाली झण्डा उतार कर भारत का तिरंगा झण्डा फहरा दिया था 'तेरे तीनों रंग सलामत रहें, तेरे हरेक रंग पर मर जाऊँ' । पुर्तगाली पुलिस ने अत्यंत अमानवीय अत्याचार किये। अपने जूतों से छाती पर चढ़कर रोंदा, बन्दूक की बट से मारा, पानी के लिये तरसाया, उनकी पसलियाँ टूट गई , सिर फूट गये पर हिम्मत नहीं हारी , भारत माता की जय बोलते रहे जबतक बेहोश नहीं हो गये। उन वीरों का पता पूना के अस्पताल से सन्देश आने पर ज्ञात हुआ, तब मेरे पिताजी और बड़े भाई सभी घायलों व वीरेश भाई को थोड़ा स्वस्थ होने पर मेरठ लेकर आये थे। बाद में स्वतंत्रता के 14 वर्ष बाद 1961 में 'आपरेशन- विजय' द्वारा सेना नें गोवा को औपनिवेशिक शासन से मुक्त कराया। भैया को उनको देशभक्ति व सक्रियता के कारण सम्मानित भी किया तथा उनके परम मित्र प्रसिद्ध कवि नीरज जी, भारतभूषण जी तथा सरल जी के सानिध्य में हमारे घर पर खूब काव्य गोष्ठियाँ भी आयोजित हुई।

बाद में भैया ने बी.काँम. किया। यूपी में गायन प्रतियोगिता में 'तानसेन' पुरस्कार प्राप्त किया। यूपी से ही नाट्य कला में अभिनय में चयनित होकर दिल्ली में प्रारम्भ 'नेशनल स्कूल आफ ड्रामा' के प्रथम बैच में प्रशिक्षण प्राप्त किया तथा तत्पश्चात उसी क्षेत्र में कार्य करते हुए मुम्बई चले गये जहाँ उन्होंने फिल्म लाईन में अनेक फिल्मों में कार्य किया प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक श्री ख्वाजा महमद अब्बास से उन्हें काफी नजदीकियाँ हुई तब भैया ने अपनी गोवा स्वतंत्रता के प्रयास की कहानी सुनाई तो अब्बास साहब बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने गोवा को मुक्त कराने के प्रयास की इस सच्ची कहानी पर फिल्म 'सात हिन्दुस्तानी' जो 1969 में रिलीज हुई थी बनाई। यह श्री अमिताभ बच्चन जी की पहली फिल्म थी, भैया ने भी इसमे मद्रासी युवक का अभिनय किया था। अमिताभ जी को भी 'मधुकर' भैया की अवश्य स्मृति होगी। सात कलाकारों का अभिनय कलाकार मधु, उत्पल दत्त, मधुकर, जलाल आगा, अनवर अली और अमिताभ जी ने किया था।

भैया गायन, नृत्य, अभिनय, कविता इन सभी कलाओं में निष्णात थे। उनके द्वारा मद्रासी युवक के अभिनय से प्रभावित होकर मदास के फिल्म निर्देशक दासारि नारायण राव ने आग्रह पूर्वक भैया को वहाँ बुलाकर अपना असिस्टेण्ट बना लिया। भैया ने अनेक फिल्मों में अभिनय किया और अपना विशिष्ट स्थान बनाया।

दिनांक 22 फरवरी 1991 को दुर्भाग्यवश रोड एक्सीडेण्ट में उनका देहावसान हो गया। ऐसे अद्भुत, महान देशभक्त, कलाकार का गुमनामी के अन्धेरों में खोजाना बहुत वेदना देता है।

स्वतंत्रता दिवस पर उस आजादी के दीवानें गुमनाम वीर नायक को श्रद्धापूर्वक नमन करती हूं और स्वयं को गौरवान्वित समझती हूं । यादों में तो वे सर्वदा ही बनें रहते हैं। उन्हीं के प्रभाव से मैंने संगीत गायन, वादन, काव्य, नृत्य, नाटक आदि को ही अपना कार्य क्षेत्र बनाया।

भैया मेरे ।आपको मेरा शत-शत प्रणाम।

कला समय : नवांकुर...

अंकुरित संस्कार उम्र से बड़े है इनके...

बाल-मन उम्र की मंजिल तय करते-करते बच्चों को आज की तीव्र गति से भागने वाली दुनिया की हर गतिविधि के साथ ताल से ताल मिलाकर चलने की प्रेरणा देता स्तंभ 'नवांकुर' -' कला समय।'

मैं सपने नहीं लक्ष्य देखती हूँ

नाम - कु. राशिका साहू
पिता-श्री राहुल साहू, सेल्स मेन
माँ - श्रीमती रमा साहू, जे. के. अस्पताल में कार्यरत
जन्म-23 मई 2013, भोपाल (म. प्र.)
कक्षा - सातवीं, विद्यालय- मदर टेरेसा, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.)
शौक - कुकिंग, नृत्य, गायन, बेडमिन्टन, खो-खो, आर्ट एंड क्राफ्ट, ड्राइंग, योगा, तैराकी।
उद्देश्य-भारतीय जल सेना में अफसर बनना तथा देश की सेवा करना।

कु . राशिका साहू दो बहनों में छोटी हैं। कु0 राशिका को बचपन ही से नृत्य करने का शौक रहा है। जब यह ढाई वर्ष की ही थी तो अपने आप गानों पर नृत्य के स्टेप्स करने लगी थी। उसे कोई भी कला सीखने की उत्सुकता रहती है, इसीलिए वह चीजों को बहुत बारीकी से देखती है। स्वभाव से बहुत ही हंसमुख एवं मिलनसार है। माता-पिता की दुलारी और सहेलिओं के साथ बहुत ही आत्मीय है। कु. राशिका पशु-पक्षी प्रेमी और दयालु है। खाना बहुत अच्छा बनाती है। कु. राशिका की कुछ प्रमुख उपलब्धियां निम्न हैं:

1. गरबा नृत्य प्रतियोगिता में एक्सीलेंट परफॉमर, गोल्ड मेडलिस्ट कक्षा नर्सरी, किड्स पैराडाइज प्ले स्कूल, वर्ष 2016-17 2.पेपर बैग प्रतियोगिता, एक्सीलेंट परफार्मर, कक्षा नर्सरी। किड्स पैराडाइज प्ले स्कूल, वर्ष 2016-17 3. नृत्य प्रतियोगिता, बेस्ट डांसर, कक्षा के. जी. 2, किड्स पैराडाइज प्ले स्कूल वर्ष 2018-19 4.ग्रुप डांस प्रतियोगिता, प्रथम स्थान, कक्षा-5, मदर टेरेसा स्कूल, वर्ष-2023-24, 5 विज़ार्ड्स हैंड राइटिंग प्रतियोगिता, आउट स्टैंडिंग परफार्मर, कक्षा - 5 मदर टेरेसा स्कूल, वर्ष-2023-24 (सिलेक्टेड फॉर नेशनल कॉम्पटीशन). 6. नेशनल साइंस ओलिम्पयाड 2023, सर्टिफिकेट ऑफ़ पार्टिसिपेशन अंतर्राष्ट्रीय रैंक-1469 7. ग्रुप सांग प्रतियोगिता, प्रथम स्थान, कक्षा-6, मदर टेरेसा स्कूल, वर्ष 2024-25 8.इंटरनेशनल साइबर ओलिम्पयाड 2024-25 सर्टिफिकेट ऑफ़ पार्टिसिपेशन, कक्षा-7, मदर टेरेसा स्कूल । 9.वार्षिक परीक्षा वर्ष 2024-25 कक्षा 6, में 98 प्रतिशत अंकों के साथ प्रथम स्थान, मदर टेरेसा स्कूल, भोपाल (म.प्र.) सम्प्रति कु0 राशिका साहू ग्वालियर घराने के शास्त्रीय संगीत की विधिवत शिक्षा संगीताचार्य पंडित प्रकाश पाठक 'सुरमणि' और श्रीमती आरती शर्मा से कोलार रोड स्थित संगीतशाला 'त्रिधा संगीत' में ग्रहण कर रही हैं।

प्रस्तुति कर्ता - सत्य नारायण शर्मा बी-102, जानकी अपार्टमेंट कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.) 462042 मो. -9926364058

निवेदनः आप भी अपने बच्चों की प्रतिभाओं, कलाओं को उजागर करने हेतु कला समय 'नवांकुर' एवं 'उत्तराधिकार' स्तंभ इस पृष्ठ का हिस्सा बन सकते है- संपादक

पयोधि जगदीश गुरु साहित्यकार सम्मान से विभूषित

डॉ. गांगुली योग विद्यापीठ, भोपाल द्वारा कमला पार्क स्थित आचार्य नरेन्द्रदेव पुस्तकालय में आयोजित 'राज्य स्तरीय जीवनशैली सम्मान' समारोह में वरिष्ठ साहित्यकार लक्ष्मीनारायण पयोधि को 'जगदीश गुरु साहित्यकार सम्मान' से अलंकृत किया गया। साहित्य के क्षेत्र में निरंतर सृजन सक्रियता और विशिष्ट उपलब्धियों के लिये श्री पयोधि को यह सम्मान कार्यक्रम के मुख्य अतिथि मध्यप्रदेश शासन के खेल, युवा और सहकारिता मंत्री श्री विश्वास कैलाश सारंग द्वारा प्रदान किया गया। उल्लेखनीय है कि कवि-कथाकार और जनजातीय संस्कृति एवं भाषाओं के अध्येता के रूप में प्रतिष्ठित श्री पयोधि की विभिन्न विधाओं में कुल 56 पुस्तकें प्रकाशित हैं। बाल साहित्यकार और मासिक बाल पत्रिका 'समझ झरोखा' के संपादक के रूप में भी उनकी विशेष ख्याति रही है।

समारोह में वरिष्ठ नेत्ररोग विशेषज्ञ डॉक्टर वी. के. निचलानी, वरिष्ठ पत्रकार श्री सरमन नागेले और जनसंपर्क विभाग के अपर संचालक श्री संजय जैन को भी उनकी विशिष्ट सेवाओं के लिये 'राज्य स्तरीय जीवनशैली सम्मान' से विभूषित किया गया। इस अवसर पर संस्था के संचालक योगाचार्य डॉ. पवन गुरु और संयोजिका श्रीमती ममता गुरु की प्रतिबद्धता और नि:स्वार्थ सेवाओं की सराहना की गयी। गौरतलब है कि 87 वर्ष पूर्व डॉ. एम. के. गांगुली द्वारा स्थापित योग विद्यापीठ का कुशल संचालन उनके योग्य शिष्य योगाचार्य पवन गुरु निरंतर कर रहे हैं। कार्यक्रम का प्रभावी संचालन श्री अजय श्रीवास्तव 'नीलू' ने किया। ■

साहित्य मंडल नाथद्वारा में हिंदी लाओ, देश बचाओ कार्यक्रम धूमधाम से मनाया गया

16 राज्यों के साठ साहित्यकारों का हुआ सम्मान, कार्यक्रम में हुए पत्र वाचन हुंकृती और कवि सम्मेलन –साहित्य मंडल श्रीनाथ द्वारा आयोजित हिंदी लाओ देश बचाओ समारोह श्री भगवती प्रसाद देवपुरा प्रेक्षागृह में देश भर से आए साहित्यकारों के बीच में शुरू हुआ। कार्यक्रम के उद्घाटन सत्र में मुख्य अतिथि पूर्व कुलपति एवं साहित्यकार प्रोफेसर गिरीश्वर मिश्र ने कहा जब तक हम विचारों में स्वाधीन नहीं होंगे, तब तक सतही परिवर्तन नहीं होंगे। आज लोगों को आपस में जुड़ने के लिए हिंदी से जुड़ना होगा। हिंदी को अपनाना होगा। आज हिंदी सिर्फ भाषा का प्रश्न नहीं है, यह हमारी पहचान है। यह हमारी संस्कृति है। यह हमारी एकता है। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि उड़ीसा से पधारे प्रशासनिक अधिकारी एवं पूर्व कुल सचिव डॉ राजेंद्र प्रसाद मिश्र ने कहा हिंदी सभी को जोड़ती है। लखनऊ से पधारे विशिष्ट अतिथि डॉ. ओम नीरव ने कहा हम चाहते हैं कि हिंदी पूरब से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण हर क्षेत्र में अपनाई जाए तो इसके लिए सबसे पहले हमें दूसरी भाषाओं को भी उतना ही सम्मान देना पड़ेगा जितना हम हिंदी के लिए चाहते हैं। दिल्ली से पधारे वरिष्ठ साहित्यकार डॉ राहुल हिंदी के उद्भव और विकास पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा सरकार आज स्वदेशी का प्रचार करने को कहती है, तो हमें सबसे पहले हिंदी को अपनाना है। हिंदी से ही हमें अपना सभी कार्य करने हैं । अमलनेर महाराष्ट्र से पधारे सुरेश जी ने कहा हिंदुस्तान को बनाने में शिवाजी ने तलवार का प्रयोग किया था। सभी को एकजुट किया था। अब यह कार्य साहित्यकारों को अपनी कलम से करना होगा। तभी हिंदी की विजय निश्चित है। इस अवसर पर पंजाब से पधारे वरिष्ठ साहित्यकार डॉ अमर सिंह बधान ने कहा साहित्य मंडल एक चंदन का वृक्ष है , जो हर एक को अपनी महक बाँटता है। कार्यक्रम का संचालन प्रधानमंत्री श्री श्याम प्रकाश देवपुरा ने किया गद्य एवं पद्य परिचय का वाचन डॉ. अंजीव अंजुम द्वारा किया गया। इस अवसर पर श्री सुरेंद्र सार्थक ने हिंदी पर शानदार कविता पढ़कर तालियां बटोरी। कार्यक्रम के द्वितीय सत्र में मुख्य अतिथि डॉ नवल किशोर भाभडा ने कहा यह कार्यक्रम साहित्य का महाकुंभ है। यह हिंदी को दिशा प्रदान करने वाला एक मंच है। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि विख्यात साहित्यकार एवं इतिहासकार डॉ. कृष्ण जुगनू ने कहा नाथद्वारा को विश्व में दो बातों से जाना जाता है। कार्यक्रम की शुरुआत मां सरस्वती की प्रतिमा पर पुष्पांजलि एवं दीप प्रज्वलन कर हुई । ■

योगेश गुप्ता की मध्य प्रदेश के गणेश पर केंद्रित संकलन पुस्तिका का लोकार्पण संपन्न

दुष्यंत कुमार स्मारक पांडुलिपि संग्रहालय के राज सदन में सेवानिवृत जज एवं रेरा से सम्बद्ध योगेश गुप्ता की मध्य प्रदेश के गणेश पर केंद्रित संकलन पुस्तिका का लोकार्पण संपन्न हुआ। इस अवसर पर पुलिस के वरिष्ठ सेवानिवृत अधिकारी द्वय श्री अरुण गुर्टू एवं सुभाष अत्रे पोस्ट मास्टर जनरल पवन डालमिया और पुरातत्वविद् नारायण व्यास ने लोकार्पण किया। इस संकलन में उदयगिरि, भीमबेटका ,जबलपुर, आशापुरी, भेड़ाघाट, खरगोन, गढ़ाकोटा, नोहटा, मंदसौर, उज्जैन, विदिशा, बिरला म्यूजियम , इंदौर, टीकमगढ़, नर्मदापुरम, उज्जैन, सीहोर, गुजरी महल ग्वालियर, विजयराघवगढ़ किला कोठी, रीवा, खजराना इंदौर, भिंड तथा राज्य संग्रहालय में स्थापित मूर्तियों की फोटो चित्रों का संकलन किया गया है। इस अवसर पर सभी अतिथियों ने दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डिलिपि संग्रहालय का अवलोकन भी किया एवं संग्रहालय के संस्थापक राजुरकर राज के प्रयासों की सराहना की। ■

माननीय पूर्व प्रधान जिला न्यायधीशों द्वारा कला समय का लोक जनजातीय एवं शास्त्रीय नृत्यों पर केन्द्रित विशेषांक का लोकार्पण शिवांकन आर्ट गैलरी भोपाल में सम्पन्न हुआ

बायें से अमर सिंह, सुधीर पण्डया, डॉ. नारायण व्यास, यौगेश कुमार गुप्ता (पूर्व प्रधान जिला न्यायाधीश), उमेश कुमार गुप्ता (पूर्व प्रधान जिला न्यायाधीश), आर.के. गुप्ता (पूर्व प्रधान जिला न्यायाधीश), प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास, रामगोपाल ठाकुर, सुनील भट्ट, राकेश कुमार द्विवेदी (कार्यक्रम समन्वयक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास)।

महाराष्ट्र विधानपरिषद के सभापती ना.श्री.प्रा.राम शिंदे सर को पुण्यश्लोक अहिल्यादेवी होळकर के त्रिशताब्दी के अवसर पर किया गया कला समय का अंक भेट किया।

पद्म श्री से विभूषित बाबूलाल दाहिया, मंगला गरवाल (जनजाति साहित्यकार), प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास एवं अन्य विद्वान।

कला समय पत्रिका का विमोचन करते हुए श्री पुष्पेन्द्र भारद्वाज, मीडिया कर्मी निधीश गोयल,जयपुर द केरला स्टोरी के लेखक सूर्यपाल सिंह, संगीत सेवी देवेन्द्र सक्सेना कोटा, प्रो. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जयपुर, चेतन औदिच्य उदयपुर सम्पादक श्री भँवरलाल श्रीवास, कला समय पत्रिका का लोकार्पण करते हुए।

कलासमय KALA SAMAY Magazine Post-1843566884/2025-28 अगस्त-सितम्बर 2025 ● आवरण सहित 100 पृष्ठ RNI. No. MPHIN/2017/73838

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास